ग्रामीण विकास संदेश

o"k & 15
l;Drkd & 1] 2
tuojh 2020 & fnlEcj 2020

संस्था के संस्थापक
स्व० डॉ. गोपाल पाण्डेय

कार्यकारिणी सदस्य

संरक्षक
डॉ. एस.सी. पाठक

अध्यक्ष
प्रो० कृष्णा मिश्रा

सचिव
डॉ. हेमलता पन्त

सलाहकार मण्डल

प्रो. कीर्ति सिंह
पूर्व अध्यक्ष,
कृषि वैज्ञानिक नियुक्ति मण्डल, नई दिल्ली

प्रो. आर. एस. बिसेन
पूर्व कुलसचिव,
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्यागिकी
विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

डॉ० के. एन. पाण्डेय
वैज्ञानिक 'ई'
भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

प्रो. अनिता गोपेश
अध्यक्षा, जन्तु विज्ञान विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव
प्राचार्य
सी.एम.पी. डिग्री कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

प्रो. रवि प्रकाश मौर्य
कार्यक्रम समन्वयक
कृषि विज्ञान केन्द्र पाती,
मनसापुर, अम्बेदकर नगर

प्रो० के. एन. उत्तम
विभागाध्यक्ष
भौतिक विज्ञान विभाग, इ0 वि0 वि0, प्रयागराज, (उ.प्र.)

डॉ० डी. के. श्रीवास्तव
संयुक्त निदेशक (कृषि)
उत्तर प्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, लखनऊ, (उ.प्र.)

डॉ. मनबोध प्रसाद
पूर्व प्रधानाचार्य
कार्डेट, इफको, फूलपुर, प्रयागराज, (उ.प्र.)

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक
डॉ. हेमलता पन्त, प्रयागराज, (उ.प्र.)

संयुक्त–सम्पादक
डॉ. मनोज कुमार सिंह,
प्रयागराज, (उ.प्र.)

सह–सम्पादक
श्री पीयूष रमन पाण्डेय,
अपर सियांग (अरूणांचल प्रदेश)

विषय क्रम

- सम्पादकीय
- पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख काष्ठ प्रजातियाँ – वर्तमान परिदृश्य 1–5
  अनुभा श्रीवास्तव
- फालसा के लाभ 6–7
  नीरज गुप्ता एवं आरती शर्मा
- रेशम उत्पादन– रेशम कीट एवं उसका महत्व 8–9
  डॉ0 संजीत कुमार सिंह
- अलसी की उन्नत खेती एवं रोग प्रबन्धन 10–13
  अमित कुमार मौर्य, विन्नी जॉन, डॉ. डी. के. श्रीवास्तव एवं डॉ. हेमलता पंत
- रबी फसल में अधिक आय प्राप्त करने के उपाय 14–16
  डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, डॉ. अमित कुमार मिश्रा, रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री एवं डॉ. रविंद्र कुमार पाण्डेय
- वैज्ञानिक विधि से प्याज की खेती 17–21
  विन्नी जॉन, अमित कुमार मौर्य, सोविता साइमन और मुकेश कुमार
- फैंगी/विशाक जड़ें: चुकंदर में आकारिका जड़ विगलन 22–23
  ए. के. मल्ल, वरुचा मिश्रा, संतेश्वरी, धर्मेंद्र कुमार एवं अश्वनी कुमार
- सहजन की वैज्ञानिक खेती एवं औषधीय महत्व 24–29
  डॉं विद्या सागर, डॉं प्रदीप कुमार, एवं डॉं कौशल कुमार
- समन्वित पोशक तत्व प्रबंधन 30–32
  विकास गुप्ता, ए.पी. सिंह एवम् मीनाक्षी गुप्ता
- टिंडे की आधुनिक खेती 33–35
  डॉ0 रूद्र प्रताप सिंह, रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री डॉ0 अमित कुमार मिश्रा एवं डॉ0 रविंद्र कुमार पांडेय

स्वामी, जैविक विज्ञान एवम् ग्रामीण विकास समिति, 10/96 गोला बाजार, नई झूंसी, इलाहाबाद, प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ. हेमलता पन्त द्वारा प्रकाशित तथा शाइन ग्राफिक्स एण्ड प्रिन्टर्स जीरो रोड, प्रयागराज से मुद्रित।
सम्पादक : डॉ. हेमलता पन्त

सम्पादक मण्डल

प्रो. वेद रत्न, कानपुर
डॉ. हरेन्द्र कुमार मिश्रा, नोएडा
डॉ. उमाशंकर मिश्र, चित्रकूट
डॉ. प्रदीप सिंह, प्रतापगढ़
डॉ. देवन्द्र स्वरूप, फतेहपुर
डॉ. प्रदीप कुमार, पांती, अम्बेडकर
डॉ. एस.पी. विश्वकर्मा, प्रयागराज
डॉ. अखिलेश त्रिपाठी, प्रयागराज
डॉ. राम चिंरजीव पाल, प्रयागराज
डॉ. दीपक कुमार पाण्डेय, बठिंडा
डॉ. प्रत्यूष पाण्डेय, प्रयागराज
श्री अनन्त सिंह जलयांग, प्रयागराज
डॉ. तनया राय, प्रयागराज
डॉ. प्रदीप कुमार बरेलिया, झाँसी

विषय क्रम

- गिलोय– अनेक बीमारियों की एक दवा 36–37

  आशीष कुमार पाल एवं संदीप सिंह
- पर्यावरणीय संचेतना में समस्या एवं समाधानः विश्लेषणात्मक अध्ययन 38–47

  साधना त्रिपाठी
- जैविक खेती में जैव उर्वरकों की महत्वपूर्ण भूमिका 48–51

  डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, डॉ. अश्वनी कुमार1 डॉ. अमित कुमार मिश्रा, रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री, डॉ. रविंद्र कुमार पांडेय एवं रोहित कुमार
- दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन 51
- गुलदाउदी की उन्नतशील खेती, फसल स्वास्थ्य एवं संरक्षण 52–59

  डा0 अनिल कुमार, डा0 अजय कुमार, डा0 आशुतोष कुमार सिंह, अमित मौर्या, डा0 पुष्पेन्द्र वर्टी, डा0 विवेक कुमार सिंह एवं डा0 ममता भारती
- कृषकों की आय दोगुनी करनें हेतु नवीन समन्वित कृषि पधति 60–63

  डॉं विद्या सागर, डॉं प्रदीप कुमार एवं डॉं विनय कुमार
- घृतकुमारी (एलोवेरा) के मानव जीवन में लाभकारी गुण 64–67

  रोहित कुमार, डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, डॉ. अश्वनी कुमार, डॉ. अमित कुमार मिश्र एवं रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री
- उत्तम बीज की पहचान व बीज गुणवत्ता नियंत्रण 68–71

  सौरभ तोमर, अनुराग मलिक, हिमानी पूनिया, राजेश कुमार, एवं डॉ. कुलदीप सिंह
- शकरकंद की नई किस्मों की उत्पादन तकनीकी 72–75

  मिनाक्षी कुमारी, डी0पी0 सिंह एंव सौरभ तोमर
- औषधिय भोजन हमारे स्वास्थ्य को ठीक करता है 76–79

  डॉ भावना गुप्ता
- बीजों का सुरक्षित भण्डारण 80–83

  अनुराग मलिक, सौरभ तोमर, हिमानी पूनिया, राजेश कुमार, एवं डॉ. कुलदीप सिंह
- फसलों की उपज बढ़ाने और जल की बचत के लिए टपक (ड्रिप) सिंचाई 84–87

  डा0 धर्मेन्द्र कुमार गौतम, डा0 अनिल कुमार, डा0 आशुतोश कुमार सिंह, डा0 पुष्पेन्द्र वर्टी, डा0 विवेक कुमार सिंह, अनूप कुमार एवं डा0 ममता भारती
- स्वयं का शुद्ध बीज कैसे तैयार करें किसान 88–91

  अनुराग मलिक, सौरभ तोमर, हिमानी पूनिया, राजेश कुमार, एवं डॉ. कुलदीप सिंह
- बागों में खाद आर उर्वरकों का प्रयोग 92–93

  डॉ0 मनोज कुमार सिंह

विषय क्रम

- खिरनी की खेती एवं उपयोगिता 94–97

  विकास मण्डलोई, गौरी शंकर पटेल एवं अभिषेक यादव
- छत के ऊपर सब्जियों की खेती 98–100

  सौरभ तोमर, डॉ. कुलदीप सिंह, निर्मल सिंह, प्रीति एवं सौरभ
- मानव जीवन पर प्रदूषण के प्रभाव 101–102

  आनन्द कुमार पाण्डेय, अंकित सिंह, आलोक कुमार सिंह, ए. के. सिंह एवं डा. रमेश प्रताप सिंह
- चुकंदर बीज पेलेटिंगरू गुणवत्ता वाले बीज उत्पादन हेतु एक वृद्धि तकनीक 103–105

  वरुचा मिश्रा, संतेश्वरी, धर्मेंद्र कुमार, अश्वनी कुमार, ए के मल्ल
- पालतू पशुओं में खुर का बढ़ जानाः जानकारी एवम् उपचार 106–108

  असलम
- कृषक जानें अपने अधिकार 109–110

  सौरभ तोमर, अनुराग मलिक, हिमानी पूनिया, राजेश कुमार, एवं डॉ. कुलदीप सिंह
- बाग लगाने पूर्व महत्वपूर्ण बातें 111–112

  डॉ. कुलदीप सिंह, सौरभ, प्रीति, सौरभ तोमर एवं निर्मल सिंह
- स्वरोजगार हेतु सूकर पालन – लाभकारी व्यवसाय 113–119

  डॉ0 देवेन्द्र स्वरूप
- अमरूद में बहार नियंत्रण 120–121

  सौरभ, प्रीति, डॉ. कुलदीप सिंह, सौरभ तोमर एवं निर्मल सिंह
- जैविक कृषि की नवीनतम तकनीकी का संचालन एवं लागत को घटाने की रणनीति 122–124

  धर्मेन्द्र कुमार, ए. के. मल्ल, वरूचा मिश्रा, संतेश्वरी, अश्वनी कुमार
- कार्यक्रम – 1 (कार्यशाला सम्पन्न) 125
- आम से बनने वाले संसाधित खाद्य एवं पेय पदार्थ 126–127

  सौरभ, डॉ. कुलदीप सिंह, प्रीति, सौरभ तोमर एवं निर्मल सिंह
- उत्तम दुग्ध उत्पादन हेतु गर्भवती गाय–भैस का खान पान, प्रबन्धन एवंम उचित देखभाल 128–132

  गौरव जैन, डॉखम जेमस सिंह एवं डॉ अजीत सिंह
- कददूवर्गीय सब्जियो में कीट एवं रोग नियंत्रण 133–137

  नीलम सोनी, निकिता देवांगन एवं मुकेश कुमार
- जैविक खेती में ह्यूमिक एसिड का प्रयोग 138–140

  अजय बाबू, रामअवतार मीना, आशुतोष कुमार एवं कमल रवि शर्मा
- पत्तीवाली एवं कम प्रचलित सब्जियों का गुणवत्तायुक्त उत्पादन 141–146

  सुधीर कुमार मिश्र, सपना राय, अमित कुमार शर्मा

विषय क्रम

- वैज्ञानिक विधि से बटन मशरुम की खेती 147–151

  हिमांशु शेखर सिंह, आर0 एस0 नेगी, अखिलेश जागर एवं मुकेश कुमार
- सोयाबीन के महत्वपूर्ण कीट, रोग एवं उनकी रोकथाम 152–155

  नीलम सोनी, निकिता देवांगन एवं मुकेश कुमार
- नील हरित शैवाल एक जैविक खाद 156–160

  सुहाना पुरी गोस्वामी, अजय बाबू ,अखिला नंद दुबे और संजीत कुमार सिंह
- सूत्रकृमि से फसलों में नुकसान एवं प्रबन्धन 161–166

  डा. अर्चना उदय सिंह
- नीम एक और गुण अनेक 167–170

  मुकेश कुमार, विन्नी जॉन और अमित कुमार मौर्य
- समन्वित पोशक तत्व प्रबंधन 171–173

  विकास गुप्ता, ए.पी. सिंह एवम् मीनाक्षी गुप्ता
- दलहनी फसलों के प्रमुख रोग एवं प्रबन्धन 174–179

  डा. अर्चना उदय सिंह डा0 रमेश चन्द एवं डा0 सुभाष चन्द
- हल्दी की उन्नत खेती एवं प्रसंस्करण विधि 180–181

  डॉ0 प्रदीप कुमार मिश्र एवं डॉ0 विनय कुमार
- मौसम आधारित कृषि परामर्श सेवा एक वरदान 182–184

  सचिन कुमार शुक्ला, सर्वेश बरनवाल, डा० देवेन्द्र स्वरुप
- बेबीकार्न का उत्पादन 185–189

  सुधीर कुमार मिश्र, सपना राय, रजत कुमार सिंह
- हरियाली का लगाना और देखभाल 190–195

  सपना राय, सुधीर कुमार, मिश्र रजत कुमार सिंह
- नीबू का मंद गलन रोग एवं प्रबन्धन 196–199

  अर्चना उदय सिंह और इम्तियाज अहमद
- गर्मियों में पशुओं की उचित देखभाल से अधिक उत्पादन 200–203

  डा. सुधीर कुमार रावत व डा. ओ. पी. मौर्या
- मशरूम के सूत्रकृमि 204–208

  अर्चना उदय सिंह और इम्तियाज अहमद
- शरीर में बढ़ाएं रोग प्रतिरोधक क्षमता 209–210

  डॉ भावना गुप्ता

विषय क्रम

- अलसी के औषधीय गुण 211

  कोमल यादव
- प्लास्टिक कल्चर : बागवानी के लिए वरदान 212–214

  संदीप सिंह एवं आशीष कुमार पाल
- तुलसी–एक चमत्कारी पौधा 215–218

  शैलजा पाण्डेय
- आम की फसल में कीट एवं रोग नियंत्रण 219–222

  ऋषि कुमार सिंह, हरेश प्रताप सिंह, आलोक कुमार सिंह, रमेश प्रताप सिंह, अभय कुमार सिंह, अरविंद प्रताप सिंह एवं डा. रमेश प्रताप सिंह
- पलाश के फूलो से सजता बुन्देलखण्ड का ताज 223–224

  संदीप सिंह
- मछलियों का प्राकृतिक आहार और उसका उत्पादन 225–226

  हरिप्रसाद मोहले, डॉ. ओ. पी. सोनवानी एवं डॉ. एन. सारंग
- मक्का का उत्पाद, अपशिष्ट उत्पाद तथा उसका उपयोग 227–230

  डॉ. कौशल कुमार मौर्य, डॉ. विद्यासागर, डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. रामजीत
- किसानों के खून से रंगी बुन्देलखण्डी खेती 231–234

  संदीप सिंह एवं आशीष कुमार पाल
- गेहूँ का संसाधन 235–236

  डॉ. कौशल कुमार मौर्य, डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. विद्यासागर एवं डॉ. रामजीत
- कृशि में बीज उपचार का महत्व 237–239

  आशीष कुमार पाल एवं संदीप सिंह
- भारतवर्ष में पक्षियों की स्थिति 240–241

  शिवम दुबे, हेमलता पन्त एवं शिव जी मालवीया
- घटता पादप स्वास्थ्य : मानव खाद्य सुरक्षा तथा पशु पोषण के लिए समस्या 242–246

  डा0प्रदीप कुमार, डा0विद्या सागर, डा0राम जीत एवं' ' डा0कौशल कुमार मौर्य
- भारतीय परम्परा में पर्यावरण चुनौती : एक विश्लेषण साहित्य वाड़्ग्मय में पर्यावरणीय चिंतन 247–249

  डॉ0 प्रत्यूष पाण्डेय
- खरीफ प्याज की वैज्ञानिक खेती 250–251

  'डॉ0 शैलेन्द्र सिंह ''डा0 उमेश बाबू एवं '''डा0 एस0के0 यादव
- जिंक की कमी से मृदा , पौधे, मानव व पशु स्वास्थ्य समस्याएं एवं निराकरण 252–255

  डा0 प्रदीप कुमार , डा0राम जीत एवं डा0'कौशल कुमार मौर्य
- खरीफ फसलों का खरपतवार प्रबन्धन 256–261

  'डॉ0 शैलेन्द्र सिंह ''डा0 उमेश बाबू एवं '''डा0 एस0के0 यादव

सम्पादकीय !

दिसम्बर 2019 से (कोराना विषाणु) ने चीन के वुहान प्रान्त से जो दस्तक दी, कि फिर इस विषाणु ने पूरे विश्व को अपनी गिरफ्त में ले लिया । इस समय लगभग 175 से अधिक देश इसकी चपेट में हैं। इस विषाणु से पूरे विश्व में कई लाख लोग अपनी जान गँवा चुके हैं। अभी तक इस विषाणु की न कोई सही दवा और न ही कोई टीका उपलब्ध है । स्वयं की सुरक्षा हम मास्क लगाकर, सोशल डिस्टेंसिंग, एक दूसरे से लगभग 2 मीटर की दूरी बनाकर एवं 20 सेकेण्ड तक अच्छे प्रकार से साबुन से हाथ धुलने व साबुन यदि न हो तो सेनेटाइजर का प्रयोग से की जा सकती है। हमारे देश में कोविड के साथ–साथ ही दो प्रकार के चक्रवात 'अम्फान' व 'निसर्ग' भी आये जिन्होंने मुम्बई, उड़ीसा व बंगाल में तबाही मचाई । इसके बाद भारत के कुछ राज्यों में भूकम्प के झटके भी महसूस किये गये । आफत यहीं नही थमी इसके बाद टिड्डे और टिड्डियों के झुंड ने इसी वर्ष हमारे देश की फसलों पर आक्रमण भी कर रखा है । साथ ही साथ चीन व नेपाल जैसे देश भी सीमा विवाद पर आँखे दिखा रहे हैं । इतनी अधिक समस्याओं के साथ भी हम भारतवासी धैर्य बनाये हुये हैं। इस वर्ष अभी क्या होगा यह तो अभी तय नहीं है, पर सब कुछ अच्छा हो, सभी का भला हो, अब आगे किसी को कोई दिक्कत न हो व सबका कल्याण हो ऐसी कामना के साथ ही हम 'ग्रामीण विकास संदेश' के संयुक्तांक को आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। नूतन वर्ष सबके लिए नई ऊर्जा, समृद्धि व सम्पन्नता लेकर आये यही मेरी शुभकामनयें हैं।

इस बार ग्रामीण विकास सन्देश के इस संयुक्तांक में कुल 64 लेखों को समावेशित किया गया है । मैं ग्रामीण विकास सन्देश के इस अंक की रचना हेतु उन सभी लेखक तथा लेखिकाओं को धन्वाद देती हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य समय से कुछ पल निकालकर अपने सारगर्भित तथा ज्ञानवर्धक लेखों को हमारी पत्रिका में भेजने की रूचि दिखाई । उम्मीद करती हूँ कि इस पत्रिका का यह संयुक्तांक आप सभी सुविज्ञ पाठकों का रूचिकर लगेगा ।

आशा है कि इस अंक से निकला ज्ञान रूपी प्रकाश पुन्ज कृषि तथा ग्रामीण विकास हेतु एक दीपक की भाँति अवश्य आभा प्रसारित करेगा । इस पत्रिका और अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी बनाने हेतु आप सभी सुधि पाठकों के महत्वपूर्ण सुझावों की मुझे सतत् आवश्यकता रहेगी ।

– सम्पादक

पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख काष्ठ प्रजातियाँ – वर्तमान परिदृश्य

अनुभा श्रीवास्तव

पारि–पुनर्स्थापन वन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज, उ.प्र.

परिचय :

हमारी राष्ट्रीय वन नीति–1988 व उत्तर प्रदेश राज्य वन नीति 1998 के अनुसार भौगोलिक क्षेत्र का एक तिहाई क्षेत्रफल वनों से ढका रहना चाहिए , परन्तु उ0 प्र0 में कुल वनाच्छादित व वृक्षाच्छादित क्षेत्र भौगोलिक क्षेत्र का 9.18 प्रतिशत ही है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि हमें वनों को बढ़ाना चाहिए परन्तु बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण व औद्योगीकरण आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिसकी वजह से बड़े पैमाने पर, नये वन क्षेत्रों को लगाये जाने की सीमित सम्भावनाएं हैं। प्रदेश में वृक्षारोपण जन सहयोग प्राप्त करके व कृषिवानिकी को जन आन्दोलन बनाकर ही, प्रदेश में वृक्षावरण का अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। मानव जीवन के अस्तित्व की रक्षा के लिए वृक्ष व वन आवश्यक हैं। प्रत्यक्ष प्रभावों में मनुष्य विभिन्न आर्थिक लाभो जैसे– चारा, जलौनी, फल, जड़ी–बूटी, उद्योगो हेतु कच्चे माल, निर्माण हेतु लकडी आदि से लाभान्वित होने के साथ–साथ आजीविका प्राप्त करता है। परोक्ष प्रभावों में वन आक्सीजन उत्सर्जन एवं जल व मृदा संरक्षण जैसे कार्य मानवता को लाभान्वित करते है। जन जीवन को बाढ़ ,भूस्खलन, सूखा प्रदूषण व अन्य प्राकृतिक आपदा से मुक्त रखने व जल स्रोत्रो को जीवित रखने का सरल उपाय वृक्षावरण में वृद्धि हैं। जीवन में वनों व वृक्षों के सार्वकालिक व सार्वदेशिक महत्व के कारण ही प्रत्येक धर्म में वृक्षारोपण व वनों के संरक्षण के उपदेश दिए गए हैं। प्राचीनकाल से ही सभ्यता के विकास में वनों एवं वृक्षों का विशेष महत्व रहा है। हिन्दू धर्म में धार्मिक कर्मकाण्डों एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वृक्षों एवं वनस्पति को अभिन्न अंग बताया गया है। हिन्दू धर्म में बरगद, पीपल, आम, नीम, तुलसी, बेर, कुश इत्यादि की पूजा होती आई है तथा धार्मिक कर्मकाण्डों में इनका उपयोग होता आया है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख काष्ठ प्रजातियाँ

यूकेलिप्टस, पापलर, शीशम, सागौन, बबूल, आंवला, बेर, खैर, शहतूत आदि पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि वानिकी की मुख्य प्रजातियाँ है। इसके अतिरिक्त आम, नीम, महुआ, जामुन, पीपल,

बरगद, पलाश आदि प्रजातियां बाग बगीचों ,घर के आस–पास या गांव की अतिरिक्त भूमि पर पायी जाती है। उत्तर प्रदेश क्षेत्र में इमारती लकड़ी तथा जलौनी हेतु प्रमुख प्रजातियां हैं– शीशम, सागौन, नीम, आम, कटहल, बबूल, जामुन, यूकेलिप्टस आदि। प्रजातियों की उपलब्धता माँग से बहुत अधिक कम है अर्थात् मांग और आपूर्ति का अन्तर बढ़ता ही जा रहा है। ग्रामीण तथा शहरी स्तर की चारा, लकडी तथा जलौनी की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। ग्रामीण अपनी दैनिक आवश्यताओं जैसे– जलौनी , लकड़ी की पूर्ति व्यापक स्तर पर बाजार में उपलब्ध लकड़ी से करते है जो विभिन्न ग्रामीण तथा शहरी बाजारों मे बनों तथा अन्य स्रोत्रों से उचित मूल्य में उपलब्ध है। वृक्षों पर ग्रामीणो की निर्भरता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। बाजार के माध्यम से काष्ठ उपभोक्ताओं तक पहुॅचता हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख काष्ठ प्रजातियों का वर्तमान परिदृश्य इस प्रकार है–

आम

आम के वृक्ष प्रायः 15–20 तथा 35–40 वर्ष की आयु के ही उपलब्ध हैं।इनमें 35–40 वर्ष वाले तो बीजू प्रकार के हैं लेकिन नये वृक्ष अधिकतर कलमी प्रजातियों के है। कलमी प्रजाति की मांग फल की गुणवत्ता के कारण ज्यादा प्रचलित हो गयी है। बीजू प्रजाति लकड़ी हेतु श्रेष्ठ है किन्तु फलों का बहुत अधिक आर्थिक महत्व नही है। तात्पर्य यह है कि 10 वर्ष की आयु वर्ग में आम के वृक्षों की उपलब्धता कम है।10–20 वर्ष में कलमी प्रजाति ही है। भविष्य में आम के वृक्षों की उपलब्धता हेतु आवश्यक है कि आम के बीजू तथा कलमी वृक्षों का वृहद वृक्षारोपण ग्राम स्तर पर किया जाय।

बबूल

यह प्राकृतिक रूप में ग्रामो में उगे रहते है। बबूल के वृक्षों की उपलब्धता भी समय के साथ ग्राम स्तर पर घट रही है। बबूल वृक्षों की नगण्य संख्या उपलब्ध है । पूर्वांचल में यह जलौनी के रूप में वृहद उपयोगी हैं। इसकी उपलब्धता में कमी से महत्वपूर्ण प्रजातियों जैसे आम, शीशम, नीम आदि का अधिक दोहन हो रहा हैं। वन विभाग के सहयोग से बबूल का पैाधारोपण ग्रामवासियों हेतु जलौनी की सतत उपलब्धता का कारक बन सकता है।

शीशम

शीशम हल्के छत्रवाला एक विशाल पर्णपाती वृक्ष है। शीशम भारत की सबसे अच्छी लकड़ियों में से एक है। उत्तर प्रदेश में सड़क व नहर के किनारे शीशम का रोपण बहुत अधिक संख्या में किया गया है। शीशम जलौनी, लकड़ी, चारे हेतु एक महत्वपूर्ण प्रजाति है। कुछ वर्षो से एक कवक के संक्रमन से पानी लगने वाले क्षेत्रो में शीशम के वृक्ष बुरी तरह प्रभावित है। शीशम के वृक्ष लगभग प्रत्येक आयु वर्ग में उपलबध है किन्तु छोटे आयु वर्ग में तुलनात्मक रूप से कमी है। रोग

के अधिक ग्रहण से कृषकों का ध्यान कम हो रहा है। शीशम के 7 से 15 वर्ष के पेड़ सूख जाते है। मांग तथा आपूति में साम्य स्थापित करने हेतु आवश्यक है कि शीशम के पौध प्रतिवर्ष के वृक्षारोपण कार्यक्रम में योजनाबद्ध ढंग से रोपित किये जाय जिससे सतत उपलब्धता निश्चित हो सके।

सागौन

यह इमारती लकड़ियों का राजा कहलाता है। इसके ऊपर फफूँद, कीड़ें आदि का जल्द असर नहीं होता है। इस वृक्ष से निकाले गये तेल से इक्जेमा का इलाज किया जाता है। सागौन के वृक्ष प्रायः 5 वर्ष तक की आयु के ही उपलबध हैं, कृषि वानिकी या बाग के रूप में। लकड़ी महंगी होने के कारण इसका उपयोग ईंधन के रूप में कम ं करते हैं। सागौन की 90 प्रतिशत मॉग की आपूर्ति बाजार से ही पूरी होती है। सागौन के वृक्ष बहुत कम आयु के हैं भविष्य में ही उनकी उपलबधता होगी। सतत उपलब्धता हेतु आवश्यक है की सागौन के वृक्षों का रोपण वन विभाग और कृषकों द्वारा अधिक से अधिक किया जाये। सागौन की लकड़ी कीमती होने के कारण आर्थिक समृद्वि हेतु महत्वपूर्ण है।

कटहल

कटहल प्राचीन काल से ही फलों तथा इमारती लकड़ी हेतु प्रयुक्त हाने वाली प्रमुख प्रजाति है। कटहल के वृक्षों की नगण्य संख्या औसतन एक ग्राम में 3–5 पायी गयी जो 15–25 वर्ष की आयु के थे। यह प्रजाति विलुप्तता के कगार पर है यह अति आवश्यक है कि कटहल पौध वृहद स्तर पर तैयार करके उनका वृक्षारोपण ग्राम स्तर पर उपलब्ध योग्य भूमि पर किया जाय।

नीम

नीम बहुतायत में इमारती लकड़ी तथा जलौनी हेतु प्रयुक्त होती है तथा एक महत्वपूर्ण प्रजाति है। नीम के भी 0–10 वर्षो में वृक्षों की संख्या नगण्य हैं। बड़े वृक्ष 15–35 वर्ष की आयु में उपलब्ध है किन्तु मांग के अनुरूप उपलब्धता बहुत कम है। यह वांछित है कि इस प्रजाति की सतत उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु इसके प्रत्येक आयु वर्ग की पौध लगायी जाय।

यूकेलिप्टस

इसके 10 वर्षो तक के वृक्ष ग्रामों में प्रायः उपलब्ध है। 10–20 वर्षो की आयु में भी कुछ वृक्ष है। 20 वर्षो से अधिक वृक्षों की संख्या नगण्य है। कृषिवानिकी में अति प्रचालित होने के कारण यह व्यवसायिक महत्व की प्रजाति है। यह प्लाइवुड /वीनियर, गृह निर्माण तथा ग्रामीणों के अन्य कार्यो में उपयोगी है। कृषिवानिकी में यह खेत की मेड़ो तथा ब्लाक रोपण में भी लगाया जाता है। मांग तथा आपूर्ति में अधिक अन्तर सतत पौधरोपण द्वारा ही कम किया जा सकता है।

पॉपलर

पॉपलर के वृक्षों की उपलब्धता पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र में मांग से बहुत कम है। यह भी यूकेलिप्टस के समान व्यवसायिक महत्व का है किन्तु क्षेत्र में यह वृक्ष कम ही पाये जाते है। क्षेत्र के तराई भाग में लगभग 10 वर्षो तक के वृक्ष पाये जाते है। आवश्यकता है कि क्षेत्र के अन्य भागो में भी कृषिवानिकी में इसका विकास किया जाय।

आम, नीम, कटहल, बबूल की प्रजातियॅा पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में मांग के अनुसार पर्याप्त मात्रा में उपलबध नहीं है। कुछ वर्षों में गॉवों में जो सागौन, शीशम, के पेड़ लगाये है वह बहुत कम उम्र के होने के कारण काटे नही जा सकते है। इसलिए जलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में लकड़ी उपलब्ध नही है जिससे जलौनी की समस्या उत्पन्न हो गयी है। आम के पेड़ जो लगभग 40 से 50 वर्ष पहले के थे, काटने के कारण बहुत कम रह गये है।

- भविष्य में इमारती लकड़ी तथा जलौनी की सतत उपलबधता हेतु योजनाबद्ध तरीके से इन महत्वपूर्ण प्रजातियों का रोपण राज्य वन विभाग, कृषकों तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाना चाहिए।
- आम (देशी आम), कटहल, नीम, बबूल बहुत कम उपलबध है, इसमें कटहल, बबूल लगभग समाप्ति के कगार पर है। सागौन और शीशम पिछले कुछ वर्षो में लगाये है लेकिन हमें देसी आम, कटहल, नीम को भी लगाने की जरूरत है कि हमे इमारती लकड़ी और जलोनी पर्याप्त मात्रा में मिल सके।
- नये उम्र के आम (कलमी आम) से फल तो मिल रहा है लेकिन जलौनी के लिए लकड़ी नही मिलती है, इससे जलौनी की कमी हो रही है।
- गॉवों में यह पाया गया कि शीशम के 7 से 15 वर्ष के पेड़ सूख जाते है।
- सागौन और शीशम पिछले कुछ वर्षो में लगाये है लेकिन हमें देसी आम, कटहल, नीम को भी लगाने की जरूरत है कि इमारती लकड़ी और जलौनी पर्याप्त मात्रा में मिल सके।

ग्रामीण विकास में यूकेलिप्टस और पापलर कृषि वानिकी

यूकेलिप्टस और पापलर कृषि वानिकी के अन्तर्गत खेत के चारों तरफ मेड़ों पर दो या तीन पंक्तियों में अथवा खेतों के अन्दर पंक्तियों में एक निश्चित दूरी में फसलों के साथ वृक्षों को रोपित किया जाता है। इस पद्धति में रोपित वृक्षों के मध्य दूरी इस प्रकार रखी जाती है कि उनके मध्य में कृषि फसलों को उगाया जा सके तथा कृषि कार्य हेतु उनके मध्य से ट्रैक्टर आदि चलाया जा सके। राज्य वन विभाग के नियमानुसार प्रजातियों का कटान तथा ढुलान समयानुसार उचित परमिट प्राप्त

कर के किया जाता है।

उचित दर पर वृक्ष प्रजातियों की बिक्री उपयुक्त बिक्री स्त्रोत से की जा सकती है : वन निगम, आरा मशीन, प्लाईवुड / विनीयर उद्योग अन्य काष्ठ उद्योग। प्लाईवुड / विनीयर उद्योग में मुख्य रूप से यूकेलिप्टस तथा पापलर प्रजातियों का प्रयोग होता है। इस उद्योग में बिक्री हेतु 7–8 वर्ष की तैयार लकड़ी ही प्रयोग की जाती है। 18–50 इंच मोटाई के यूकेलिप्टस तथा पापलर के वृक्ष विनीयर उद्योग हेतु उपयुक्त होते हैं। 52 इंच के टुकड़े युकेलिप्टस तथा 40 इंच के टुकड़े पापलर हेतु उपयुक्त होते है। एक वृक्ष से तीन फसले ली जा सकती है। यूकेलिप्टस व पापलर का वर्तमान बाजार मूल्य 600 रूपये / कुन्टल है। पैकिंग बाक्स उद्योग में यूकेलिप्टस ,आम आदि की लकड़ी की बिक्री की जा सकती है। क्षेत्र की नजदीकी आरा मशीनों पर किसान वन विभाग से नियमानुसार कटान तथा ढुलान परमिट प्राप्त कर वृक्षों की बिक्री कर सकते है।इसके अतिरिक्त वन निगम द्वारा तैयार किये मानकों जैसे मोटाई के आधार पर देय मूल्य से भी कृषक प्रार्थना पत्र देकर वृक्षों की बिक्री कर सकते है।

निष्कर्ष

पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र में ग्रामीण तथा शहरी स्तर की चारा, लडकी तथा जलौनी की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। ग्रामीण अपनी दैनिक आवश्यताओं जैसे– जलौनी , लकड़ी की पूर्ति व्यापक स्तर पर बाजार में उपलब्ध लकड़ी से करते है जो विभिन्न ग्रामीण तथा शहरी बाजारों मे बनों तथा अन्य स्रोत्रों से उचित मूल्य में उपलब्ध है। वनों पर ग्रामीणें की निर्भरता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। बाजार के माध्यम से बन उत्पाद, उपभोक्ताओं तक पहुॅचता हैं। प्रजातियों के मांग और आपूर्ति के अन्तर के आधार पर पौधारोपण कार्यक्रमों में प्रजातियों का चयन विलुप्त हो रही प्रजातियों को सूचीबद्ध करके किया जा सकता हैं। पौधारोपण कार्यक्रमों में इन प्रजातियों का रोपण ग्रामीण विकास में टिम्बर प्रजातियों की सतत उपलब्धता में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

फालसा के लाभ

नीरज गुप्ता [1*] और आरती शर्मा [2]

[1]डिविजन आफ फूड साइंस एण्ड टेक्नोलोजी, चट्ठा, स्कास्ट जम्मू–180009

[2]डिविजन आफ फ्रूट साइंस, चट्ठा, स्कास्ट जम्मू–180009

फालसा एक मध्यम आकार का झाड़ीदार पेड़ होता है। इसका वनस्पतिक नाम **ग्रेविया एशियाटिका** है। फालसा टिलिएसी कुल का होता है। फालसे का यह झाड़ीदार पेड़ पूरे भारत में पाया जाता है। उत्तरी भारत में अधिक संख्या में बाग–बगीचे होते हैं। इन बाग बगीचों के बीच–बीच में ही इसके पेड़ अधिक संख्या में पाए जाते हैं। फालसे के पत्तों का आकार गोल होता है तथा ये कंगूरेदार होते हैं। इसके फूल बड़े–बड़े होते हैं। इसके फल गोल होते हैं। फालसे के पेड़ की छाल तथा फल का प्रयोग औषधि बनाने के लिए किया जाता है। गर्मी के दिनों में फालसे का सेवन हर उम्र के व्यक्तियों के लिए लाभकारी है। पके हुए फालसे का स्वाद मीठा होता है। कच्चा फालसा कसैला और खट्टा होता है। फालसे की तासीर खाने में ठंडी होती है।

फालसे के लाभ :

- फालसे में एंटी–ऑक्सीडेंट्स भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। जो शरीर को इन्फेक्शन से बचाते हैं।
- फालसे में मैग्नीशियम, पोटैशियम, सोडियम, फास्फोरस, कैल्शियम, प्रोटीन, विटामिन ए और विटामिन सी पाए जाते हैं जो शरीर को स्वस्थ रखते हैं।
- गर्मियों के दिनों में फालसे का रस पीने से पित्त की समस्या दूर होती है और पाचन क्रिया मजबूत होती है।
- फालसे के सेवन से कैंसर की समस्या को दूर किया जा सकता है क्योंकि इसमें रेडियो धर्मीक्षता भी होती है।
- फालसे में विटामिन सी और खनिज अधिक पाए जाते हैं जिससे ब्लडप्रेशर और कोलेस्ट्रॉल का लेवल नियंत्रित रहता है।
- फालसे के रस के सेवन से शरीर में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ जाती है और एनीमिया को दूर किया जा सकता है।

- मूत्र संबंधी रोगों में बहुत सारी समस्याएँ आती हैं जैसे पेशाब करते वक्त जलन या दर्द होना आदि। यूरीनरी ट्रैक्ट इंफेक्शन में यही समस्या आती है। इसके लिए 5 ग्राम फालसे की जड़ को रात भर 50 मि.ली पानी में भिगोकर रखें, सुबह–शाम मसलकर, छानकर पिलाने से मूत्र विकारों से राहत मिलती है।
- अर्थराइटिस के दर्द से फालसा राहत दिलाता है। फालसा के जड़ की छाल का काढ़ा बनाकर 10 / 30 मि.ली. मात्रा में पिलाने से गठिया में लाभ होता है।
- यदि लंबे समय से अल्सर के घाव से परेशान हैं तो फालसा का इस तरह से इस्तेमाल करने पर जल्दी घाव सूखने में मदद मिलती है। फालसा की पत्तियों को पीसकर लेप करने से या छोटी–सी पोटली बनाकर बांधने से व्रण या अल्सर को सूखने में मदद मिलती है।
- अगर किसी बीमारी के कारण कमज़ोरी महसूस हो रही है तो 2 ग्राम फालसा छाल चूर्ण में 2 ग्राम मिश्री मिलाकर गाय के दूध के साथ पीने से शरीर को शक्ति तथा बल मिलता है।
- कभी–कभी किसी कारणवश शरीर के अंगों में गांठ पड़ने लगती है। वहां फालसा की पत्तियों को पीसकर गांठ पर लेप करने से लाभ होता है।
- जैसे ही मौसम बदलता है लोग बुखार की परेशानियों से जुझने लगते हैं। ऐसी हालत में घरेलू उपाय बहुत काम आते हैं। ऐसे में फालसे की छाल का काढ़ा बनाकर 10–15 मि.ली. मात्रा में पीने से अजीर्ण तथा फीवर में राहत मिलती है।

फालसा के सेवन से न सिर्फ शरीर में पोषक तत्वों की कमी पूरी होती है बल्कि शरीर को शीतलता भी मिलती है और लू आदि से बचाव होता है। साथ ही यह पाचन को दुरूस्त करता है, खांसी–जुकाम से बचाता है और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करता है।

रेशम उत्पादन– रेशम कीट एवं उसका महत्व

डॉ0 संजीत कुमार सिंह

श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, उ0प्र0

रेशम के कपड़े बड़े ही मनमोहक होते है तथा उन्हें स्त्री और पुरूष दोनों ही बहुत शौक से पहनते है।

इतिहास–रेशम उद्योग का एक रोमांचकारी इतिहास है। कहा जाता है कि लगभग 2600 ईसा पूर्व चीन की एक महारानी सी लिंग ची ने अपनी वाटिका में पेड़ों पर सफेद से रंग के कोये फलों की भाँति लटके हुये देखें। उन्हें देखकर वह आकर्षित हुयी और उनमें से सूक्ष्म धांगे उतरवां कर महीन व चमकदार कपड़ा बुनवाया जो बाद में बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ। चीनियों ने रेशम के उद्योग को बढ़ाया और गुप्त रखा। कुछ समय बाद पुजारियों द्वारा यह रहस्य किसी प्रकार से यूरोप पहुँच गया।

रेशम के प्रकार–रेशम दो प्रकार के होते हैं –

1. प्राकृतिक रेशम– यह रेशम कीट के कोयों से प्राप्त किया जाता है।
2. मानव निर्मित रेशम– यह बनावटी धागों से बनाया जाता है।

रेशम कीट की जातियाँ–रेशम के कीटों की कई जातियाँ पहचानी गयी है। इनमें से कुछ जंगली तथा अन्य अनेक पायी जाती है। कुछ जातियाँ निम्नलिखित है–Munga Silk Worm, Oak Silk Worm, Tussore Silk Worm, Garnt Silk Worm, Cri Silk Worm तथा Mulberry Silk Worm.

शहतूत का रेशम कीट– यह जाति पहले चीन में उत्पन्न हुयी थी। लेकिन अब संसार के अनेक देशों में पायी जाती है। संसार का अधिकांश रेशम इसी जाति के कीटों से प्राप्त होता है। रेशम कीट के नर व मादा कीट अलग–अलग होते है। इस कीट का रंग सफेद क्रीम मोती जैसा होता है और पंख फैलाने पर लगभग 4 से 4.5 सेमी चौड़ा होता है।

जीवन चक्र–जून–जुलाई के महीने में नर व मादा मैथुन करते है। नर द्वारा मादा के शरीर में छोड़े गये स्पर्म से अण्डे का निषेचन करते हैं। मादा कीट निषेचन के बाद शहतूत की पत्तियों के निचले तल पर लगभग एक बार में 300 अण्डे देती है। मादा इन अण्डों को एक लसदार तरल द्वारा चिपकाकर एवं ढककर रखती है। अण्डे हल्के पीले तथा चिकने होते है। लगभग 10 दिन बाद प्रत्येक अण्डे से एक लार्वा निकलता है और शहतूत की पत्तियों पर लूपिंग भाँति के द्वारा चलने लगती है तथा बाद में

शहतूत की पत्तियाँ खाने लगते है। अपने जीवन काल में चार बार त्वक पतन करती है।

प्यूपा और कोकून– इल्ली जब विश्राम अवस्था में आ जाती है तो उसके सिर के दोनों ओर सैलवरी ग्रैण्ड विकसित हो जाती है । रेशम ग्रन्थियों से स्रावित एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ लैंबियम के सूक्ष्म रन्ध्रों द्वारा बाहर निकलता है। यह पदार्थ वायु के सम्पर्क में आकर 5 अति महीन सूतों के रूप में सूखता है। इस समय जब ठोस सूत का उत्पादन हो रहा होता है इल्ली अपने शरीर को घुमाती है जिससे रेशम तंतु उसके शरीर पर चिपकता जाय और वह अपने को कोकून में बन्द कर लेती है।

रेशम प्राप्त करना–प्यूपावरण के अन्दर जब कीट प्रौढ़ हो जाता है तो वह अपनी क्षारीय लार से कोये का एक सिरा गला देता है तथा बाहर आ खाता है। चूकि ऐसा होने से कोकून कट–फट जाता है और उसके सूत छूट जाते है तथा रेशम के धांगे प्राप्त करने के लिए बेकार हो जाते है। इसलिए कीट के कोकून बनने के समय ही कोये को एकत्रित कर लेते है तथा उसको उबलते हुए पानी में डाल देते है। ताकि अन्दर उपस्थित कीट मर जाये और कोयों से महीन तंतु बिना कटे–फटे उतार लिये जाये।

रेशम का तंतु जो कोकून के ऊपर पाया जाता है वह अत्यधिक मुलायम होता है तथा एक कोये पर लगभग 1000–1500 मीटर लम्बा रेशम का तंतु होता है। अतः रेशम बनाने के लिए 6–6 या 8–8 तंतुओं को ऐठकर धागें बनाये जाते है। जिनसे रेशम का कपड़ा तैयार किया जाता है। 450 ग्राम रेशम 25000 कोये से प्राप्त होता है।

रेशम का महत्व–

1. रेशम के उत्पादन हेतु जब किसान कोये को अपने चरखा द्वारा धागाकरण की प्रक्रिया आरम्भ कर दे तो 10–15 किलो कोयों से 1 किलो रेशम का धागा प्राप्त होता है। बाजार में 1 किलो रेशम धागा का मूल्य 1000–1500 रूपये है। यह कार्य करने से किसान की आय में बढ़ोत्तरी होती है।
2. यदि किसान अपने द्वारा उत्पादित रेशम कीट के कोयों से प्राप्त धागे से कपड़ा बुनाई और पोशाक तैयारी प्रारम्भ कर दे तो उसकी आय में आशातीत वृद्धि होगी।
3. शहतूत के पुराने वृक्षों की लकड़ी का उपयोग क्रिकेट का बल्ला और हाकी स्टिक बनाने के काम आता है।
4. रेशम से नये–नये एवं आकर्षक वस्त्र बनाये जाते हैं।
5. शल्य चिकित्सा में टॉके रेशम के लार्वा के आहार नालिका का सुखाकर बनाया जाता है, जो थेरेपी में काम आता है।

अलसी की उन्नत खेती एवं रोग प्रबन्धन

अमित कुमार मौर्य[1], विन्नी जॉन[1], डॉ. डी. के. श्रीवास्तव[2] और डॉ. हेमलता पंत

[1]सैम हिग्गिनबॉटम कृषि, प्रोद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211007, उ.प्र.

[2]विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, उ.प्र.

सी.एम.पी. पी.जे. कालेज, प्रयागराज, उ.प्र.

अलसी बहुमूल्य औद्योगिक तिलहन फसल है। अलसी के प्रत्येक भाग का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न रूपों में उपयोग किया जा सकता है। अलसी के बीज से निकलने वाला तेल प्रायः खाने के रूप में उपयोग में नही लिया जाता है बल्कि दवाइयाँ बनाई जाती है। इसके तेल का पेंट्स, वार्निश व स्नेहक बनाने के साथ पैड इंक तथा प्रेस प्रिटिंग हेतु स्याही तैयार करने में उपयोग किया जाता है। म.प्र. के बुन्देलखंड क्षेत्र में इसका तेल खाने में, साबुन बनाने तथा दीपक जलाने में किया जाता है। इसका बीज फोड़ों फुन्सी में पुल्टिस बनाकर प्रयोग किया जाता है। अलसी के तने से उच्च गुणवत्ता वाला रेशा प्राप्त किया जाता है व रेशे से लिनेन तैयार किया जाता है। अलसी की खली दूध देने वाले जानवरों के लिये पशु आहार के रूप में उपयोग की जाती है तथा खली में विभिन्न पौध पौषक तत्वों की उचित मात्रा होने के कारण इसका उपयोग खाद के रूप में किया जाता है। अलसी के पौधे का काष्ठीय भाग तथा छोटे–छोटे रेशों का प्रयोग कागज बनाने हेतु किया जाता है।

उपयुक्त जलवायुः

अलसी की खेती को ठंडे व शुष्क जलवायु की आवश्यकता पड़ती है. अत अलसी भारत वर्ष में अधिकतर रबी मौसम में जहां वार्षिक वर्षा 50 से 55 सेटीमीटर होती है. वहां इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है. अलसी के उचित अंकुरण हतु 25 से 30 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान तथा बीज बनते समय तापमान 15 से 20 डिग्री सेंटीग्रेट होना चाहिए। अलसी के वृद्धि काल में भारी वर्षा व बादल छाये रहना बहुत ही हानिकारक होते हैं। परिपक्वन अवस्था पर उच्च तापमान, कम नमी तथा शुष्क वातावरण की आवश्यकता होती है। यानि की इसकी खेती के लिए सम–शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है।

भूमि का चयनः

अलसी की खेती के लिये काली भारी एवं दामेट (मटियार) मिट्टियॉ उपयुक्त रहती हैं।

अधिक उपजाऊ मदृाओं की अपेक्षा मध्यम उपजाऊ मृदायें अच्छी समझी जाती हैं। भूमि में उचित जल निकास होना चाहिए। उचित जल एवं उर्वरक व्यवस्था करने पर किसी भी प्रकार की मिट्टी में अलसी की खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है।

खेत की तैयारी एवं कार्बनिक खादः

बीज के अंकुरण और उचित फसल वृद्धि के लिए आवश्यक है, कि बुआई से पूर्व भूमि को अच्छी प्रकार से तैयार कर लिया जाए। फसल कटाई के पश्चात खेत को मिट्टी पलटने वाले हल से एक बार जोतने के पश्चात् 2–3 बार देशी देशी हल या हैरो चलाकर भूमि तैयार करनी चाहिए। जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए, जिससे भूमि में नमी बनी रहे। अलसी की बेहतर उत्पादन हेतु अच्छी तरह से पकी हुई गोबर की खाद 4–5 टन/हे. अन्तिम जुताई के समय खेत में अच्छी तरह से मिला देना चाहिये। मिट्टी परीक्षण अनुसार उर्वरकों का प्रयोग अधिक लाभकारी होता है।

जैव उर्वरकः

अलसी में भी एजोटोवेक्टर/एजोस्पाईरिलम और स्फुर घोलक जीवाणु आदि जैव उर्वरक उपयोग किये जा सकते हैं। बीज उपचार हेतु 10 ग्राम जैव उर्वरक प्रति किलो ग्राम बीज के हिसाब से अथवा मृदा उपचार हेतु 5 किलोग्राम/ हे. जैव उर्वरकों की मात्रा को 50 कि.ग्रा. भुरभुरे गोबर की खाद के साथ मिला कर अंतिम जुताई के पहले खेत में बराबर बिखेर देना चाहिये।

उन्नत किस्में	पकने की अवधि (दिनो में)	उपज क्षमता (क्वि./हे.)	विशेषतायें
जवाहर अलसी–२३ (सिंचित)	१२०–१२५	१५–१८	दहिया एवं उकठा रोग के लिये प्रतिरोधी, अंगमारी तथा गेरूआ के प्रति सहनशील
सुयोग (जे ..एल.एस. –२७) (सिंचित)	११५–१२०	१५–२०	गेरूआ, चूर्णिल आसिता तथा फल मक्खी के लिये मध्यम रोधी
लक्ष्मी २७ (सिंचित)	११५–१२०	१५–१८	बुन्देलखण्ड हेतु संस्तुत गेरुई/ रतुआ अवरोधी द्य
मदू आजाद–१(सिंचित)	१२२–१२५	१६.३	झुलसा अवरोधी
जवाहर अलसी–६ (असिंचित)	११५–१२०	११–१३	दहिया, उकठा, चूर्णिल आसिता एवं गेरूआ रोग के लिये प्रतिरोधी
जे.एल.एस.–७३ (असिंचित)	११२	१०–११	चूर्णिल आसिता, उकठा, अंगमारी एवं गेरूआ रोगो के लिये रोधी
श्वेता (सिंचित)	१३०–१३५	१५–१८	गेरुई/ रतुआ अवरोधी तथा उकठा सहनशील मैदानी क्षेत्रों हेतु

बीज दरः

बहुउद्देशीय प्रजातियों के लिए 30 किग्रा./हे. तथा द्विउद्देशीय प्रजातियों के लिए 50 किग्रा./ हे.।

बुवाई की दूरीः बहुउद्देशीय प्रजातियों के लिए 25 सेमी. कूंड से कूंड तथा द्विउद्देशीय प्रजातियों के लिए 20 सेमी. कूंड से कूंड।

बुवाई का समय एवं विधि :

अलसी बोने का उचित समय सम्पूर्ण अक्टूबर माह है। इसका बीज 25–30 किग्रा./हे. की दर से बोया जाता है। इसकी बुवाई हल के पीछे कूंडों में 25 से. मी. की दूरी पर करें।

रतुआ या गेरुई रोगः

रोग यह रोग मेलेम्पसोरा लाइनाई नामक फफूंद से होता है। रोग का प्रकोप प्रारंभ होने पर चमकदार नारंगी रंग के स्फोट पत्तियों के दोनों ओर बनते हैं, धीरे धीरे यह पौधे के सभी भागों में फैल जाते हैं। रसायनिक दवा के रुप में टेबूकोनाजोल 2 प्रतिशत 1 ली. प्रति हेक्टे. की दर से या केप्टाऩ हेक्साकोनाजालद्ध का 500–600 ग्राम मात्रा को 500 लीटर पानी मे घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

उकठा रोगः

यह अलसी का प्रमुख हांनिकारक मृदा जनित रोग है इस रोग का प्रकोप अंकुरण से लेकर परिपक्वता तक कभी भी हो सकता है। रोग ग्रस्त पौधों की पत्तियों के किनारे अन्दर की ओर मुड़कर मुरझा जाते हैं। इस रोग का प्रसार प्रक्षेत्र में पड़े फसल अवशेषों द्वारा होता है। रोग ग्रसित पौधों की पत्तियां नीचे से ऊपर की ओर पीली पड़ने लगती है तथा बाद में पूरा पौधा सूख जाता है। इस रोग के बचाव के लिए दीर्घ अवधी का फसल चक्र अपनाएं।

बुकनी रोग :

इस रोग के संक्रमण की दशा में पत्तियों पर सफेद चूर्ण सा जम जाता है। रोग की तीव्रता अधिक होने पर दाने सिकुड़ कर छोटे रह जाते हैं । देर से बुवाई करने पर एवं शीतकालीन वर्षा होने तथा अधिक समय तक आर्द्रता बनी रहने की दशा में इस रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। उन्नत जातियों को बायें। इस रोग में पत्तियों पर सफेद चूर्ण सा फैल जाता है और बाद में पत्तियां सूख जाती हैं इसकी रोकथाम के लिए घुलनशील गंधक 3 किग्रा./हे. की दर से छिड़काव करें।

आल्टरनेरिया या अंगमारीः

इस रोग से अलसी के पौधे का समस्त वायुवीय भाग प्रभावित होता है परंतु सर्वाधिक

संक्रमण पुष्प एवं पत्तियों पर दिखाई देता है। फूलों की पंखुडियों के निचले हिस्सों में गहरे भूरे रंग के लम्बवत धब्बे दिखाई देते हैं। अनुकूल वातावरण में धब्बे बढ़कर फूल के अन्दर तक पहुँच जाते हैं जिसके कारण फूल निकलने से पहले ही सूख जाते हैं। इस प्रकार रोगी फूलों में दाने नहीं बनते हैं। उन्नत जातियों की बोनी करें। केप्टान् हेक्साकोनाजालद्ध का 500–600 ग्राम मात्रा को 500 लीटर पानी मे घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

प्रभावी बिन्दुः

1. बीज को 2.5 ग्राम थीरम में प्रति किग्रा. बीज की दर से शोधित करके बोयें।
2. बुवाई नवम्बर के प्रथम सप्ताह में करें।
3. गरिमा, श्वेता, शुभ्रा, शिखा, शेखर तथा पदमिनी प्रजातियों को बोयें।
4. संतुलित मात्रा में उर्वरक प्रयोग करें।
5. खड़ी फसल में मैकोजेब 2.5 किग्रा./ हे. की दर से 40–50 दिन पर छिड़काव करें दूसरा और तीसरा छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें।

6. सिंचाई उपलब्धता होने पर फूल आने के समय कम से कम एक सिंचाई अवश्य करें।
7. गालमिज के नियंत्रण के लिए कली बनते समय ही किसी कीटनाशक का छिड़काव करें।

रबी फसल में अधिक आय प्राप्त करने के उपाय

डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, डॉ. अमित कुमार मिश्रा, रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री एवं डॉ. रविंद्र कुमार पाण्डेय

कृषि विज्ञान संकाय, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)

वर्तमान जलवायु परिवर्तन के दौर में विभिन्न फसलों का अपेक्षित उत्पादन प्राप्त करना एक गंभीर समस्या है। मृदा उर्वरता घटने के कारण वर्तमान खाद्यान्न उत्पादन स्तर भी बरकरार रख पाना कठिन प्रतीत हो रहा है। कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए हमारे सामने दो महत्वपूर्ण विकल्प है – पहला यह कि हम पैदावार बढ़ाने के लिए कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करें जो कि लगभग असंभव है और दूसरा महत्वपूर्ण विकल्प यह बचता है कि कम से कम क्षेत्रफल से अधिक से अधिक उत्पादन ले। एकीकृत फसल प्रबंधन एक ऐसी विधि है जिससे पर्यावरण संरक्षित रखते हुए अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। दीर्घकालीन टिकाऊ खेती हेतु उत्पादन के विभिन्न घटकों जैसे भूमि, जल, एवं फसलों आदि के प्रभावशाली प्रबंधन किया जा सके। उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए रबी फसलों के उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि हेतु विभिन्न उपाय किया जा सकते हैं।

फसलों के उत्पादन वृद्धि हेतु उपाय

बीजोपचार

यह बीज जनित रोगों की रोकथाम की सबसे आसान, सस्ती एवं लाभकरी विधि है, फफूंदनाशी रसायन जो बीज जनित रोगाणुओं को मार डालता है यह एक संरक्षण कवच के रूप में कार्य करता है जिससे बीज को रोगजनक के आक्रमण एवं सड़ने से रोका जा सकता है। दैहिक फफूंदनाशक जैसे–थायरम, कैप्टान, डायथेन एम–45 की 25 से 3.0 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज के उपचार के लिए पर्याप्त होती है। जैविक फफूँदनाशी ट्राइकोडर्मा विरडी, ट्राइकोडर्मा हारजिनेयम, ग्लोमस प्रजाति आदि मृदा जनित फफूंदों जैसे– फयूजेरियम, राइजोक्टोनिया, स्क्लेराशियम, मैक्रोफोमिना इत्यादि के द्वारा होने वाली बीमारियों को जड़ सड़न, आद्रगलन, उकठा, बीज सड़न, अंगमारी आदि को नियंत्रित करते है। जैविक फफूँदना शियों की 5–10 ग्राम मात्रा द्वारा प्रति किया बीज का उपचार हेत 50 किलो गोबर खाद में एक किग्रा ट्राइकोडर्मा अथवा बेसिलस सबटिलिस या स्यूडोमोनास को मिलाकर छाया में 10 दिनों तक नम अवस्था में रखते हैं। तत्पश्चात् एक एकड़ क्षेत्र

में फैलाकर जमीन में मिलाते हैं।

मृदा के उतम स्वास्थ्य हेतु जैव उर्वरकों का उपयोग

जैव उर्वरकों में मौजूद सूक्ष्मजीव पौधों के लिये पोषक तत्व उपलब्ध कराने की क्षमताए मृदा के उतम स्वास्थ्य हेतु जैव उर्वरकों का उपयोग जैव उर्वरकों में मौजूद सूक्ष्मजीव में पौधों के लिये पोषक तत्व उपलब्ध कराने की क्षमता होती है ये वायुमण्डलीय नत्रजन को भूमि में स्थित (स्थिर) करने भूमि में अघुलनशील स्फुर व पोटाश जो खनिजों के अपक्षय से बनते हैं उन्हें घुलनशील बनाते हैं एवं कार्बनिक पदार्थों (जीवांश) को सड़ा–गलाकर पौधों के लिए उपयोगी बनाते है। जैव उर्वरक सरल, प्रभावी, प्रकृति अनुकूल एवं सस्ता साधन है, जिसका उपयोग कर कम लागत में वांछित पोषक तत्वों की पूर्ति कर सकते हैं।

जैव उर्वरकों से लाभ–

वृद्धि कारक हार्मोन, विटामिन व खनिज तत्वों की भी पूर्ति करने में सहायक हैं। जैव उर्वरक प्रयोग से बीजों का अंकुरण शीघ होता है पौधों की वृद्धि अधिक होती है। जैव उर्वरकों के उपयोग से फसल उत्पादन में 10–20 प्रतिशत वृद्धि होती है।

जैव उर्वरकों का वर्गीकरण

राइजोबियम जैव उर्वरक

राइजोबियम जैव उर्वरक वातावरण की नाइट्रोजन को फसल के साथ सहभागिता सहजीवी रूप में अवशोषित कर भूमि में स्थिर करते हैं। राइजोबियम दवारा औसतन 40–80 किया नत्रजन प्रति हेक्टेयर परिवर्तित होकर भूमि में बची रहती है जो आगामी फसल को लाभ पहुंचाती है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक

यह सहजीवी जीवाणु है जो पौधों की जड़ों में सतह में रहते हुये वायुमण्डलीय नत्रजम को परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध करवाते हैं। ये जीवाणु कुछ विशेष पादप द्विविनियामक पदार्थों जैसे– जिबरेलिन का स्राव करते है जो फसल की उत्पादकता बढ़ाने साथ ही कुछ एण्टीबायोटिक रसायन उत्सर्जित करते है जिससे फसल में लगने वाले भूमिजन्य रोग व वायरस रोगों से फसल का बचाव होता है। एजेटोबैक्टर के उपयोग से 20–4 किग्रा जत्रजन प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष तक फसल को प्राप्त होती है।

फास्फोरस प्रदायी जैव उर्वरक (पी.एस.बी.)

फास्फोरस प्रदायी जैव उर्वरक स्यूडोमोनास, बैसिलस, माइकोराइजा भूमि में उपस्थित अघुलनशील स्फूर को घुलन व गतिशील अवस्था में लाने का कार्य करते हैं। स्फूर प्रदा्य जैव

उर्वरक, भूमि में उपस्थित 70 प्रतिशत अघुलनशील स्फूर को धुलनशील व गतिशील अवस्था में लाकर पौधों में उपलब्ध कराते हैं जिससे पौधों की वृद्धि व विकास अच्छा होने से 8–10 प्रतिशत उत्पादन में बढ़ोतरी होती है।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरक का प्रयोग खेत की मिट्टी परीक्षण के बाद करने से ज्यादा लाभदायी रहेगी। संतुलित खाद का अर्थ है कि किसी स्थान विशेष की मिट्टी फसल और वातावरण के आधार पर तत्व यथा नत्रजन, स्फूर व पोटाश हेतु उपयुक्त उर्वरकों का प्रयोग। भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने के लिए प्रत्येक एक या दो वर्ष में एक बार अपने खेतों में पकी हुई गोबर की खाद (200–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) या कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट आदि का उपयोग ठीक होगा। हरी खाद प्रमुखतया ढेंचा या सनई की 35–45 दिन की फसल को जुताई कर खेत में मिला देने से दो वर्ष तक किसी अन्य जैविक खाद के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती।

खाद देने का समय एवं विधि

उर्वरक बीज बोने से पहने सीड ड्रिल द्वारा जमीन में 10 से.मी. की गहराई पर डालना चाहिए या बोने के समय डबल पोर फड़क द्वारा बीज से 5 सेमी. नीचे डालना चाहिए। संतुलित खाद के उपयोग से फसल की बाढ़ संतुलित होती है जिससे अनायास पौधा गिरता नहीं है। मृदा का स्वास्थ्य ठीक एवं उर्वराशक्ति स्थिर बनी रहती है। उत्पादित फसल की गुणवत्ता ठीक रहती है जिससे बाजार भाव सही प्राप्त होता है।

नेशनल वेबीनार ऑन चैलेंज का आयोजन

वैज्ञानिक विधि से प्याज की खेती

विन्नी जॉन, अमित कुमार मौर्य, सोविता साइमन और मुकेश कुमार
सैम हिग्गिनबॉटम कृषि, प्रोद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211007 (उ० प्र०)

भारतवर्ष में उगाई जाने वाली सब्जी की प्रमुख व्यवसायिक फसलों में प्याज का एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्याज का उपयोग सब्जियों का सूप बनाने में, आचार, सलाद तथा अन्य रूपों में प्रमुखता से की जाती है।

भूमि की तैयारी :–

प्याज की खेती के लिए जीवांश युक्त अच्छे जल निकास वाली हल्की दोमट मिट्टी वाली भूमि सर्वोत्तम होती है। भारी भूमि में इसकी कंद छोटे रह जाते है। रोपाई से पूर्व मिट्टी को जुताई करके तथा पाटा चलाकर भुरभुरा बनाना आवश्यक है।

नर्सरी तैयार करना (पौध लगाना) :–

प्याज के बीज की बुवाई बेहन उत्पादन के लिए नवम्बर में क्यारियों के (3.1 मीटर) अच्छी सडी हुई गोबर, पत्ती या केंचुए की खाद मिलने के पश्चात करना चाहिए। 1 हेक्टेयर की रोपाई हेतु प्याज की नर्सरी डालने के लिए 8–10 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है जब पौधा 45–60 दिन के हो जाए तो खेत में रोपाई कर देनी चाहिए।

पौध की रोपाई :–

रोपाई का समाई 15 दिसम्बर से लेकर 15 जनवरी तक होता है। प्याज लगाने के लिए रबी में काफी अच्छी अवधि मिल जाती है। अतः जैसे ही अन्य फसलों में खेत खाली हो रोपाई की जा सकती है। यदि प्याज की फसल आलू या फूलगोभी के पश्चात की जाती है तो अतिरिक्त उर्वरकों की आवश्यकता बहुत कम रह जाती है। बेहन रोपाई 15–10 सेंटीमीटर की दूरी पर करना चाहिए।

खाद तथा उर्वरक :–

निम्नलिखित उर्वरक की मातृा प्रति हेक्टर क्षेत्र में देना चाहिए।

गोबर की खाद / वर्मी कंपोस्ट – 30 किलोग्राम

नत्रजन – 120 किलोग्राम

फास्फोरस – 80 किलोग्राम

पोटाश – 80किलोग्राम

नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा पौध रोपण से पूर्व खेत में मिला देना चाहिए तथा नत्रजन की शेष बची मात्रा दो बार में, एक रोपाई के लगभग 25 दिन बाद तथा दोबारा 45 दिन के बाद कर देना चाहिए।

चित्र सं: 1 प्याज की फसल

प्रजातियाँ :–

पूसा लाल, कल्यानपुर लाल गोल, पूसा, रतनार, हिसार–2, पूसा माधवी, पंजाब रेड राउंड, आर्का प्रगति, एग्रीफाउण्ड लाईट रेड, एग्रीफाउण्ड डार्क रेड, अर्का कल्याण, अर्का निकेतन, पूसा साध्वी, पटना रेड, पूसा रेड, एन.– 53, नासिक रेड, बसन्त, पूना रेड, भीम रेड, भीमा सुपर आदि प्रमुख है।

बीज दर :–

प्रति हेक्टेयर क्षेत्र की रोपाई के लिए 8–10 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

सिंचाई :–

आरंभ में सिंचाई 10–15 दिन के अंतर पर तथा फरवरी माह के बाद 5–6 दिन के अंदर करना आवश्यक है। जिस समय कंद बढ़ रहे हों, उस समय सिंचाई जल्दी करते हैं। पानी की कमी के कारण कंद अच्छी तरह से नहीं बढ़ पाते है और इस तरह से पैदावार में कमी हो जाती है। प्याज फसल की सिंचाई ड्रिप से भी अच्छी तरह से की जा सकती है।

निराई :–

प्याज में खरपतवार नष्ट करने एवं गांठ के विकास के लिए निराई–गुड़ाई करना अति आवश्यक है। चूँकि प्याज उथली जड़ वाला फसल है अतः प्याज की गुड़ाई हल्की, उथली, खुरपी द्वारा करनी चाहिए। खरपतवारों के लिए 1.0–1.5 लीटर प्रति हेक्टर लासों अथवा पेंडीमेथिलीन 3.5 लीटर प्रति हेक्टर रोपाई के तीन दिन बाद तक 800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का अंकुरण नहीं होता है आदि खरपतवार नाशी दवाओं का प्रयोग किया जा सकता है। खरपतवार नाशक दवा डालने के बाद भी 40–45 दिनों के बाद एक निराई–गुड़ाई अवश्य करनी

चाहिए।

खुदाई एवं उपज :–

पूर्ण रूप से परिपक्क्व होने के बाद ही कन्दों की खुदाई करनी चाहिए। जब पत्तियाँ पीली पड़ जाएँ तथा तने सूखकर गिरने लगें तो यह समझ लेना चाहिए की फसल तैयार है। रोपाई की तिथि के अनुसार जैसे–2 रोपाई का समय आगे बढ़ता है पैदावार कम हो जाती है। दिसम्बर माह में रोपी गयी फसल से 250–300 कुंतल प्रति हेक्टेयर की उपज मिलती है। जो कि बाद में कम होते होते अंत में 150 कुंतल प्रति हेक्टेयर रह जाती है।

भंडारण में अंकुरण को रोकना :–

खुदाई के 15 दिन पहले माइलिक हाइड्राजाइड 2.5 ग्राम दवा का घोल 1 लीटर पानी में बनाएँ एवं छिड़काव करें। लाल छिलके वाली प्रजातियों की भंडारण क्षमता अधिक होती है।

रोग व उनके उपचारः–

1. बैगनी धब्बा रोग (पर्पिल ब्लाच) :–

यह रोग अल्टरनेरिया नमक फफूंदी से होता है। रोग के लक्षण पत्तियों, बीज स्तम्भों एवं शल्क कंदों पर बनते हैं। संक्रमित भाग पर छोटे पीले से सफेद धँसे हुए धब्बे बनते हैं और लाल अथवा बैगनी रंग की सीमा होती है। जिसके चारों ओर से पीला सा सूखा क्षेत्र पनप जाता है। आर्द्र मौसम में रोग टिबरता से फैलते हैं और धब्बे पर फंफूंदी की वृद्धि होने के कारण इनका रंग काला पड़ जाता है। इसके फलस्वरूप तना व पत्तियाँ गिर जाती हैं। रोग ग्रस्त कंद भंडारण में शीघ्र सड़ने लगते हैं।

उपचार :–

- बीज को थाइरम दवा से 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित (शुष्क उपचार) करके बोना चाहिए।
- पौध अवशेषों को एकत्र कर जला देना चाहिए
- रोग रोधी किस्में जैसे दृ नासिक 53, एग्रीफाउण्ड लाईट रेड, एग्रीफाउण्ड डार्क रेड, अर्का कल्याण इत्यादि बोना चाहिए।
- खड़ी फसल में रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटाक्स ३ किलोग्राम अथवा डाइथेन एम–45 या डाइथेन जेड–78, 2–2.5 किलोग्राम अथवा बावेस्टीन 1 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोल कर 15 दिन के अंतर पर कम से कम दो छिड़काव करना चाहिए।

चित्र सं: 2 बैगनी धब्बा रोग

2. ग्रीवा विगलन अथवा गार्डन सड्न या नेकराट रोग :–

इसका कारक बोट्राइटिस नमक फफूंद है। इसमे कन्द मुलायम होकर सिकुड़ जाते है और धीरे धीरे गार्डन के पास सडने लगते हैं। रोग के लक्षण छोटे छोटे सफेद धब्बे के रूप में पत्तियों पर देखे जा सकते हैं।

उपचार :–

- प्याज भंडारण से पूर्व अच्छी तरह सूखा लेना चाहिए। जिससे भंडारण में सडन उत्पन्न न हो।
- बोने से पूर्व बीज को थायरम में उपचरित कर लेना चाहिए।
- इस रोग में लाल किस्मों की बुवाई सर्बोत्तम होती है।

3. झुलसा रोग (स्टैम्फीलियम ब्लाइट) :–

यह रोग स्टेमफीलियम बेसिकेरियम नामक कवक द्वारा फैलता है इस रोग का प्रकोप होने पर पत्तियों की शुरू की अवस्था पर एक तरफ सफेद पीली हो जाती है तथा दूसरी तरफ पत्तियां हरी होती है और प्रकोप ज्यादा होने पर भूरी होकर काली हो जाती है।

नियंत्रण के उपाय :–

- फसल अवशेषों को एकत्र करके जला देना चाहिए।
- प्याज में रोग नियंत्रण हेतु प्रतिरोधी प्रजातियों का चुनाव करें।
- बीज का उपचार करना चाहिए।
- रोग की रोकथाम के लिए डाइथेन एम– 45 का 0.25 प्रतिशत घोल बनाकर उसमें चिपकने वाले पदार्थ सैंडोविट का 0.01 प्रतिशत मात्रा मिलाकर 10 से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

कीट एवं उनका नियंत्रण

थ्रिप्स :–

यह प्याज का बहुत ही हानिकारक कीट है। जब इसकी संख्या बढ़ जाती है तो पत्तियों के सिरे भूरे रंग के हो जाते हैं तथा सूख कर गिरने लगते है।

रोकथाम :–

इसकी रोकथाम के के लिए 250 मिलीलीटर फास्फोमिडान 100 ई० सी० या एक लिटर मिथाइल, ओ–डिमेटान 25 ई० सी० प्रति हेक्टेयर की दर से तथा उपरोक्त दवा में सेन्डोविन, शैंपू या साबुन मिला कर 800–1000 लीटर पानी में घोलकर 10–15 दिन के अंतर पर 2–3 छिड़काव करना चाहिए।

दीमक :–

ककरीली, रेतीली अथवा हल्की मिट्टी में इस कीड़े का प्रकोप अधिक पाया जाता है। साथ ही साथ पुरानी फसल अवशेष का ठीक से न सड़ना, कच्ची गोबर की खाद या कंपोष्ट मिलाना आदि अधिक नुकसानदायक होता है। फसल धीरे धीरे सूख जाती है और किसान को भारी नुकसान का सामना करना पड़ता है।

रोकथाम :–

इसकी रोकथाम के लिए प्रति एकड़ 40–50 किलो हेप्टाक्लोर या क्लोरोडेन पाउडर को जमीन में अच्छी तरह से मिलना चाहिए।

कटवा :–

कीड़े की सूंडियां पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं। ये सूंडियां 30–35 मिमी. लंबा राख के रंग की होती है। ये पौधों के जमीन के अंदुरूनी वाले भाग को कतरती हैं जससे पौधे सूखने लगते हैं। तथा उखाड़ने पर आसानी से उखड़ जाते हैं। ककरीली, रेतीली अथवा हल्की मिट्टी में इस कीड़े का प्रकोप अधिक पाया जाता है।

रोकथाम :–

फसल खुदाई के बाद बचे अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। आलू के बाद प्याज की फसल नही लेनी चाहिए। रोपाई से पूर्व फोरेट 10 जी 4 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से खेत में डालना चाहिए। साथ ही साथ उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।

फैंगी/विशाक जड़ेंः चुकंदर में आकारिका जड़ विगलन

ए. के. मल्ल[1], वरुचा मिश्रा[1], संतेश्वरी[1], धर्मेंद्र कुमार[1] एवं अश्वनी कुमार[2]
[1]फसल सुधार विभाग, भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ 226 002, उ.प्र.
[2]उत्तर प्रदेश कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ – 226 002, उ.प्र.

चुकंदर एक ऐसा पौधा है जिसकी जड़ सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होती है क्योंकि इसे सुक्रोज के कच्चे माल के रूप में और आजकल इथेनॉल संभावित फसल के रूप में उगाया जाता है। चुकंदर में मूली जैसी जड़ (विशेष रूप से सुक्रोज सामग्री वाले जड़ों का रंग सफेद होता है) होती है, जो 1 से 2 मीटर की गहराई तक पहुंच सकती है। चुकंदर की जड़ में 20 प्रतिशत शर्करा, 5 प्रतिशत गूदा, 2.6 प्रतिशत गैर–शर्करा और बाकी 75 प्रतिशत पानी होता है। इन जड़ों को न केवल शर्करा के लिए अपितु इथेनॉल के उत्पादन के लिए भी संसाधित करने के लिए जाना जाता है। इसके अतिरिक्त चुकंदर की लुगदी और शीरा जैसे अन्य भागों का उपयोग भोजन और चारे के लिए किया जाता है। कभी–कभी सामान्य जड़ में रूपात्मक विचलन देखा गया है जिसे फैंगी जड़ों के रूप में जाना जाता है। इन जड़ों को विशाक जड़ें या अत्यधिक विकसित द्वितीयक जड़ें (जो कि मूली जैसी जड़ों से उत्पादित हो) भी कहा जाता है (चित्र 1)।

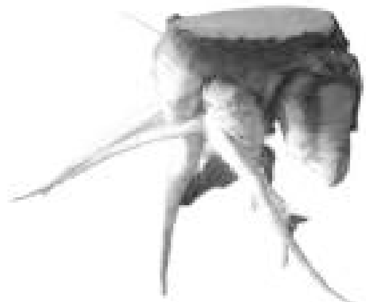

चित्र 1: अत्यधिक विकसित द्वितीयक जड़ें/विशाक जड़ें

फेंगी जड़ें बीमारियों, मृदा की स्थिति या मौसम में बदलाव के कारण से उत्पादित होती हैं। खराब मृदा में उगाई गई चुकंदर विशाक जड़ें बनती हैं। इसके अलावा, उथली मृदा भी जड़ों में इस तरह के विकृति का कारण बनती है। मृदा की जुताई या अम्लता भी नुकीली जड़ों को उत्पन्न बनने का

कारण होती है। विशाक जड़ों के निर्माण के लिए निमाटोड्स जैसे कि स्टब्बी जड़ निमाटोड्स (ट्राइकोडोरस और पैराट्रिचोडोरस), आदि, भी एक कारण है क्योंकि यह प्रारम्भिक स्तर पर मुख्य जड़ों को क्षति पहुँचाते हैं। पार्श्व जड़ें मुख्य जड़ के कार्य को लेती हैं। इसके अतिरिक्त मुख्य जड़ प्रणाली में यदि किसी भी तरह कि कोई भी क्षति होती है जैसे कि राइजोक्टोनिया संक्रमण, यांत्रिक क्षति, रासायनिक क्षति, जल भराव की स्थिति आदि तो चुकंदर में इस तरह की विशाक जड़ें बनती हैं।

फैंगी/विशाक जड़ एवं सामान्य चुकंदर की जड़ में अंतर

विशाक जड़	सामान्य चुकंदर की जड़
मुख्य जड़ प्रणाली के क्षतिग्रस्त होने पर उत्पन्न होती है।	मुख्य जड़ प्रणाली
कम चीनी सामग्री	उच्च चीनी सामग्री
रस में उच्च शुद्धता सामग्री	कम शुद्धता सामग्री
हारवेस्टर द्वारा जड़ों को उठाने में कठिनाई	जड़ों का असानी से उठ जाना
टूटे हुए नुकीले हिस्से में सुक्रोज सामग्री में हानि	सूक्रोज की मात्रा में एक समानता
जड़ों को साफ करने में कठिनाई होती है क्योंकि ऐसी जड़ों में मृदा फस जाती है।	जड़ें आसानी से साफ हो जाती है

चुकंदर में विशाक जड़ों की समस्यायेँ:

1. उठाने में कठिनाई और अधिक जंगली घास का होना।
2. हार्वेस्टर के जड़ों के उठाने में होने वाली क्षति में वृद्धि।
3. चीनी की मात्रा में कमी।
4. जड़ की तुलना में अधिक अपद्रव्य का होना।
5. प्रसंस्करण से पूर्व जड़ों की सफाई में कठिनाई।
6. प्रसंस्करण संबन्धित क्रियाओं (जैसे विसरण की क्रिया) के दौरान विशाक जड़ें समस्याओं का कारण बनती है।
7. विसरण से पूर्व चुकंदर का टूट जाना। इससे टूटे हुए भागों/सतहों से चीनी का नुकसान होता है।
8. सामग्री में नुकसान क्योंकि लुगदी में कमी हो जाती है।
9. जड़ों के बीच मृदा की मात्रा अधिक होने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से घास–फूस/जंगली घास में वृद्धि हो जाती है।

सहजन की वैज्ञानिक खेती एवं औषधीय महत्व

डॉ विद्या सागर, डॉ प्रदीप कुमार, एवं डॉ कौशल कुमार '

कृषि विज्ञान केन्द्र पांती, अम्बेडकर नगर पो0.मंशापुर –224168 (उ0प्र0), कृषि विज्ञान केन्द्र,गोन्डा (उ0प्र0)

(आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या, उ0 प्र0,)

सहजन एक बहुवार्षिक जाना पहचाना पौधा है। सहजन का वानस्पतिक नाम मोरिंगा ओलीफेरा है। यह कमजोर भूमि में हरा–भरा और तेजी से बढ़नें वाला पौधा है। गाँव में हिंदी में इसे सहजन, सुजना, सेंजन और मुनगा नाम से भी जानते हैं। हाल के दिनों में सहजन का वर्ष दो बार फलनें वाला प्रभेद तैयार किया गया है। यह संसार का सबसे ताकतवर पोषण पूरक है। सहजन 300 से अधिक रोंगों मे बहुत फायदेमंद है तथा इसकी जड. से लेकर फूल, पत्ती, फली, तना, गोंद हर चीज उपयोगी होतें है। इससे बहुत सारी आर्युवेदिक दवायें तैयार की जाती है, जिससे इसका पौष्टिक एवं औषधीय महत्व बढ़ रहा है। सहजन का बीज एवं पत्तियों को सुखाकर और पाउडर बनाकर विदेशों में निर्यात भी कियाा जा रहा है। इसे किसान अपनें घर पर दो –चार पौधे लगाकर या व्यवसायिक रुप खेती कर लाभ प्राप्त कर सकतें हैं।

जलवायु –

सामान्यतया 25–35 डिग्री से0 तापमान पर सहजन का पौधे का विकास अच्छा होता है। ज्यादा ठंड या पाले से इसकी बृद्विि प्रभावित होती है।

मिट्टी–

सभी प्रकार की मिट्टी में सहजन उगाया जा सकता है परन्तु इसके लिये 6–7.5 पी0एच0 वाली बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है।

नई प्रजातियाँ–

देश के विभिन्न क्षेत्रों सहजन की बहुत सारी स्थानीय प्रजातियाँ कृषकों द्वारा लगायी जाती है। सहजन की साल में दो बार फलनें वाली नई प्रजातियों में पी. के. एम.–1 एवं पी. के. एम.– 2, कोयेंम्बटूर–1 एवं 2 प्रमुख है। इसका पौधा 4–6 मी0 ऊँचा होता है तथा 90–100 दिन में फूल आनें लगतें हैं एवं 160–170 दिन में फल पक जातें हैं। जरुरत के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में फल की तुड़ाई कर सकतें है। एक पौधे से औसतन 400–600 पके फल प्रति वर्ष प्राप्त कर सकतें हैं जिसका 70 प्रतिशत भाग खानें योग्य होता है। इसकी पौध को 4से 5 वर्षों तक पेड़ी फसल लिया जा सकता

है। प्रत्येक वर्ष फसल लेनें के बाद पौधे को जमीन से 1से 2 मी0 छोड़ कर काटना आवश्यक होता है, जिससे नई शाखायें निकलती हैं,जिसमें फलत अच्छी आती है।

पौध रोपड़ हेतु खेत की तैयारी–

सहजन के रोपड़ हेतु खेत की अच्छी तरह साफ–सफाई एवं जुताई करके लाइन से लाइन की दूरी 4 मी. एवं पौध से पौध की दूरी 2.5 मी. रखकर पर 45x45x45 सेमीं0 आकार का गढ्ढा बनाते हैं। गढ्ढे में ऊपरी मिट्टी के साथ 10 से 15 किग्रा0 सड़ी गोबर खाद मिला कर भर देतें है।

प्रवर्धन–

सहजन का बीज एवं शाखा के टुकड़ों दोनों से प्रर्वधन होता है। अच्छी फलत एवं वर्ष दो बार फलन के लिये बीज से प्रवर्धन करना उचित रहता है। एक है0 प्रक्षेत्र में सहजन की खेती हेतु 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। सीधे तैयार गढ्ढों में या पालीथीन बैग में पौध तैयार कर रोपाई की जाती है।

सस्य प्रबन्धन–

जुलाई–सितम्बर माह में रोपाई किये गये पौधे जब 75 सेमी0 के हो जायें तो पौध के ऊपरी भाग की खोटनी कर देनें से इसके बगल से कई शाखायें निकलती हैं जिससें फलत अच्छी होती है। रोपाई के 3 माह बाद 100 ग्राम यूरिया,100 ग्राम सुपर फासफेट एवं 50 ग्राम पोटास प्रति गढ्ढे डालतें हैं। तीन महीनें बाद पुनः 100 ग्राम युरिया पुनः डालतें हैं।शोध में यह पाया गया कि मात्र 15 किग्रा सड़ी गोबर की खाद के साथ प्रति गढ्ढा 10 ग्राम एजोस्पारिलयम एवं 10ग्राम पी0एस0बी0 प्रयोग करनें से जैविक सहजन की उपज बिना किसी ह्रास के प्राप्त किया जा सकता है।

सिचाई–

बीज अंकुरण एवं अच्छी बढ़वार हेतु गढ्ढों में नमी होना आवश्यक है परन्तु फूल आते समय ज्यादे नमी नहीं होनीं चाहिये, क्योंकि ज्यादे नमी होनें पर फूल गिरनें की सम्भावना ज्यादा होती है।

कीट नियंन्त्रण–

सहजन में भूरा पिल्लू नामक कीट जो पत्तियों को खा जाता है। अण्डा से निकलनें के बाद नवजात अवस्था में ये कीट समूह एक स्थान पर रहते है, बाद में भोजन की तलाश में पूरे पौधे पर फैल जाते हैं। कभी–कभी फल पर फल मक्खी का प्रकोप भी देखनें को मिलता है। दोनों कीट निय़ंत्रण हेतु डाईक्लारोवास (न्युवान) 0.5 मिली0 प्रति ली0 पानी में घोल बनाकर छिड़काव करनें से कीट नियंत्रण हो जाता हैं।

चित्र–सहजन के पौधे एवं फल

फल की तुड़ाई एवं उपज–

सहजन की साल में दो बार फल देनें वाली किस्मों मे फलों की तुड़ाई दो बार सामान्यतः सितम्बर–अक्टूबर और फरवरी– मार्च में होती है। प्रत्येक पौधे से असौतन 400–600 (40–60 किग्रा0) फल प्रति वर्ष प्राप्त कर सकतें हैं। सब्जी हेतु सहजन के फल में रेशा बनने से पूर्व तुड़ाई कर बाजार में विक्रय से अच्छा लाभ होता है। औषधीय उपयोग,तेल निकालनें तथा निर्यात हेतु पके फल की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त हरी पत्तियों को भी औषधीय उपयोग में प्रयोग किया जाता है।

सहजन के पौष्टिक गुणों की तुलना–

सहजन में विटामिन सी– संतरे से सात गुना, विटामिन ए– गाजर से चार गुना, कैल्शियम– दूध से चार गुना, पौटेशियम– केले से तीन गुना एवं प्रोटीन– दही की तुलना में तीन गुना होती है। स्वास्थ्य के हिसाब से इसकी फली, हरी और सूखी पत्तियों में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, कैल्शियम, पोटैशियम, आयरन, मैग्नीशियम, विटामिन–ए, सी और बी–कॉम्प्लेक्स प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। इनका सेवन कर कई बीमारियों को बढ़ने से रोका जा सकता है। जो लोग इसके बारे में जानते हैं, वे इसका सेवन जरूर करते हैं।

सहजन के औषधीय गुण–

- सहजन का फूल, पेट और कफ रोगों में, इसकी फली वात व उदरशूल में, पत्ती नेत्ररोग, मोच, साइटिका, गठिया आदि में उपयोगी है।
- इसकी छाल का सेवन साइटिका, गठिया, लीवर में लाभकारी होता है। सहजन की छाल में शहद मिलाकर पीनें से वात और कफ रोग खत्म हो जाते हैं।

- इसकी पत्ती का काढ़ा बनाकर पीने से गठिया, साइटिका, पक्षाघात, वायु विकार में शीघ्र लाभ पहुँचता है। साइटिका के तीव्र वेग में इसकी जड़ का काढ़ा तीव्र गति से चमत्कारी प्रभाव दिखाता है।
- मोच इत्यादि आनें पर सहजन की पत्ती की लुगदी बनाकर सरसों तेल डालकर आंच पर पकाकर मोच के स्थान पर लगाने से जल्दी ही लाभ मिलने लगता है।
- यह ब्लड प्रेशर और मोटापा कम करने में भी कारगर है। सहजन का रस सुबह–शाम पीने से हाई ब्लड प्रेशर में लाभ होता है। इसकी पत्तियों के रस के सेवन से मोटापा धीरे–धीरे कम होनें लगता है।
- इसकी छाल के काढ़े से कुल्ला करने पर दांतों के कीड़े नष्ट होते है और दर्द में आराम मिलता है।
- इसके कोमल पत्तों का साग खाने से कब्ज दूर होता है। इसके अलावा इसकी जड़ के काढ़े को सेंधा नमक और हींग के साथ पीने से मिर्गी में लाभ होता है।
- इसकी पत्तियों को पीसकर लगानें से घाव और सूजन ठीक होते हैं। सहजन के बीज से पानी को काफी हद तक शुद्ध करके पेयजल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
- इसके बीज को चूर्ण के रूप में पीसकर पानी में मिलाया जाता है। पानी में घुल कर यह एक प्रभावी नेचुरल क्लेरीफिकेशन एजेंट बन जाता है यह न सिर्फ पानी को बैक्टीरिया रहित बनाता है, बल्कि यह पानी की सांद्रता को भी बढ़ाता है।
- सहजन के फली की सब्जी खानें से पराुने गठिया, जोड़ों के दर्द वायु सचंय, वात रोगों में लाभ होता है।
- इसके ताजे पत्तों का रस कान में डालनें से कान का दर्द ठीक हो जाता है। साथ ही इसकी सब्जी खाने से गुर्दे और मूत्राशय की पथरी कटकर निकल जाती है। इसकी जड़ की छाल का काढ़ा सेंधा नमक और हींग डालकर पीने से पित्ताशय की पथरी में लाभ होता है।
- कैंसर और पेट में बनी गांठ, फोड़ा आदि में सहजन की जड़ को अजवाइन, हींग और सौंठ के साथ काढ़ा बनाकर पीने का प्रचलन है। यह भी पाया गया है कि यह काढ़ा साइटिका (पैरों में दर्द), जोड़ों में दर्द, लकवा ,दमा, सूजन, पथरी आदि में लाभकारी है।
- सहजन के गोंद को जोड़ों के दर्द और शहद को दमा आदि रोगों में लाभदायक माना जाता है। आज भी ग्रामीणों की ऐसी मान्यता है कि सहजन के प्रयोग से वायरस से होने वाले रोग, जैसे चेचक के होने का खतरा टल जाता है।

- सहजन में हाई मात्रा में ओलिक एसिड होता है, जो कि एक प्रकार का मोनोसैच्युरेटेड फैट है और यह शरीर के लिए अति आवश्यक है। सहजन में विटामिन–सी की मात्रा बहुत होती है। यह शरीर के कई रोगों से लड़ता है।
- यदि सर्दी की वजह से नाक–कान बदं हो चुके है तो आप सहजन को पानी में उबालकर उसकी भाप लनें से जकड़न कम होती है तथा नाक–कान भी खुल जातें हैं।
- सहजन में कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है, जिससे हड्डियाँ मजबूत बनती हैं। इसके अलावा इसमें लौह लहन, मैग्नीशियम और सीलियम होता है।
- इसका जूस गर्भवती को देने की सलाह दी जाती है, इससे प्रसवकाल (डिलवरी) में होने वाली समस्या से राहत मिलती है और प्रसूता को तकलीफ कम होती है। गर्भवती महिला को इसकी पत्तियों का रस देने से प्रसव (डिलीवरी) में आसानी होती है।
- सहजन में विटामिन–ए होता है, जो कि पुराने समय से ही सौंदर्य के लिए प्रयोग किया जा रहा है।
- इसकी हरी सब्जी को अक्सर खाने से बुढ़ापा दूर रहता है इससे आंखों की रोशनी भी अच्छी होती है।
- यदि आप चाहें तो सहजन को सूप के रूप में भी पी सकते हैं। इससे शरीर का खून साफ होता है।

कुछ अन्य उपयोग–

- सहजन की जड़ दमा, जलोधर, पथरी, प्लीहा रोग आदि के लिए उपयोगी है तथा छाल का उपयोग साईटिका, गठिया, यकृत आदि रोगों के लिए श्रेयष्कर है।
- सहजन के विभिन्न अगों के रस को मधरु, वातघ्न, रुचिकारक, वदे नाशक, पाचक आदि गुणों के रूप में जाना जाता है।
- सहजन के छाल में शहद मिलाकर पीने से वात व कफ रोग शांत हो जाते है, इसकी पत्ती का काढ़ा बनाकर पीने से गठिया, शियाटिका, पक्षाघात, वायु विकार में शीघ्रलाभ पहुँचता है, साईंटिका के तीव्र वेग में इसकी जड़ का काढ़ा तीव्र गति से चमत्कारी प्रभाव दिखाता है।
- सहजन की पत्ती की लुगदी बनाकर सरसों तेल डालकर आंच पर पकाएं तथा मोच के स्थान पर लगानें से शीघ्र ही लाभ मिलनें लगता है।

- सहजन को अस्सी प्रकार के दर्द व बेहतर प्रकार के वायु विकारों का शमन करने वाला बताया गया है।
- सहजन की सब्जी खाने से पुराने गठिया और जोड़ों के दर्द व वायु संचय, वात रोगों में लाभ होता है।

अतः किसान भाई अपनें घरों के आस–पास अनुपयोगी जमीन पर सहजन के पौधे लगाकर खुद उसकी सब्जी एवं अन्य रुप में प्रयोग कर स्वयं स्वस्थ रह सकतें हैं तथा व्यवसायिक स्तर पर ज्यादा क्षेत्रफल पर सहजन का उत्पादन कर या सहजन की नर्सरी स्थापित करके पौध विक्रय कर अच्छा लाभ प्राप्त कर आर्थिक संपन्नता प्राप्त कर सकते हैं।

8 प्रयागराज

लखनऊ। • रविवार • 28 जुलाई 2019

राष्ट्रीय सहारा www.rashtriyasahara.com

भारतीय मछलियों के संरक्षण पर चर्चा

सहारा न्यूज ब्यूरो
प्रयागराज।

डॉ. गोपाल पाण्डेय स्मृति व्याख्यान माला श्रीमती डिग्री कालेज में सम्पन्न

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

विकास गुप्ता[1*], ए.पी. सिंह[1] एवम् मीनाक्षी गुप्ता[2]

[1]एडवांस सैंटर फॉर रेनफेड एग्रीकल्चर, रख ध्यानसर, बाड़ी ब्राह्मणा, स्कास्ट–जम्मू–181133

[2]सस्य विज्ञान विभाग, स्कास्ट–जम्मू, चट्ठा–180009

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग वातावरणीय संकट, कम उपज, बढ़ती हुई उत्पादन लागत, इत्यादि अपेक्षित फसल उत्पादन में बाधायें उत्पन्न कर रही हैं। उपज में कमी के मुख्य कारण हैं :

- मृदा में कार्बनिक पद्धार्थों की कमी,
- पोषक तत्वों की कमी,
- अत्यधिक रसायनों (कीटनाशक, फफूँदीनाशक, इत्यादि) के उपयोग के कारण मृदा पर विपरीत प्रभाव इत्यादि।

मुख्यतः भारतीय किसानों के पास संसाधनों की कमी है, इसलिए कार्बनिक, अकार्बनिक, देसी खाद, जैव, उर्वरक, इत्यादि सामग्रीयों को समन्वित रूप में अपनाकर भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के कार्यक्रम बनाने चाहिए।

उर्वरकों का समय और चुनाव :

- नत्रजन को हमेशा 2–3 या 4 भागों में फसल को देना चाहिए, जिसमें से 1 मात्रा पर्णीय (2–3 प्रतिशत) छिड़काव के रूप में देनी चाहिए, जिसका तुरन्त परिणाम (24–48 घंटे) में मिलता है। तिलहन और दलहन फसलों में नत्रजन की पूर्ण मात्रा बोने के समय देनी चाहिए। उर्वरकों को बीज से 3–4 से.मी. नीचे रखना चाहिए। दलहनी और तिलहनी फसलों को फास्फोरस सिंगल सुपर फास्फेट (एस.एस.पी.) के रूप में देना चाहिए। क्योंकि इससे फसलों को गंधक (सल्फर) की मात्रा भी बिना किसी अतिरिक्त खर्च के मिल जाती है।

- यूरिया को जब नीम केक, सल्फर, रॉक फॉस्फेट इत्यादि से उपचारित किया जाता है, तो नत्रजन की उपयोग क्षमता बढ़ जाती है और उसकी क्षति कम हो जाती है। 40 कि.ग्रा. यूरिया (नीम केक या जिंक से उपचारित) लगभग 50 कि.ग्रा. साधारण यूरिया के बराबर प्रभावशाली होती है।

- जटिल/यौगिक उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि इससे एक से अधिक पोषक तत्वों की आपूर्ति एक ही समय में (एक साथ) हो सकती है।

- भारी कार्बनिक खादें, गोबर की सड़ी खाद, हरी खाद, मानव विष्ठा, कम्पोस्ट खरपतवार एवम् फसल के अवशेष इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए, भले ही इनमें पोषक तत्वों का प्रतिशत कम रहता है, परन्तु ये मृदा की रासायनिक संरचना को प्रभावी बनाती हैं। साथ ही इनमें सूक्ष्म तत्व भी पाये जाते हैं। केंचुओं की सहायता से सड़ने वाले इन पद्धार्थों को अतिउपयोगी, वर्मीकम्पोस्ट का रूप दिया जा सकता है।

हल्की कार्बनिक खादें

- तिलहन से तेल निकालने के बाद जो खली बचती है, उसमें पोषक तत्वों की अच्छी मात्रा होती है और इसके प्रयोग से मृदा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं पड़ता है। जो खली पशु आहार न हो एवम् सड़ी/खराब खली को सड़ा करके खाद के रूप में उपयोग कर सकते हैं। ढैंचा, सनई एवम् दलहनी फसलों को हरी खाद के लिये उगा सकते हैं। इनको उचित समय (35–40 दिन) पर काटकर वहीं खेत में मिट्टी में मिला देते हैं। ढैंचा 120–160 कि.ग्राम. नत्रजन प्रति हेक्टेयर संचित कर लेती है।

जैव उर्वरक :

- भूमि में डाले गये नत्रजन का 30–40 प्रतिशत मात्रा का ही सही उपयोग हो पाता है शेष भाग पानी से साथ बह जाता है या ज़मीन की निचली परतों में चला जाता है। ऐसी स्थिति में जैव–उर्वरकों का प्रयोग कृशि उत्पादन के लिये वरदान साबित हुआ है और ये सस्ते भी होते हैं।

राइजोबियम कल्चर :

- इसका प्रयोग प्रायः सभी दलहनी फसलों में किया जाता है। इसमें उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डल से नत्रजन लेकर भोज के रूप में पौधों को देते हैं। राइजोबियम कल्चर दलहनी फसलों के अनुसार अलग–अलग होते हैं, एवम् इनका प्रयोग बीज उपचार, मृदा उपचार एवम् रोपित फसलों में जड़ उपचार के लिये किया जाता है।

एजोटोबैक्टर :

- हमारे चारों और वायुमण्डल में नत्रजन (78 प्रतिशत) मौजूद रहती है, जिसे पौधे प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। एजोटोबैक्टर ऐसे जीवाणु हैं जो पौधों के साथ असहजीवी रूप में रहकर वायुमण्डलीय नत्रजन को अमोनिया के रूप में उपलब्ध करवाते हैं। एजोटोबैक्टर में नत्रजन यौगिकीकरण के अलावा बीजों के अंकुरण में वृद्धि की क्षमता भी पायी जाती है। परिणामस्वरूप प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौधों की संख्या में वृद्धि भी हो जाती है।

एजोस्पिरिलम :

- इसका और एजोटोबैक्टर का प्रयोग धान, गेहूँ, ज्वार इत्यादि फसलों में कर सकते हैं। प्रायः 20–30 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर इससे संचित हो जाती है।

नील हरित शैवाल :

- इसको जलमग्नता की दशा में उगाया जाता है। मुख्यतः धान का खेत इसके लिये उपयुक्त रहता है। धान में इससे औसतन 30 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर का यौगिकीकरण होता है। इसके प्रयोग से मृदा में जीवाँश पद्धार्थ की भी वृद्धि होती है।

वैम :

- यह एक किस्म का फफूंद है जो फॉस्फोरस, कॉपर, जिंक इत्यादि पोशक तत्वों का समुचित उपयोग करवाता है। विशेश तौर पर यह फॉसफोरस उपलब्ध करवाता है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्ध का ध्येय रासायनिक उर्वरकों की कार्य क्षमता को बढ़ाना एवम् उनपर कम आश्रित रहना, जिससे आने वाले समय के लिए भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखकर और साथ में प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करके सम्पूर्ण मानव जाति का उत्थान करना है।

...गराज

चित्रकूट, सोमवार 04 मई 2020 | 7

...के प्रथम ए. ल. पी. पंत मेमोरियल –2020 निबंध एवं चित्रकला प्रतियोगिता (ऑनलाइन) संपन्न

सोसायटी ऑफ़ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट, प्रयागराज द्वारा प्रथम ऑनलाइन चित्रकला एवं निबंध प्रतियोगिता –2020" कोविड –19 लाकडाउन का पर्यावरण पर प्रभाव नामक विषय पर संपन्न हुई संस्था की सचिव डॉ. हेमलता पंत के अनुसार उपर्युक्त प्रतियोगिता में देश के विभिन्न क्षेत्रों से सैकड़ों प्रविष्टियां प्राप्त हुई निबंध प्रतियोगिता में मेरठ की प्रियंका चौहान व प्रयागराज की शिल्पा सिंह ने प्रथम स्थान तथा द्वितीय स्थान प्रयागराज की निधि पांडेय व शैलजा पांडेय को मिला तृतीय पुरस्कार क्रमशः कानपुर के रविशंकर घर एवं मऊ की सपना मौर्य व प्रयागराज प्रमानन्द धूमिया तथा काजल गोंड को प्राप्त हुआ चित्रकला प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्रदीप कारभारी कुले(महाराष्ट्र)प्रियंका गजरौला (कोटाबाग, हल्द्वानी)तथा द्वितीय दीपिका अरोरा, साक्षी पांडेय(हल्द्वानी)एवं हर्षिता मौर्या मऊ को मिला तृतीय पुरस्कार अरिद्रिजा गोस्वामी, (दिनाजपुर, कोलकाता) तथा अभिज्ञान प्रकाश सिंह(प्रयागराज)को प्राप्त हुआ

इस मेमोरियल अवार्ड की अध्यक्षा श्रीमति भगवती पंत ने इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले सभी ...

...डेकल कॉलेज का टेस्टिंग

टिंडे की आधुनिक खेती

डॉ0 रूद्र प्रताप सिंह, रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री डॉ0 अमित कुमार मिश्रा एवं डॉ0 रविंद्र कुमार पांडेय

कृषि विज्ञान संकाय, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

कद्दूवर्गीय प्रजाति से संबंध रखनेवाला यह सब्जी बहुत ही कम समय में अपने शीतल एवं कई रोगों के लिए रामबाण औषधि साबित हुआ है। अपनी बढ़ती लोकप्रियता के कारण टिंडा अपनी अलग पहचान बना चुका है। उत्तर भारत की सबसे महत्वपूर्ण गर्मियों की सब्जी का स्थान प्राप्त है। जिसका मूल स्थान भारत ही है। इसका कच्चा फल सब्जी बनाने में प्रयोग किया जाता है। लगभग 100 ग्राम फल में 1.4% प्रोटीन, 0.4% बसा, 3.4% कार्बोहाइड्रेट, 13 मिलीग्राम कैरोटीन व 18 मिलीग्राम विटामिंस पाए जाते हैं। जिसके कारण इस फल का उपयोग सूखी खांसी व रक्तसंचार सुधारने में किया जाता है।

मिट्टी

टिंडे की खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली एवं उच्च जैविक तत्व वाली बलुई दोमट मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है। पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास के लिए मिट्टी का पी एच मान 6 – 7 उपयुक्त होता है।

किस्में एवं प्रजातियां

लगभग 50 से 60 दिन में तैयार होने वाली यह सब्जी अपने युग उपयुक्त किस्मों के आधार पर 25 से 70 कुंतल तक उपज प्राप्त किया जा सकता है। इसकी मुख्य प्रजातियां निम्न है– अर्काटिंडा, अनामलाई, महिको, स्वाती, टिंडा–48 आदि।

जमीन की तैयारी

जमीन की जुताई एक बार हैरो से तत्पश्चात एक बार रोटावेटर से जुताई करें जिससे कि मिट्टी अत्यधिक भुरभुरी हो सके साथ ही गाय का सड़ा हुआ गोबर 8 से 10 टन खेत की तैयारी के समय प्रति एकड़ डालें। टिंडे की खेती के लिए बेड तैयार करें तथा बीजों को मेड़ पर बोयें।

एक एकड़ बुवाई के लिए 1.5 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है बुबाई से पहले 12 से 24 घंटे के लिए बीजों को पानी में भिगो देना चाहिए जिससे की उनकी अंकुरण क्षमता में विकास होता है साथ ही साथ बीजों को मिट्टी से होने वाली बीमारियों से बचाने के लिए कार्बेंडाजिम

या थीरम ढाई ग्राम से प्रतिकिलो बीजों का उपचार करना चाहिए यदि हो सके तो बीज को जैविक विधि द्वारा भी उपचार करने के लिए ट्राइकोडरमा विरडी 4 ग्राम प्रतिकिलो की दर से बीजों को उपचारित करना चाहिए।

बुवाई का समय एवं दूरी

उत्तरभारत में टिंडे की खेती दो बार की जाती है पहला फरवरी–मार्च दूसरा जून–जुलाई। बुबाई के समय बीजों को 45 सेंटीमीटर के फांसले पर बोना चाहिए तथा बीजों की गहराई 2 से 3 सेंटीमीटर उपयुक्त माना जाता है।

खाद एवं उर्वरक

जहां तक खाद देने की बात है टिंडे के लिए बुवाई के 1 माह पूर्व खेत में सड़ी हुई खाद 8 से 10 टन प्रति एकड़ के हिसाब से डालते हैं तथा भूमि में रोटावेटर की सहायता से अच्छी तरह मिलाकर मेड़बंदी कर लेते हैं टिंडे की बुवाई से पहले मृदा जांच कराकर ही उर्वरकों का निर्धारण करना चाहिए। सामान्यतया 40 किलोग्राम नाइट्रोजन 20 किलोग्राम फास्फोरस और 20 किलोग्राम पोटाश प्रति एकड़ आवश्यकता पड़ती है। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय डालें तथा शेष बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा शुरुआती विकास के साथ डालें ।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण के लिए मल्चिंग का प्रयोग अच्छा होता है इस विधि से खरपत वार नियंत्रण के साथ–साथ मिट्टी में बराबर नमी बनी रहती है। खेत को खरपतवार से मुक्त करने के लिए हाथों से कढ़ाई करना चाहिए तथा समय–समय पर इनकी जांच करते रहना चाहिए । बुवाई के 15 – 20 दिन बाद हाथ से कढ़ाई करना जो कि पौधे की उचित बढ़वार के लिए आवश्यक होता है।

सिंचाई

टिंडे को लगातार सिंचाई की जरूरत पड़ती है क्योंकि यह कम समय की फसल है। खेत की सिंचाई बुवाई की एक दिन बाद करना अच्छा होता है। गर्मियों के मौसम में 4 से 5 दिन के फासले पर मिट्टी की नमी को ध्यान में रखते हुए सिंचाई करना जल संरक्षण को बढ़ा देना है। टिंडे की फसल के लिए बूंदबूंद सिंचाई विधि अपनाना टिंडे की खेती के लिए अच्छा होता है।

टिंडे में कीट एवं रोग व्याधियाँ

टिंडे की खेती में सामान्यतः निम्न प्रकार के कीटों का प्रकोप होता है–

1. लालड़ी कीट

इस कीट का प्रकोप पौधे पर दो पत्तियाँ निकलने पर ज्यादा होता है। यह कीट पत्तियों तथा

सूडी जड़ को क्षति पहुंचाती है। इसकी रोकथाम के लिए 5% नीम सीड का घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीट से छुटकारा पाया जा सकता है।

2. फलमक्खी

फल मक्खी टिंडे के फलों में अंडे देती है तथा फलों को खराब कर देती है इसकी रोकथाम के लिए फेरोमोन ट्रैप का उपयोग लाभदायक होता है।

3. सफेदग्रव

पौधों की जड़ों को खाने वाला यह कीट कद्दू वर्गीय पौधों को काफी हानि पहुँचाता है। इसकी रोकथाम के लिए बुवाई से पहले नीम खाद का प्रयोग अच्छा होता है।

4. चूर्णी फफूंदी

सफेद दरदरा और गोलाकार जाल जैसा पत्तियों एवं तने पर दिखाई देने वाला यह फफूंद जिसके कारण पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती है और पौधे का बढ़वार रुक जाता है। इस रोग की रोकथाम के लिए नीम का काढ़ा बनाकर माइक्रोज्वाइन के साथ अच्छी प्रकार मिश्रण तैयार करके 250 उस को प्रति 25 लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करें।

5. मोजैक

विषाणु द्वारा फैलने वाला इस रोग के रोकथाम के लिए रोग रोधी किस्मों का उपयोग करना इस रोग के रोकथाम के लिए सहायक सिद्ध होता है।

6. एंथ्रेकनोज

बैक्टीरिया द्वारा फैलने वाला यह रोग जिसके कारण पत्तियों व फलों पर लाल काले धब्बे बन जाते हैं जो कि बीजों को प्रभावित करते हैं तथा अगली बार यह रोग बीज द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग की रोकथाम के लिए बीजों को नीम के तेल से उपचारित करने के साथ–साथ फसल चक्र का भी ध्यान रखना चाहिए।

फसल की कटाई

प्रजाति के आधार पर बुवाई के लगभग 60 दिनों में फल तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। जब फल मध्यम आकार के होजाए तब फलों की तुड़ाई कर लेनी चाहिए। फलों की तुलाई 4 से 5 दिन के अंतराल पर करना उचित रहता है।

उपज

प्रजाति के आधार पर टिंडे की खेती से लगभग 25 से 70 कुंतल प्रति एकड़ उपज प्राप्त किया जा सकता है।

गिलोय- अनेक बीमारियों की एक दवा

आशीष कुमार पाल एवं संदीप सिंह
शोध छात्र, उद्यान विभाग, रायबरेली, उ.प्र. एवं
छात्र, शुआट्स, नैनी प्रयागराज, उ.प्र.

आज के बदलते दौर मे जीवनयापन करने के तरीके बहुत तेजी से बदल रहे है, जो कि हमारी दिनचर्या जैसे रहन–सहन, खान–पान और नीद को प्रभावित कर रहा है। आज कल लोग ताजे खान–पान की जगह संसाधित खाद्द पदार्थो की ओर ज्यादा आकर्षित हो रहे, ये़ पदार्थ विभिन्न प्रकार के रोगो को आकर्षित करके उन्हे आमन्त्रण दे रहे हैं। जिनका उपचार अंग्रेजी दवाईयो के द्वारा किया जाता है। अंग्रेजी दवाईया हमारे शरीर मे फायदा पहुचाने के साथ–साथ हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी कम कर रही है। इसलिए हमे औषधीय पेड– पौधो की तरफ ध्यान केन्द्रित करना होगा, और हो भी रहा है, परन्तु अभी भी बहुत जागरुकता की आवश्यकता है।

भारत मे प्राकृतिक जडी–बूटियो का खजाना है, जिनको उपयोग करके अनेक लघु एवं दीर्घ समय के रोगो से बचाव किया जा सकता है। इन्ही प्राकृतिक जडी–बूटियो मे से एक है, गिलोय (यह "अमृता" के नाम से भी जाना जाता है।) अर्थात कभी न सूखने वाली लतानुमा झाडी।

विशेषताएँः

इसकी विशिष्ट पहचान यह है कि इसकी बाह्य छाल हल्के भूरे रंग की कागज जैसी परतो मे होती है। इसके तने से वायबीय जडे निकलकर झूलती रहती है। जो जमीन मे घुसकर नये पौधे को जन्म देती है। पत्ते पान के आकार और जालीदार जैसे होते हैं। इसके फूल ग्रीष्म ऋतु मे

छोटे–छोटे पीले रंग के गुच्छो मे आते है और फल भी गुच्छो मे आते है तथा पकने पर चटक लाल रंग के हो जाते है। बीज मिर्च के बीज के समान होते है।

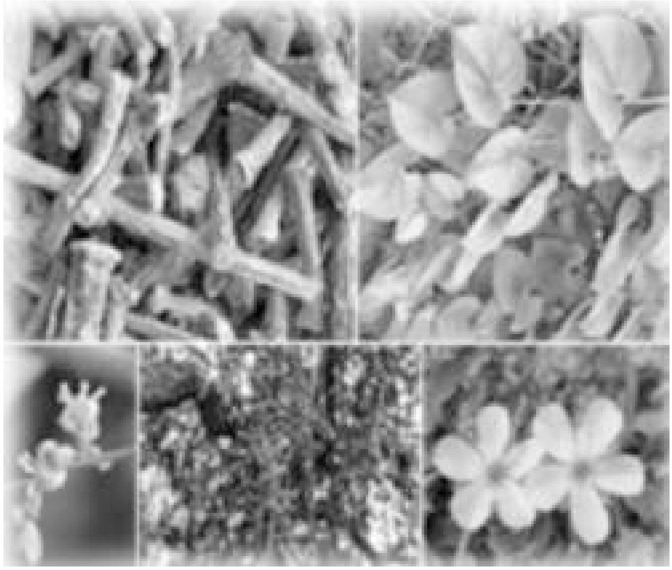

रासायनिक संगठन–

गिलोय मे एक गिलोइन नामक एक कडुआ ग्लूकोसाइड तथा तीन प्रकार के एल्कोलाइड पाये जाते है। इनमे से एक क्षाराभ बर्वेरिन है। इसमे एक उदाशीन तेल भी होता है।

जनिए गिलोय के औषाधिक गुण–

वमन– धूप मे ज्यादा घूमने–फिरने से वमन की सम्सया होती है। तब गिलोय स्वरस 10–15 ग्राम मे 4–6 ग्राम मिश्री मिलाकर सुबह–शाम पीने से आराम मिलता है।

गठिया– दूध के साथ इसके 2–5 ग्राम चूर्ण की फंकी दिन में 2–3 बार लेने से गठिया रोग ठीक हो जाता है।

यकृत विकार– ताजी गिलोय 15–18 ग्राम, अजमोद 1–2 ग्राम, छोटी पीपल 2 नग, नीम की सीड 2 नग इन सबको कुचलकर रात्रि को 250 ग्राम जल के साथ मिट्टी के बर्तन मे रख दे। प्रातः पीसकर तथा छानकर पी ले। 15 से 30 दिन तक सेवन से पेट के सारे रोगो में आराम मिलेगा।

टी.वी.– असगन्ध, गिलोय, शतावर, दशमूल, बलामूल अदूसा, पोहकरमूल तथा अतीस का समभाग लेकर बनाये गये क्वाथ की 50–60 ग्राम मात्रा का सुबह–शाम सेवन करे इससे टी.बी. नष्ट होता है।

रक्त कैंसर– जवहर के साथ गिलोय का रस मिलाकर पीने से रक्त कैंसर ठीक हो सकता है।

पर्यावरणीय संचेतना में समस्या एवं समाधानः विश्लेषणात्मक अध्ययन

साधना त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, बी0 एड0 विभाग
नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.

भारत देश प्राचीन काल से ही प्रकृति का उपासक रहा है। हमारे ऋषि मुनि एवं मनीषियों ने पर्यावरण प्रेम संरक्षण एवं पर्यावरणीय असमंजस को दूर करने के लिए मंत्री एवं तमाम ऋचाओं के माध्यम से भारतीय जनमानस की प्रकृति पूजा का मंतव्य दिया। सभी धार्मिक अनुष्ठानों से प्रार्थना मंत्रों मे यर्जुवेद का मंत्र प्रकृति के संतुलन का मार्ग बताता है। आज इस गलोबल वार्मिंग और औद्योगिकरण के समय में इसकी महती आवश्यकता महसूस की जा रही है।

प्रत्येक वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर मात्र एक दिन यदि हम वृक्षारोपण करके, वर्श के शेष 364 दिन दूसरों पर दोषारोपण ही करते रहें तो विश्व में विनाशकारी ढंग से हो रहे पर्यावरणीय प्रदूषण और उसके संरक्षण को अनिवार्य आवश्यकता की ओर जनसाधारण का ध्यान आकर्षित न कर सकेंगे, जिनके प्रभावी सहयोग के बिना पर्यावरण संरक्षण की बात दिवास्वप्न बनकर रह जायेगी।

पर्यावरण का तात्पर्य

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है हमारे चतुर्दिक छाया आवरण (परि आवरण=पर्यावरण) प्रकृति के पंच महाभौतिक तत्वों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) का हम समस्त जीवधारियों और हमारे पर्यावरण से सीधा सम्बन्ध होता है। प्रकृति और जीव के मध्य स्वाभाविक सम्बन्धों के संतुलन को बनाये रखने में ही संसार का कल्याण निहित है। वस्तुतः "जल ही जीवन, वायु प्राण है वसुन्धरा आधार। प्रकृति जीव का सहज संतुलन पर्यावरण विचार।"

प्रत्येक जीवधारी अपने अस्तित्व के लिए प्रकृति पर निर्भर करता है। पृथ्वी हम मनुष्यों को ही नहीं सभी प्रकार के जीवों और वनस्पतियों को आधार प्रदान करती है और अपनी ममतामयी गोद में पनपने के अवसर प्रदान करती है। जल तो है ही सभी का जीवन। समस्त प्राणियों के कार्यकलाप उनके चारों ओर के समुचित खाली स्थान (आकाश) में ही सम्भव होते हैं। तेज अर्थात सूर्य से प्राप्त प्रकाश और ऊर्जा के अभाव में सांसारिक अस्तित्व की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रकृति

अर्थात पृथ्वी, जल, तेज, वायु ओर आकाश तथा जीवधारियों व वनस्पतियों के मध्य सहज स्वाभाविक संतुलन विद्यमान रहना चाहिए।

पर्यावरण के सन्दर्भ में जीवमंडल की प्रधानता है, जिसकी संरचना पृथ्वी पर मिट्टी की ऊपरी उर्वर परत, जल तथा वायु से हुई है। सृष्टि में जीवन के समस्त रूपों का अस्तित्व इसी जीवमंडल पर अवलम्बित हैं, जो स्वयं की जैविक तत्वों से निरन्तर प्रभावित होते रहने के फलस्वरूप परिवर्तित होता है। साथ ही सभी प्रकार के जीवधारी और वनस्पतियाँ भौतिक पर्यावरण पर आधारित हैं, जिसको निर्मित करने तथा सुरक्षित रखने में वे सहायक होते हैं। पर्यावरण के साथ उनके सम्बन्ध अभिन्न हैं। जीवन और पर्यावरण एक दूसरे के पूरक हैं। जीवधारियों का अस्तित्व पर्यावरणीय घटकों के संतुलन पर ही आधारित है। एतदर्थ पर्यावरण का प्रदूषण रहित रहना सदा सर्वदा से संसार की प्राथमिक आवश्यकता रही है।

पर्यावरणीय प्रदूषण

वातावरण के भौतिक, रासायनिक और जीववैज्ञानिक अवस्थाओं में कोई ऐसा परिवर्तन जिससे जीवधारियों, वनस्पतियों अथवा सौन्दर्य प्रतीकों को हॉनि पहुँचती हो प्रदूषण कहा जाता है। मनुष्य का वातावरण उसके चतुर्दिक विद्यमान समस्त जड़चेतन से निर्मित होता है, जो उसके जीवन की गतिविधियों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, इनमें आया कोई ऐसा परिवर्तन जो प्रकृति की ओर जीव के मध्य विद्यमान स्वाभाविक संतुलन को कुप्रभावित करे। पर्यावरणीय प्रदूषण का कारण बनता है।

वस्तुतः समस्त जीवधारियों एवं वनस्पतियों के कल्याण के लिए आवश्यक सभी तत्व प्रकृति से विद्यामान रहते हैं, ओर उनसे सम्बन्धित एक ऐसा चक्र प्रकृति में चलता रहता है, जो पर्यावरण को वस्तुत्ः स्वतः सुधारता रहता है। परन्तु मानव सभ्यता के विकास के साथ मानव की महत्वाकांक्षाएं ही उनके विनाश का कारण बनी हैं। वह अपनी भौतिक सुख–सुविधायें जुटाने की होड़ में प्रकृति के सहज स्वाभाविक संतुलन में सतत् व्यवधान उत्पन्न करता आया है। इसके साथ ही पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण बन रहा है, आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के युग में तथाकथित सभ्य मानव की कार्यविधियों का एक स्थान पर केन्द्रीभूत होना।

औद्योगीकरण की दिशा में मानव की अन्धी दौड़ और अपनी बनावटी शान–शौकत की निरर्थक वृद्धि के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन सम्प्रति पर्यावरणीय प्रदूषण की भयावह स्थिति ही नहीं पैदा कर रहा है, वरन् ऐसा पारिस्थितिक संकट का भय होने लगा है जिसे सुधारा नहीं जा सकेगा।

प्रदूषण के प्रकार और उनके दुष्प्रभावः—

मनुष्य के विभिन्न कार्यकलापों से पर्यावरण अनेक रूपों में प्रभावित होता है। यथा खनिजों की प्राप्ति के लिए खान खोदने, ईधन तथा इमारती लकड़ी की पूर्ति के लिए वृक्ष काटने तथा कृषि के लिए वनों का विनाश करने से मिट्टी की उर्वर परत का क्षय होता है। फसल सुरक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के रसायनों का व्यापक छिड़काव करके हम अप्रत्यक्ष रूप से चिड़ियों, मछलियों और वनस्पतियों को ही समाप्त कर रहे हैं तथा बढ़ते हुए औद्योगीकरण के साथ विभिन्न उद्योगों द्वारा उनके दूषित पदार्थों को बिना किसी प्रकार का उपचार किये बाहर बहाने से पेय जल स्त्रोत प्रदूषित हो जाते हैं। आज हमारे देश में ही सभी बड़ी—बड़ी नदियों के किनारे भारी उद्योग संस्थान स्थापित किये गये हैं, जिनका गंदा पानी तथा अन्य अनेक प्रकार के गन्दे अवशेष इन्हीं नदियों में प्रवाहित कर दिये जाने से गंगा जैसी पवित्र नदियाँ भी मैली हो गई हैं।

औद्योगिक संस्थानों में प्रयुक्त कोयले तथा तेल आदि के दहन से कार्बन, सल्फर, नाइट्रोजन आदि के जहरीले आक्साइड बनते हैं, जो हवा में मिल कर मनुष्य तक पहुँचते हैं और उसकी मानसिक क्षमता पर दुष्प्रभाव डालते हैं तथा ये गैसें हृदय और फेफड़ों से सम्बंधित रोगियों के लिए अति हानिकारक होती हैं। वायुयानों व जेट विमानों का शोर वायुमण्डल को जहाँ प्रदूशित करता है वहीं ध्वनि प्रदूषण से अनेक रोग पैदा हो रहे हैं। परमाणु बमों का परीक्षण अन्तरिक्ष में प्रदूषण बढ़ाता है, जिससे सूर्य रश्मियों के विकिरण को रोकने में सहायक ओजोन गैस की परत नष्ट होती है

पर्यावरणीय प्रदूषण के इन विभिन्न रूपों में से अधोलिखित पाँच प्रकार के प्रदूषण प्रमुख हैं।

1. वायु प्रदूषण, 2. जल प्रदूषण, 3. भूमि प्रदूषण, 4. ध्वनि प्रदूषण तथा 5. अन्तरिक्ष प्रदूषण।

वस्तुस्थिति यह है कि किसी तत्व का अत्यधिक होना पर्यावरण को प्रदूषित करता है, चाहे यह अधिकता कूड़े—कचड़े की हो अथवा जहरीली गैसों की, ध्वनि की हो अथवा धुए की, मनुष्यों की हो या किसी अन्य जीवधारियों की।

वायु—प्रदूषण की समस्याः—

वायु जीवन का मुख्य आधार है तथा स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध—वायु का उपलब्ध होना परमावश्यक है। सामान्यतया स्वस्थ पर्यावरण में वायु की आयतन के अनुसार निम्न संरचना होनी चाहिए।

1. आक्सीजन (प्राण वायु) — 20.95 प्रतिशत
2. कार्बन डाई आक्साइड — 0.03 से 0.04 प्रतिशत

3. नत्रजन — 79.00 प्रतिशत

उपर्युक्त के अतिरिक्त वाष्पकण, अमोनिया, ओजोन हाईड्रोजन सल्फाइड, कार्बन मानोआक्साइट आदि अति सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं।

यदि वायु में इन गैसों का अनुपात किसी भी कारण से असन्तुलित होता है, तो वातावरण प्रदूषित होने लगता है। दिसम्बर, 1985 में भोपाल की मिक गैस (मिथाइल आयसो सायनाइड) त्रासदी में हजारो लोग मृत्यु की गोद में सो गये और भोपाल में आयी अभूतपूर्व तबाही ने 1945 में नागासाकी और हिरोशिमा में हुए परमाणु बम विनाशलीला की याद ताजा कर दी थी।

जीवधारी अपनी श्वसन क्रिया द्वारा शरीर में पहुँचायी वायु की आक्सीजन का प्रयोग रक्त को शुद्ध करने में करके अशुद्धि को कार्बनडाई आक्साइड के रूप से बाहर निकालते हैं। यह प्रक्रिया प्रत्येक जीवधारी अपनी प्रत्येक सांस के साथ निरन्तर करता रहता है और इस प्रकार, प्राण वायु आक्सीजन की उपलब्धि तथा बाहर निकाली गई अशुद्ध वायु कार्बन डाई आक्साइड का शुद्धीकरण प्रकृति के कार्बन चक्र द्वारा सतत् सम्पन्न होता रहता है।

प्रकृति में वनस्पतियाँ (पौधे) प्रकाश संशलेषण की विधि से कार्बन डाई आक्साइड, जल, सूर्य के प्रकाश तथा पत्तियों में उपस्थित पर्णहरित (क्लोरोफिल) की सहायता से शर्करा और आक्सीजन तैयार करते हैं। इस प्रकार पौधे स्वयं अपना तथा जीवधारियों का भोजन निर्मित करते हैं, जिसमें वातावरण में उपस्थित स्वतन्त्र कार्बन डाई ऑक्साइड प्रयुक्त होती है। इस क्रिया के परिणाम में प्राप्त प्राण वायु आक्सीजन जीवधारियों के द्वारा उपयोग में लायी जाती है।

वायु प्रदूषण के मुख्य कारण है। औद्योगिक गतिविधियाँ सड़क यातायात बाहनों का बाहुल्य तथा पेट्रोलियम द्रव्यों का दहन/कल–कारखानों की चिमनियों से निकलन वाले धुए तथा मोटर वाहनों से बाहर आने वाली गैसो में कार्बन डाई आक्साइड के अतिरिक्त कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड तथा हाईड्रोकार्बन होते हैं, जो हमारे लिए अत्यधिक घातक हैं। हाइड्रोकार्बन कैंसर रोग के कारक बनते हैं।

भारत में मोटर गाड़ियों के समुचित रखरखाव पर विशेष ध्यान न दिये जाने के कारण वायु प्रदूषण की भावनायें विकसित पश्चिमी देशों की अपेक्षा अधिक रहती हैं। भारतीय मानक संस्थान के अनुसार मोटर वाहनों से निकली गैस में कार्बन मोनोआक्साइड की मात्रा तीन प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए, परन्तु अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि यहाँ समस्त बसों और ट्रकों से निकला गाढ़ा धुआं अनुमति की सीमा से बहुत ऊपर रहता है।

बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए जहां एक ओर औद्योगीकरण,

परिवहन तथा पेट्रोलियम द्रव्यों के दहन से हम विशाक्त गैसें वातावरण में घोलते जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर कल्याणकारी वन वृक्षों पर अपने ही हाथों कुल्हाड़ी चला रहे हैं। विश्व खाद्य तथा कृषि संगठन के अनुसार बीसवीं शताब्दी में ही विश्व के साठ करोड़ हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में वन नष्ट किये गये। केवल भारत में ही प्रतिवर्श पन्द्रह करोड़ टन ईंधन तथा इमारती लकड़ी उपयोग में लायी जाती है।

वनों के विनाश से मनुष्य अपनी दोहरी हानि कर रहा है। एक तो पर्यावरण को सफाई नहीं हो पाती है, दूसरे लकड़ी जलाने से कार्बन डाई आक्साइड बढ़ने की समस्या उत्पन्न होती है। कार्बन डाई आक्साइड गर्मी को पृथ्वी के कारण के पर्यावरण से बाहर नहीं जाने देती, अतः तापमान में वृद्धि होती है। अनेक परीक्षणों पर आधारित मौसम वैज्ञानिकों का यह विचार है कि सन् दो हजार ई0 तक वातावरण में इस प्रकार बढ़ती ऊष्मा पृथ्वी के औसत तापमान में चार डिग्री सेल्सियस की वृद्धि कर सकती है, जिससे जलवायु और जीवन सभी प्रभावित हुए बिना न रहेगा। अतः हमें मानव की सुख सुविधाओं की वृद्धि की दिशा में बढ़ाये जाने वाले प्रत्येक कदम के साथ प्रकृति प्रदत्त वन संपदा का संरक्षण करना होगा। हम इस शाश्वत सत्य को नकार नहीं सकते कि, जीवन है ही जीव और वन, वृक्षों से संसार।

जल प्रदूषण की समस्या

शुद्ध वायु के उपरान्त स्वच्छ जल की उपलब्धि मानव अस्तित्व के लिए अनिवार्य आवश्यकता होती है। मनुष्य ही नहीं जल के बिना किसी भी प्रकार की वनस्पति अथवा जीव का अस्तित्व असम्भव है।

भारत में यद्यपि जल संसाधनों की अधिकांश क्षेत्रों में कमी नहीं है, परन्तु इसके अधिकांश स्त्रोत दिन प्रतिदिन प्रदूशित होते जा रहे हैं। राश्ट्रीय पर्यावरणोय इन्जीनियरी शोध संस्थान के एक सर्वेक्षण के अनुसार भरत में उपलब्ध 70ःजल स्त्रोत प्रदूशित हैं।

गरीबी, अज्ञानता तथा जनाधिक्य के कारण मनुश्य के मल–मूत्र तथा अन्य पदार्थो के उचित विसर्जन न होने और औद्योगिक प्रतिश्ठानों द्वारा बिना किसी प्रकार का उपचार किये बहाई गई गन्दगी के जल स्रोतों का निरन्तर प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। इन्हीं सबके परिणामस्वरूप भारत में दो तिहाई रोगों का कारण प्रदूशित जल पिया जाना है। संसार के समस्त मानव सम्बन्धी रोगों में से 80 प्रतिशत रोग असुरक्षित तथा दूशित जल से सम्बन्धित होते हैं। संयुक्त राश्ट्र संघ के विकास कार्यक्रम से सम्बन्धित विशेशज्ञों का दावा है कि विश्व स्तर पर 50 प्रतिशत बाल मृत्यु दर को रोका जा सकता है, यदि सभी को स्वच्छ जल और पर्याप्त स्वच्छता व्यवस्थायें सुनिश्चित हों।

जल प्रदूषण से जलीय जीवन भी गम्भीर रूप से प्रभावित होता है। मछलियों का अप्रत्याशित रूप से महासंहार तथा अन्य जलचरों के आवास स्थानों के विनाश का कारण औद्योगिक कूड़े कचरे का जलाशयों झीलों तथा नदियों में प्रवाहित किया जाना है। नदियों में बढ़ते जल प्रदूषण के कारण ही संदिग्ध हो गई है। इसकी सफलता, सन्तुलन जागरण एवं जन सहयोग पर निर्भर करेगी।

भूमि प्रदूषण की समस्या

बढ़ती हुई जनसंख्या के उदर पोषण के लिये भूमि से अधिकाधिक खाद्यपदार्थों का उत्पादन प्राप्त करने हेतु अनेकानेक उर्वरकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग किया जा रहा है, जिससे भूमि स्वयं की प्रकृति सुलभ उर्वराशक्ति में क्षीण होकर उर्वरकों पर परजीवी बनती जा रही हैं। फसल सुरक्षा के लिए प्रयोग की जाने वाली कीट–व्याधिनाशी औषधियों से भी वायु एवं जल प्रदूषण के साथ भूमि प्रदूषण बढ़ता है। यही वे कारण हैं जिसे खाद्य पदार्थों, दूध, मक्खन आदि में भी डी0 डी0 टी0 के हानिकारक तत्व मिल रहे हैं, अनेक स्थानों की उर्वर भूमि ऊसर बन रही है तथा पृथ्वी की ऊपरी परत तेज हवा के साथ उड़कर नष्ट हो रही है। रासायनिक उर्वरकों तथा औषधियों के अवशेष मिट्टी की कार्बनिक संरचना पर प्रभाव डालते हैं और भूमि की उर्वरा शक्ति प्रभावित होती है।

भूमि प्रदूषण का कारण बहुधा व्यक्तियों की अज्ञानता तथा लापरवाही भी होती है। ग्रामवासियों में हुक्कावर्म जैसे कृमि रोगों के संक्रमण का कारण लोगों का खेतों तथा खुले स्थानों में शौच करना है। ऐसा करने से वहाँ की भूमि मल–मूत्र आदि में विद्यमान कीटाणुओ तथा रोगाणुओं से प्रदूशित होती है। मानव तथा पशुओं के त्याज्य पदार्थों (मल, मूत्र आदि) से भूमि का प्रदूषण होने के कारण पृथ्वी के तल पर तथा अन्दर से प्राप्त पेयजल के प्रदूषण का खतरा बढ़ता है और दस्त, पेचिस, आंत्रिकज्वर आदि रोगों से लोग कुप्रभावित होते हैं। भारतीय कृषक नगे पांव अपने खेतों में समस्त कार्य करते हैं, अतः मानव मल–मूत्र से प्रदूषित उनके खेतों की भूमि जितने उन्हें पौष्टिक खाद्य पदार्थ नहीं उत्पादित करती उससे अधिक रोग–व्याधियां उन्हें अनायास देती है।

ध्वनि प्रदूषण

महामारी सामान्य जनजीवन वहाँ के कल–कारखानों परिवहन साधनों, तेज ध्वनि विस्तारक उप–करणों आदि से चाहे जितना ही रंगीन तथा गतिशील बन रहा हो, इनके कारण बढ़ते हुए ध्वनि प्रदूषण से आम आदमी की परेशानियाँ दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। हवाई जहाजों व जेट विमानों का शोर वायु–मण्डल को जहाँ प्रदूशित करता है वहीं उससे उत्पन्न ध्वनि प्रदूषण से अनेक बीमारियाँ पैदा हो रही हैं। ध्वनि प्रदूषण से लोगों की श्रवण शक्ति कमजोर पड़ती हैं गाँवों

तथा कस्बों से महानगरों में आने वाले यात्रियों में नगरों में प्रवेश करते ही सिरदर्द, पेट में गड़बड़, आँखों में जलन, उल्टी आदि के लक्षण प्रकट होते हैं। दीपावली जैसे पर्वों तथा विवाह शादियों के अवसर पर छुटाये जाने वाले पटाखों और लाउडस्पीकरों के बढ़ते हुए प्रयोग के कारण ध्वनि प्रदूषण बढ़ता है। इसका एक कारण ऊँची इमारते भी हैं।

अन्तरिक्ष प्रदूषण

अणु तथा परमाणु बमों के परीक्षणों से अन्तरिक्ष में भी मानव प्रदूषण पैदा कर रहा है। इनसे सूर्य की प्रचंड रश्मियों के विकिरण को रोकने में उपयोगी ओजोन की परत नष्ट होती है। इस ओजोन का धीमा विलुप्तीकरण भी मनुष्य में बहुत बड़े पैमाने पर अंधाधुध ला सकता है। उसमें अधिकांश लोग अंधे हो जायेगें और अन्य अनेक प्रकार के रोग फैलायें।

संसार की महाशक्तियाँ नित्य प्रति अणु, परमाणु, हाइड्रोजन बम परीक्षण, नाभकीय संस्थान रेडियों धर्मी अपशिष्ट पदार्थों रेड़ियों आइसोटोप्स आदि छोड़ती रहती है, जिनसे समग्र पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है और उससे कैंसर, बाँझपन, मानसिक रोग आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ आज के मानव को घेरती जा रही हैं

पर्यावरणीय संरक्षण के उपाय

मानव में अपनी भौतिक सुख सुविधाओं को प्राप्त करने की होड़ में केवल अपने ही नहीं संसार के समस्त प्राणी मात्र के जीवन को भयावह बना दिया है। यद्यपि प्रगति और विकास मानवीय सभ्यता के महत्वपूर्ण पहलू है, जिनके बल पर ही मानव ने पृथ्वी, समुद्र और आकाश पर अपना आधिपत्य स्थापित किया है और अन्तरिक्ष के कार्यकलापों में भी अपनी दखल बढ़ा रहा है, परन्तु प्रकृति के साथ वह अपना सामन्जस्य नही स्थापित कर पा रहा है।

प्राकृतिक पर्यावरण से ही मनुष्य अपनी समस्त जीवनाधार वस्तुओं को प्राप्त करता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश मिलकर उसे जीवन प्रदान करते हैं। प्रकृति के साथ समस्त वनस्पतियों तथा जीवधारियों का सहज संतुलन निरन्तर बना रहे, जिसके लिए प्रगति और विकास का इस प्रकार नियोजन किया जाना चाहिए कि वह पर्यावरणीय प्रदूषण का कारण न बन जाये।

कोई राष्ट्र किस स्तर तक उन्नति कर सकता है, यह उसकी उत्पादकता पर निर्भर करता है और उत्पादकता से तात्पर्य उस कार्य कुशलता से है, जिससे वह मानवीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण के संसाधनों का उपयोग कर सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही संसाधन आधार पर इस प्रकार प्रबन्ध किया जाये कि दिर्घावधि विकास सम्भव हो।

अतः पर्यावरणीय संरक्षण और उसका उत्थान हमारी भारतीय विकासशील प्रकिया का ही नहीं समस्त विश्व के मानवीय कार्यकलापों का अभिन्न अंग बन जाना चाहिए, जिस पर हमारा स्वास्थ्य, सुख एवं सम्पन्नता अविलम्बित होगी : भारत में केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर पर्यावरण सुधार कार्यक्रमों पर बल देने तथा उन्हें गति प्रदान करने हेतु नवीन संगठनात्मक संरचनाओं का गठन किया गया है, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण 1985 में एक नये और पूर्ण "पर्यावरण और वन मंत्रालय" का गठन किया जाना रहा। विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में भी ऐसी संरचनाओं की स्थापना कर ऐसे प्रयास किये जा रहे हैं कि उनकी योजनाओं में पर्यावरणीय व्यवस्थाओं को समुचित स्थान तथा वरीयता प्रदान की जाए।

प्रत्येक राज्य में एक–एक पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई है तथा ऐसा ही विभाग केन्द्र स्तर पर है, जिसका कार्य सभी राज्यों बोर्डों में सामन्जस्य स्थापित करना है तथा जलवायु प्रदूषण रोकने सम्बन्ध जानकारियां उपलब्ध कराना है साथ ही पर्यावरणीय शिक्षा एवं जानकारी, प्रदूषण–नियंत्रण, प्राकृतिक जीव जन्तुओं की सुरक्षा तथा राश्ट्रीय एवं अन्तर्राश्ट्रीय स्तरों पर पर्यावरणीय विषयों में तालमेल रखना है।

वर्तमान भारतीय परिस्थितियों में भूमि, जल तथा वायु सम्बन्धी प्रदूषणों में कमी लाने का सबसे सरल और व्यवहारिक उपाय होगा कि औद्योगिक उपक्रमों तथा मानव, पशु पक्षियों, अन्य जीवधारियों और वनस्पतियों के त्याज्य पदार्थों (गोबर, मल–मूत्र, मृत शरीर, कूड़ा कचरा आदि) को भली भांति उपचारित कर भूमिगत किया जाये। यही वे पदार्थ हैं, जो पर्यावरण को सर्वाधिक प्रदूषित कर मानव तथा उसके लिए उपयोगी अन्य जीवधारियों तथा वनस्पतियों के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। यदि ये धरती के ऊपर असंगत रूप से इधर उधर न छोड़कर धरती माँ (भूमि) के अन्दर संगत रूप से पहुंचा दिये जाते हैं। तो उसके स्वरूप को संवारते, उर्वराशक्ति को बढ़ाते तथा वनस्पतियों, पशु पक्षियों और धरती माता के सर्वश्रेष्ठ सृष्टि मानव को पौष्टिक आहार, सुरक्षित पेयजल, शुद्ध वायु तथा स्वच्छ वातावरण उपलब्ध कराने में सहायक होते हैं। यह धरती तो हम सभी की अपनी माताओं की भी माँ है। हम इसे समुचित ढंग से अपने त्याज्य पदार्थों को सौंप पर नानी और दादी जैसी दुलारभरी गोद में निश्चिन्त बैठ सकते हैं।

मृदा को हम प्रदूषण मुक्त करके उससे प्राप्त होने वाले जल एवं उसके आवरण के रूप में उपस्थित वायु (जलवायु) का परोक्ष रूप से स्वतः प्रदूषण मुक्त करते हैं। उदाहरण स्वरूप मृदा को प्रदूषण से बचाने के लिए कूड़े–कचरे तथा वनस्पतिक अवशेषों को भूमि के अन्दर तीन से साढ़े तीन फिट (एक मीटर) गहरें गढ्ढ़े खोदकर दबा देना चाहिए, जिससे वातावरण प्रदूषण की सम्भावनायें

कम होती हैं और भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने वाली कम्पोस्ट खाद तैयार होती है, जो उसकी कार्बनिक संरचना को भी बनाये रखने में सहायक होती हैं उपर्युक्त गन्दगी यदि भूमि पर असंगत ढंग से ढेरों के रूप में पड़ी रहती है तो पर्यावरण को अनेक रूपों में प्रदूषित करती है। ग्राम्य स्तर पर हम सुलभ शौचालयों का प्रयोग करके, जिनमें मल–मूत्र का भूमि के अन्दर गड्ढ़ों में विसर्जन करने की व्यवस्था रहती है, वातावरणीय प्रदूषण रोकने के साथ पेट सम्बन्धी अनेक प्राणघातक रोगों से छुटकारा पा सकते हैं।

भूमि पर उपजाई जाने वाली फसलों की सुरक्षा के लिए कीटव्याधिनाशी दवाओं का सुविचारित उपयोग होना चाहिए। इनके आस–पास का वातावरण दुश्प्रभावित होने के साथ भूमि की कार्बनिक संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और उसकी उर्वराशक्ति कम होती है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से भी ऐसे ही दुष्प्रभाव होते हैं। हमें इन उर्वरकों के सन्तुलित प्रयोग के साथ वानस्पतिक खादों विशेषकर हरी खाद, कम्पोस्ट खाद तथा बायोगैस संयन्त्र की खाद (स्लरी) का प्रयोग करना चाहिए। बायोगैस संयन्त्रों का प्रयोग पर्यावरणीय संरक्षण प्रदान करता है, क्योंकि इसमें पशु तथा मानव के त्याजय पदार्थ प्रयुक्त होते हैं, जिनका दुष्प्रभाव रहित निस्तारण हो जाता है तथा ऊर्जा के लिए मीथेन गैस मिलने के साथ जो अपशिष्ट खाद स्लरी बनती है, वह सामान्य कम्पोस्ट खाद से तीन गुना अधिक उर्वर होती है और उस पर मक्खियां भी अपने अण्डे नहीं देती है, अतः मक्खियों की उत्पत्ति रुकती है जो मानव तथा पशुओं के अनेक जानलेवा रोगों को फैलाती है।

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मृदा संरक्षण, जल तथा वायु प्रदूषण नियंत्रण, ध्वनि प्रदूषण आदि कम करने आदि की दिशा में वनों के महत्व को सर्वोपरि महत्व दिया जाना चाहिए। वृक्षारोपण को बढ़ावा दिये जाने के साथ वनों की रक्षा के लिए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों, यथा सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, सामुद्रिक ऊर्जा, बायोमास ऊर्जा, सुधरे चूल्हों आदि का उपयोग किया जाना चाहिए।

औद्योगीकरण के साथ बढ़ रहे वायु प्रदूषण को रोकने के लिए ऐसे रसायन उपयोग में लाने चाहिए जो धुयें को ठोस या द्रव पदार्थों में परिणत कर उसे भूमिगत करने में सहाय हों। वृक्षारोपण मनुष्य के लिए अनेक प्रकार के लाभ पहुँचाने के साथ वायु प्रदूषण को रोकने में सर्वाधिक सहायक होगा। आज विश्व के विकसित देशों में सड़े गले पदार्थों, मल–मूत्र तथा औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों को आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक (रिसोसेल रिकवरी फ्राम रिफ्यूज प्लांट टेकनालाजी) द्वारा नये नये उपयोगों में लाया जा रहा है। ऐसे प्रयास भारत में भी किये जाने चाहिए।

उपर्युक्त सभी उपाय पर्यावरणीय प्रदूषण के संरक्षण में तभी प्रभावी होंगे, जब शासन के प्रयासों के साथ जन सहयोग सुलभ हों। यह तभी सम्भव है, जब पर्यावरण की शुद्धता ही जीवन है,

इस तथ्य को जन सामान्य की समझ तक पहुँचाया जाए। वस्तुतः इसके लिये गाँवों की प्राथमिक पाठशालाओं को लेकर कालेजों तथा विश्वविद्यालयों तक पर्यावरण को एक अनिवार्य पाठ्य विशय के रूप में सम्मिलित करके इसकी अनवरत शिक्षा दी जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. 'मालवीया राजीव' शिक्षा के नूतन आयाम संस्करण –2006 शारदा पुस्तक भण्डार–इलाहाबाद
2. 'गोयलएम0 के0' पर्यावरण शिक्षा संस्करण वर्ष– अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा–2
3. मिश्रा उशा पर्यावरण शिक्षा योजना एवं कुरुक्षेत्र पत्रिका

प्रयागराज, मेरठ, विविध

अवधनामा लखनऊ, मंगलवार, 19 मार्च 2019 6

दो दिवासीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का शुभारंभ

जैविक खेती में जैव उर्वरकों की महत्वपूर्ण भूमिका

डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, डॉ. अश्वनी कुमार[1] डॉ. अमित कुमार मिश्रा, रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री, डॉ. रविंद्र कुमार पांडेय एवं रोहित कुमार

कृषि विज्ञान संकाय, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

[1]उ.प्र. कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ, उ.प्र.

हरित क्रांति से लेकर आज तक मानव भूमि से केवल अत्यधिक उत्पादन कैसे प्राप्त करें पर विशेष बल दिया इस दौर में भूमि से उर्वरा शक्ति का क्षय हुआ साथ ही साथ रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से ऊसर होने लगी। संकर प्रजातियों के प्रयोग से कीट एवं रोगों का प्रकोप बढ़ा तथा इनकी रोकथाम के लिए रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग हुआ जिससे मानव स्वास्थ्य के साथ–साथ अन्य तमाम तरह के रोगों का प्रकोप मनुष्य के ऊपर पड़ने लगा । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मनुष्य ने पुनः पारंपरिक खेती व जैविक खेती की तरफ रुझान किया तथा जैव उर्वरकों पर ध्यान देना प्रारंभ किया। जैव उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में पोषक तत्व की पूर्ति एवं मृदा उत्पादकता वृद्ध में होगी एवं साथ ही साथ खर्चे भी कम हो जाएंगे। फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग से वायुमंडलीय नत्रजन पौधों को उपलब्ध हो जाती है तथा भूमि में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस का घुलनशील फास्फोरस में परिवर्तित होकर पौधों को उपलब्ध हो जाती है। जैव उर्वरक नमी धारक युक्त पदार्थों का मिश्रण है। मुख्य जीवों की निर्धारित मात्रा को नमी धारक घुलीय पदार्थ चारकोल लिग्नाइट आद में मिलाकर जैव उर्वरक तैयार करते हैं। जैविक खेती में जैव उर्वरकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्यों कि यह मृदा के भौतिक गुणों में सुधार कर उपजाऊ बनाती है।

जैव उर्वरक के प्रकार

अजोला

टेरिडोफाइटा समूह की एक तैरती हुई फर्न है। मुख्यतया यह धान की खेती में प्रयोग में ली जाती है। अजोला की पत्तियों के नीचे क्षेत्रों सहजीवी बैक्टीरिया एनाबेला अजोला पाए जाते हैं, जो नत्रजन स्थिरीकरण में सहयोग करते हैं । इसके प्रयोग से 40 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

एजोटोबेक्टर

यह हेट्रोट्रोपिक स्वतंत्र वायवीय जीवाणु है जो कि बिना सहजीवन के नत्रजन स्थितिकरण के साथ–साथ पौधों में पादप वृद्धि हार्मोन इंडोल एसिटिक एसिड एवं जिब्रेलिक एसिड और एंटीबायोटिक्स का स्राव कराते हैं। एजोटोबेक्टर सभी गैर दलहनी फसलों में प्रयोग किया जाता है।

एजोस्पाईरिलम

यह भी नत्रजन स्थिरीकरण करने बाला सूक्ष्म जीवाणु है जो गैरदलहनी फसलों के प्रयोग में लिया जाता है। फास्फोरस घुलनशील सूक्ष्मजीव पी.एस.एम. जो मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील फास्फोरस में परिवर्तित करते हैं। यह बाजार में पी.एस.बी. के नाम से मिलता है। इसके प्रयोग से 30 से 40% उर्वरक की बचत होती है तथा साथ ही साथ 10 से 20% उपज में भी वृद्धि होती है।

राइजोबियम कल्चर

यह एक प्रकार का सूक्ष्म जीव है जो कि वायुमंडलीय नत्रजन का स्तरीकरण करके उसे पौधों को उपलब्ध कराता है। यह दलहनी फसलों के प्रयोग में लाया जाता है। यह दलहनी फसलों में 20 से 25% उपज वृद्धि करता है।

नीलहरित शैवाल

यही एक जीवाणु सायनोबैक्टीरिया है जो कि प्रकाश संश्लेषण से उर्जा उत्पादन करते हैं। इनके नीले रंग के कारण इनका नाम सायनो (यूनानी अर्थ नीला) पड़ा है। सायनोबैक्टीरिया विटामिन 12 A, ऑक्सिन और एस्कार्बिक अम्ल स्रावित करते हैं जो कि धान की फसल में 25 से 30 किलोग्राम नत्रजन उपलब्ध कराकर पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं।

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि

जैव उर्वरकों को विभिन्न तरीकों से प्रयोग किया जाता है–

बीज उपचारः

यह एक बीज उपचार सर्वोत्तम विधि हैं । जिससे आधा लीटर पानी में 50 ग्राम गुड़ मिलाकर उवाल लेते हैं तथा ठंडा होने के बाद उसमें जैव उर्वरक (200 ग्राम) को अच्छी तरह मिलाकर घोल लेते हैं। इस घोल को 10 किलोग्राम बीज पर छिड़क कर मिला लेते हैं तत्पश्चात अब इन्हें छाया में सुखा लेते हैं। उपचारित बीज को कुछ घंटे छाया में सुखाकर तुरंत बुवाई कर देते हैं।

जड़ उपचारः

यह विधि रोपाई फसलों के लिए उपयुक्त पाई गई है। 4 किलोग्राम जैव उर्वरक को लेकर

20 से 25 लीटर पानी में घोल बना लेते हैं यह घोर एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है। पौधे की जड़ को इस घोल में 20 से 25 मिनट तक डुबोकर रखते हैं इसके बाद उपचारित पौध को खेत में रोपाई कर देते हैं।

मृदा उपचारः

इस विधि से खेत की मिट्टी का उपचार किया जाता है। जैव उर्वरक को 50 किलोग्राम खेत की मिट्टी तथा 50 ही किलोग्राम सड़ी हुई कंपोस्ट या गोबर की खाद में अच्छी तरह मिला लेते हैं। इस प्रकार से जैव उर्वरक खेत की मिट्टी तथा कंपोस्ट या गोबर की खाद से तैयार मिश्रण को बुवाई के समय या बुवाई से लगभग 24 घंटापूर्व 1 हेक्टेयर क्षेत्रफल में समान रुप से छिड़क देते हैं। यदि बुवाई कूड़ विधि में किया जाना है तो इस मिश्रण को कूड़ में भी डाल सकते हैं।

जैव उर्वरकों से लाभ

इनके प्रयोग से 10 –15 प्रतिशत फसलों की उपज में वृद्धि होती है। यह रासायनिक खादों, विशेषकर नत्रजन एवं फॉस्फोरस की जरुरत का 20–25 प्रतिशत तक पूरा करते हैं । यह मृदा के भौतिक, जैविक एवं रासायनिक गुणों में सुधारकर उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते हैं । इनके प्रयोग से गन्ने में सर्करा, मक्का व आलू में स्टार्च तथा तिलहनी फसलों में तेल की मात्रा में वृद्धि होती है।

जैविक उर्वरक के प्रयोग में सावधानियां

जैव उर्वरकों को छाया में सूखे स्थान पर रखें ताकि उनमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या बनी रहे। फसल के अनुसार ही उचित जैव उर्वरकों का चुनाव करें ताकि इनका फसल पर अच्छा प्रभाव दिखाई दे। जैव उर्वरकों को खरीदते समय उर्वरक का नाम बनाने की तिथि फसल का नाम आदि अवश्य देख लें। जैव उर्वरक का प्रयोग समाप्ति तिथि के पश्चात ना करें। जैव उर्वरक एक जीवाणु खाद होता है जो अत्याधिक गर्मी अथवा तेज धूप से नष्ट हो सकता है यदि जैव उर्वरक के जीवाणु मर जाएंगे तो उसका लाभ नहीं मिल सकेगा। अतः जैव उर्वरक को धूप से बचाकर रखना चाहिए। यदि भंडारित करना हो तो जैव उर्वरक को मिट्टी के घड़े में रखकर छाया में रख सकते हैं। राइजोबियम जीवाणु फसल विशिष्ट के लिए होता है अर्थात अलग फसल के लिए अलग राइजोबियम जीवाणु का प्रयोग किया जाता है। अतः राइजोबियम जीवाणु के पैकेट पर लिखी गई फसल में ही उसका प्रयोग करें यदि अन्य फसल में राइजोबियम जीवाणु का प्रयोग किया जाएगा तो उसका लाभ नहीं होता है। जैव उर्वरक से उपचारित बीज को किसी रसायन या रासायनिक खाद के साथ नहीं मिलाते हैं क्यों कि ऐसा करने पर जैव उर्वरक के जीवाणु नष्ट हो सकते हैं। यदि बीज

को किसी फफूंदी नाशक रसायन से उपचारित किया जाना हो तो पहले बीज को उस फफूंदीनाशक रसायन से उपचारित कर लें इसके बाद जैव उर्वरक से उपचारित करें जिससे कि जैव उर्वरक के जीवाणु के मरने की संभावनाना रहे। जैव उर्वरक के पैकेट पर प्रयोगविधि और अंतिम तिथि लिखी होती है उसी विधि के अनुसार जैव उर्वरक का फसल विशेष में प्रयोग करें यदि अंतिम तिथि समाप्त हो गई हो तो ना तो उस जैव उर्वरक का क्रय करें और ना ही उसका प्रयोग करें। ध्यान रखें खरीदते समय जैव उर्वरक किसी प्रामाणिक संस्था अथवा अतिविश्वसनीय विक्रेता से ही खरीदें। जैव उर्वरकों से लाभ लेने के लिए उसमें जीवाणु का क्रियाशील स्थिति में होना अत्यंत आवश्यक होता है।

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन

सोसाइटी ऑफ बॉयसाजिकल साइंसेज एण्ड रूरल डेवलपमेट, इलाहाबाद के तत्वधान में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी कृषि, पर्यावरण व तकनीकी में नवाचरों द्वारा सम्मिलित विकास का समापन विज्ञान परिषद, प्रयाग के सभागार से दिनांक 18 मार्च, 2019 को सम्पन्न हुआ। इस संगोष्ठी में सभी अतिथियों का स्वागत डॉ. एस0सी0 पाठक, पूर्व सी0जी0एम0 नाबार्ड द्वारा किया गया। संगोष्ठी की दो दिवसीय रिपोर्ट डॉ. हेमलता पन्त, सचिन, एस0बी0एस0आर0डी0, इलाहाबाद ने प्रस्तुत की। समापन समारोह की मुख्य अतिथि प्रो0 अनिता गोपेश, अध्यक्षा जन्तु विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद ने अपने सम्बोधन में कहा कि यदि हम विकास की अंधाधुध दौड़ में अपनी प्रकृति से छेड़छाड करेंगे तो आगे आने वाली हमारी पीढ़ियों के लिए बहुत परेशानी होगी। नवाचार व तकनीकी द्वारा विकास अच्छा है, जरूरी भी है पर प्रकृति को भी बचाना, जैवविविधता को बनाये रखना भी उतना ही आवश्यक है। समारोह की अतिथि डा0 विभा मिश्रा, संयुक्त निदेशक, एम0ई0एस0एस0 (भारत सरकार) ने उद्योगों में हो रहे नवाचार न नवीन तकनीकी के विषय में जानकारी दी। इस कार्यक्रम के तकनीकी सत्र में डॉ0 पवन झा, पर्यावरण विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (इलाहाबाद), डॉ0 रीना लॉरेन्स, जैव रसायन विभाग, शुआट्स, इलाहबाद तथा डॉ0 ए0के0 सिंह, पादप रोग विज्ञान विभाग, शेरे काश्मीर कृषि एवम् तकनीकी विश्वविद्यालय, जम्मू का आमंत्रित व्याख्यान हुआ। संगोष्ठी में 50 से भी अधिक शोध पत्रों का मौखिक व पोस्टर के माध्यम प्रस्तुतिकरण हुआ। समारोह में प्रो0 के0पी0 सिंह, जन्तु विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (इलाहाबाद) डॉ0 एस0पी0 वर्मा, डॉ0 ए0 के0 वर्मा0 डॉ0 एन0 पिल्लू, डॉ0 ज्योति वर्मा, डॉ0 आर0के0 दुबे, प्रो0 बी0 पाल, डॉ0 अखिलेश चन्द्र मिश्र, डॉ0 विपिन कुमार सहित कई अन्य बैज्ञानिकों व प्राध्यापकों को सम्मानित किया गया। समापन समारोह में शोध पत्रों के प्रस्तुतीकरण के बाद कई शोधार्थियों को पुरस्कार दिये गये। समारोह का संचालन डॉ0 डी0 स्वरूप, पशु वैज्ञानिक, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवम् तकनीकी विश्वविद्यालय, कानपुर तथा धन्यवाद ज्ञापन पीयूष रमन पाण्डेय, सह कार्यकारी सचिव, एस0बी0एस0आर0डी0, इलाहाबाद द्वारा किया गया। कार्यक्रम में सौ से भी अधिक वैज्ञानिकों, प्राध्यापकों, शोधार्थियों व विद्यार्थियों की उपस्थिति रही।

गुलदाउदी की उन्नतशील खेती, फसल स्वास्थ्य एवं संरक्षण

[1]डा0 अनिल कुमार, [2]डा0 अजय कुमार, [1]डा0 आशुतोष कुमार सिंह, [3]अमित मौर्या, [1]डा0 पुष्पेन्द्र वर्टी, [1]डा0 विवेक कुमार सिंह एवं [4]डा0 ममता भारती

[1]उद्यान विज्ञान विभाग, सैम हिगिन बॉटम कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ0प्र0)।

[2]सहायक प्राध्यापक, अमर सिंह महाविद्यालय, बुलन्दशहर (उ0प्र0)।

[3]पादप रोग विज्ञान विभाग, सैम हिगिन बॉटम कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ0प्र0)।

[4]वरिष्ठ गन्ना विकास निरीक्षक (उ0प्र0)।

उत्पत्ति एवं इतिहास

गुलदाउदी का वैज्ञानिक नाम डेन्ड्रानथीना ग्रेन्डीफ्लोरा है। इसकी उत्पत्ति सम्भवतः चीन में मानी जाती है। प्राचीन चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस ने गुलदाउदी को 500 ईसा पूर्व का विश्व का एक महत्वपूर्ण विकसित फूल बताया है। इंग्लैंड में गुलदाउदी प्रदर्शनी के फूल के लिए प्रसिद्ध है। व्यापारिक फसल के तौर पर गुलदाउदी का स्थान द्वितीय है। इसका हिन्दी नाम गुलदाउदी (जिसका अर्थ है दाउद का फूल) संकेत करता है यह मुगल काल के दौरान उगाया गया होगा। गुलदाउदी को प्रायः जाड़े की रानी भी कहा जाता है। अमेरिका में इसे 'ग्लोरी ऑफ ईस्ट' भी कहा जाता है। भारत मे व्यवसायिक रूप से खेती की जाने वाली पॉच प्रमुख फूलों में से गुलदाउदी एक है।

उपयोग

गुलदाउदी एक बहुमुखी फूल है, जिसे क्यारियों तथा गमलों में उगाया जाता है। इसका उपयोग मुख्यतः माला बनाने में तथा पुष्प सज्जा में किया जाता है। भारत में बड़े फूलों के आकार वाली प्रजातियों का भीतरी सजावट के लिए एवं प्रदर्शनी के लिए उगाया जाता है। जबकि छोटे आकार वाली प्रजातियों का उपयोग कर्तित फूल, माला, गजरा, पूजा तथा गमलों एवं क्यारियों के उद्देश्य से उगाया जाता है।

क्षेत्र एवं विभाजन

गुलदाउदी एक अतिमहत्वपूर्ण पुष्प है, जिसकी खेती मुख्यतः नीदरलैण्ड, इटली, स्पेन, कोलम्बिया, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका मे ग्रीन हाउस में की जाती है। भारत में व्यवसायिक रूप से इसकी खेती कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र तथा पंजाब में की जाती है। भारत के विभिन्न

राज्यों में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे–गुलदाउदी हिन्दी में, चन्द्रमलिका पूर्वी राज्यों में, सोमन्ती दक्षिणी क्षेत्र में तथा मशेवन्ती पश्चिमी क्षेत्र में। भारत में इस फसल की खेती लगभग 4000 हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है।

वानस्पतिक वर्णन

यह रेशेदार जड़ विन्यास वाली, शाकीय, बहुवर्षीय ऐस्टरेसी कुल का पौधा है जिसकी लम्बाई 50 से 150 सेमी0 होती है। इसकी पत्तियां किनारों पर गहरी मुड़ी हुई होता है। इसके फूल विभिन्न रंगों जैसे सफेद, पीले, गुलाबी, बैगनी आदि होते हैं।

जलवायु

गुलदाउदी के वानस्पतिक वृद्धि के लिए लम्बे दिन एवं फूल खिलने के लिए छोटे दिन की आवश्यकता होती है। गुलदाउदी के वृद्धि एवं फूलों के खिलने के लिए प्रकाश एवं तापमान महत्वपूर्ण कारक हैं। पौधो के वृद्धि की दर सामान्यतः तापमान द्वारा प्रभावित होती है। इसकी वृद्धि लिए औसत तापमान 15.6^0 सेन्टीग्रेट की आवश्यकता होती है। फूल का आकार तथा स्वरूप तापमान से प्रभावित होता है। पौधों के लिए 70 से 90 प्रतिशत आर्द्रता की आवश्यकता होती है।

मृदा

गुलदाउदी की खेती के लिए बलुई दोमट, उचित जल निकास तथा हवादार मृदा उपयुक्त होती है। कार्बनिक तत्वों से युक्त भूमि तथा चभ 6.5 इसकी खेती लिए उपयुक्त होती है।

प्रजातियॉ

गुलदाउदी की कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियां जो विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों से विकसित हुई है, उनका वर्णन इस प्रकार है।

1. कीर्ति

यह ऐन्जिला ग G.P.I की एक संकर प्रजाति है। यह शीघ्र (लगभग 88 दिन मे) फूल देने वाली प्रजाति है। यह सफेद रंग के कोरियन प्रकार के फूल देती है, जिसका रंग हल्का गुलाबी होता है। यह प्रजाति अत्यधिक पुष्पोत्पादन (लगभग 120 फूल प्रति पौधा) करती है। इसकी उपज लगभग 168 ग्राम फूल प्रति पौधा है। इसकी फूलदान की उम्र 7.5 दिन है। यह क्यारियों और गमलों में लगाने के अतिरिक्त पुष्पसज्जा में भी उपयोग होते है।

2. अर्का स्वर्णा

यह नान्को ग CO-1 की संकर प्रजाति है। इसके फूल पीले होते है। यह प्रजाति पौधे की ऊॅचाई, फूलों की संख्या प्रति पौधा, फूल का आकार, फल का भार, फूल की उपज प्रति पौधा तथा

फूल की उम्र के विशय में उन्नत प्रजाति है। यह कर्तिक फूलों एवं शिथिल फूलों के रूप में उपयोग किये जाते है।

3. बीरबल साहनी

इस प्रजाति में अक्टूबर से नवम्बर माह में फूल लगने प्रारम्भ हो जाते है। इस प्रजाति में फूल खिलने के लिए लगभग 121 दिन की आवश्यकता होती है। पौधो की लम्बाई 65 सेमी0 होती है। फूल पोमपान प्रकार के, बर्फ जैसे सफेद एवं छोटे आकार के होते है। इसकी औसतन उपज लगभग 32 कुंतल प्रति हेक्टेयर होती है।

4. शांति

यह छोटे फूलों वाली व्हाइट डैकोरेटिव गुलदाउदी की प्रजाति है। यह कर्तित एवं माला वाले फूलों की अच्छी प्रजाति है। इसके पौधे की उॅचाई लगभग 51 सेमी0, 99 फूल प्रति पौधा एवं फूल का रंग सफेद होता है।

5. अर्का गंगा

यह फर्लट एवं रेड गोल्ड की संकर प्रजाति है। इसके फूलों को खिलने के लिए 127 दिनों की आवश्यकता होती है। यह लगभग 143 फूल प्रति पौधा उत्पादित करती हैं। इसकी फूलदान में उम्र 11 दिन हैं। इसका उपयोग कर्तित एवं शिथिल फूलों के रूप में किया जाता है।

6. सद्भावना

यह छोटे फूलों वाली लाल, पीली डबल कोरियन प्रकार गुलदाउदी की प्रजाति है। इसके पौधे की उॅचाई लगभग 29 सेमी0, 303 फूल प्रति पौधा, फूल का रंग लाल–बैंगनी होता है।

7. बिंदिया

इसका फूल गाढ़ा क्रिम्सन डबल कोरियन प्रकार होता है। यह लघु रूप संवर्धन के लिए उपयोगी है। इसके फूल की लम्बाई लगभग 1.1 सेमी0 एवं फूल का भार 0.3 ग्राम होता है।

8. पंकज

इसके फूल गुलाबी रंग के होते है। इसके फूल का व्यास 4.8 सेमी0 होता है। यह एक अधिक उपज वाली एवं लगभग 140 फूल एवं 363 ग्राम प्रति पौधा उत्पादित करती है। यह कर्तित फूलों के लिए उपयोगी है। शिथिल फूलों का उपयोग पुष्प सज्जा के लिए किया जा सकता है।

भूमि की तैयारी

पौधे लगाने से पहले भूमि की 2 से 3 बार अच्छे प्रकार से जुताई की जानी चाहिए। पॉच किग्रा0 प्रति वर्ग मी0 गोबर की खाद का उपयोग लाभकारी होता है।

प्रवर्धन विधि

गुलदाउदी का प्रवर्धन वानस्पतिक तरीके से जैसे सकर कलम एवं ऊतक विधि द्वारा किया जाता है। **सकर विधि द्वारा**— फूलों के खिलने के बाद तने को भूमि से कुछ उँचाई पर काट देते है। मातृ पौधे के किनारे से निकले सकर्स को अलग करके बलुई मिट्टी से तैयार क्यारियों में लगा दिया जाता है। उचित जड़ वृद्धि वाले सर्कस को प्रत्यक्षतः रोपित कर सकते है।

कटिंग (कर्तन) विधि द्वारा— इस विधि से प्रवर्धन के लिए अच्छे पौधों को छांटकर अलग कर लिया जाता है। कटिंग की लम्बाई 5 से 7 सेमी0 होती है। कटिंग को ढाई हजार (2500 पी0पी0एम) इण्डोल ब्यूटाईरिक एसिड या कैराडैक्स में डुबाते है। उपचारित कटिंग्स को बलुई मिट्टी से तैयार क्यारियों में छायादार स्थान पर लगाते हैं।

रोपाई का समय

अच्छे पौधो से तैयार टर्मिनल कटिंग्स को जून माह में तैयार किया जाता है तथा उन्हें जड़ निकलने के बाद 15 सेमी0 गहराई वाले गमले अथवा तैयार क्यारियों में जून माह के अन्त में रोपित किया जाता है। यह पौधे जुलाई माह के अन्त अथवा सितम्बर के आरम्भ में पिचिंग के लिए तैयार हो जाते हैं।

रोपाई की दूरी

गुलदाउदी के पौधे 30 × 30 सेमी0 पौधा से पौधा तथा लाइन से लाइन की दूरी पर लगाए जाते है।

खाद एवं उर्वरक

8—10 टन गोबर की खाद प्रति एकड़, 50 किलो ग्राम नाइट्रोजन, 160 किग्रा0 फॉस्फोरस और 80 किग्रा0 पोटाश प्रति एकड़ की दर से मृदा में प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई

सिंचाई की आवृति मृदा एवं मौसम की दशा पर निर्भर करती है। क्यारियों एवं गमलों में रोपित गुलदाउदी के लिए सिंचाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। गुलदाउदी के पौधे की उचित वृद्धि एवं विकास सिंचाई की मात्रा एवं आवृति पर निर्भर करती है।

खरपतवार प्रबधंन

ग्रीनहाउस एवं खेतों में खरपतवार की अनदेखी नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह पौधों में नमी एवं पोशण की कमी कर देते हैं। फूलों की कटाई के बाद भूमि की अच्छी प्रकार से गुडाई

करके खरपतवार को निकाल देना चाहिए। पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए 2 से 3 निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है प्रथम निराई–गुड़ाई रोपाई के एक माह बाद करनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण करने के लिए खरपतवारनाशी का भी प्रयोग कर सकते है।

फसल स्वास्थ्य एवं संरक्षण

रोग एवं उनके उचार

1. **जड़ सड़न :** इस रोग का कारक पिथियम जाति व राईजोक्टोनिया जाति है। इस रोग में प्रभावित पौधे की जड़, तना, पत्ती अचानक सूख जाते है।

   उपचार : उचित जलनिकास का प्रबन्धन होना चाहिए। थाइरम, कैप्टान या दोनो का मिश्रण 2.5 ग्राम प्रति वर्ग मी0 की दर से मृदा को उपचारित करना चाहिए जो संक्रमण को रोकने में सहायता करते है। मेन्कोजेब, मेटालेक्सील और फोस्टील का उपयोग भी संरक्षण के लिए कर सकते है।

2. **लीफ स्पॉट :** इस रोग का कारक सेपटोरिया क्राइसेन्थीमेला है। मटमैले भूरे धब्बे पत्तियों पर दिखाई पड़ते है जो पीले धब्बों में पारवर्तित हो जाते है और अन्त में पौधे की मृत्यु हो जाती है। जब फूल खिलना प्रारम्भ होता है तब कलियां सड़ने लगती हैं। यह रोग पौधे में नीचे से ऊपर की तरफ फैलता है।

   उपचार : 15 दिन के अन्तराल पर मैन्कोजेब का छिड़काव रोग को नियंत्रित करने में सहायता करता है। संक्रमित पत्तियों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। कॉपर आक्सीक्लोराइड का छिड़काव (0.2 प्रतिशत) की दर से करना चाहिए।

3. **विल्ट :** इस रोग का कारक वर्टीसीलियम प्रजाति है। संक्रमित पौधे की पत्तियों का रंग पीले मटमैले रंग का हो जाता है एवं शाखाएं या पूरा पौधा धीरे–धीरे सूख जाता है। इस रोग का कारण विभिन्न रोग व्याधियॉ रोग विकार और पानी की कमी हो सकते हैं।

   उपचार : ग्रीष्म ऋतु में मृदा को काली पालीथीन से ढक कर धूप में उपचारित करना चाहिए। मृदा को डाइथेन एम–45 (0.2 प्रतिशत) से उपचारित करना चाहिए। रोपाई से पहले कटिंग (कर्तन) को बेनोमाइल के घोल में डुबोकर उपचारित करना चाहिए। प्रतिरोधी प्रजातियों का उपयोग करना चाहिए।

4. **रस्ट :** इस रोग का कारक फक्सिनिया क्राइसेन्थीमी है। यह एक गम्भीर रोग है। जो मुख्यतः प्रारम्भिक बसन्त ऋतु में होती है। भूरे रंग के बीजाणु रूप से संक्रमित पौधे बहुत कमजोर हो जाते है और फूल खिलने में असफल रहते है।

उपचार : उचित साफ–सफाई रोग के संक्रमण को नियंत्रित करती है। प्रभावित पत्तियों को जल्दी ही तोड़ देना चाहिए। पौधो पर बुरकाव करनी चाहिए

5. **पाउडरी मिल्डयू** : इस रोग का कारक ओडियम क्राइसेन्थेमी है। इस रोग में पत्तियों पर पाउडर की तरह परत दिखाई पड़ती है। जिसके कारण पत्तियां गिर सकती है।

   उपचारः सल्फर कवकनाशी या कारबेन्डाजिम का उपयोग करना चाहिए।

प्रमुख कीट :

1. **एफिड** : यह छोटे हरे–काले रंग के बिन्दी जैसे कीट होते है जो कि बड़ी संख्या में दिखाई देते है। ये कीट मुलायम भागों जैसे कली, छोटी पत्तियों, मुलायम तनों का रस चूस लेते है। प्रभावित फूल की कलियां खिलने में असफल रहती है एवं खिलने से पहले ही सूख जाती है। यह कीट मार्च एवं अप्रैल–जुलाई महीनों में अधिक क्षति पहुॅचाता है।

   उपचार : 15 दिन के अन्तराल पर मोनोक्रोटोफास (0.5 प्रतिशत) मैलाथियान (0.1 प्रतिशत), फास्मीडान (0.02 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

2. **माइट** : ये बहुत ही छोटे बिन्दु जैसे लाल रंग के कीट हैं जो पत्तियों की निचली सतह पर मुख्यतः गर्मियों में दिखाई देते है। प्रभावित फूल की कलियां खिलने में असफल रहती हैं और खिलने से पहले ही सूख जाती हैं।

   उपचार : 15 के अन्तराल पर डाइकोफॉल (0.05 प्रतिशत) वैटेबल सल्फर (0.3 प्रतिशत), वर्टीमैक या पैण्टेक (0.05 प्रतिशत) की छिड़काव करना चाहिए।

3. **थ्रिप्स** : थ्रिप्स गर्मियों में खिलने वाली प्रजातियों को प्रभावित करते है। प्रभावित फूलों का रंग फीका पड़ जाता है और व सूख जाते है।

   उपचार : 15 दिन के अन्तराल पर डाईमिथियोएट 0.05 प्रतिशत का छिड़काव 2 से 3 बार करना चाहिए।

4. **लीफ माइनर** : इसका प्रभाव मार्च और जून के दौरान होता है, यह पॉली हाउस से ज्यादा विनाशकारी होता है। इसकी युवा मैगेट अवस्था पत्ती की निचली सतह और उपरी सतह के बीच नालियां बना देते है। अधिक प्रभाव के कारण पत्तियां पूर्ण रूप से सूख जाती है और गिर जाती है।

   उपचार : प्रभावित पत्तियों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए एवं मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत), ट्राइजोफॉस (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

5. **लीफ फोल्डर** : सभी इल्ली अवस्थाएं पौधे को प्रभावित करती है। रेशमी धागे की सहायता

से इल्लियां पत्तियों को मोड़ देती है। और पत्तियों को अन्दर से खाना प्रारम्भ कर देती है।

उपचार : 15 दिन के अन्तराल पर मेथिल पैराथियान (0.05 प्रतिशत) अथवा क्यूनॉलफॉस (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

फूलों की कटाई एवं भण्डारण

रोपाई के 3 से 4 माह बाद गुलदाउदी की फसल में फूल आने प्रारम्भ हो जाते है, जो विभिन्न प्रजातियों पर निर्भर करती है। कर्तित फूलों हेतु तने को मृदा से 10 सेमी0 ऊपर तक काटा जाता है। फूलों की उम्र को बढ़ाने के लिए तने का आधा हिस्सा पानी में डुबा देते है। फूलों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें पन्नी की थैलियों में रखना चाहिए। फूलों की कटाई का समय प्रजाति एवं उद्देश्य पर निर्भर करता है।

चित्रः गुलदाउदी की फसल में फूल

वर्गीकरण (ग्रेडिंग), भराई (पैकिंग) एवं भण्डारण

फूलों का वर्गीकरण (ग्रेडिंग) तने की लम्बाई, फूल के रंग एवं फूल के व्यास पर निर्भर करता है। परिपक्व फूलों को पन्नी (पालीथीन) में लपेट कर 6–8 हफ्तों के लिए 0.5°ब तापमान पर सूखे स्थान पर रख सकते है। शिथिल फूलों के विपणन के लिए बॉस से बनी टोकरियों या जूट के थैलों में पैंक करना चाहिए।

उपज

फूलों के खिलने का समय विभिन्न जगहों पर अलग–अलग होता है। फूल जुलाई के अन्त से फरवरी तक खिलते हैं। कम से कम 15 बार फूलों की कटाई कर सकते है। गुलदाउदी की उपज 9–10 टन फूल प्रति एकड़ होता है।

फसल संर्वधन

संकुचन अथवा पिंन्चिंग

रोपाई के पश्चात पौधों में मुख्यतः ऊपर की ओर वृद्धि होती है। जबकि शाखायें कम मात्रा में

होती है। पौधों की लम्बाई को रोकने के लिए एक साधारण प्रतिक्रिया जिससे पिंन्चिंग कहते है, उपयोग में लाई जाती है। केवल मुलायम वानस्पतिक 1.5 से 3.0 सेमी0 लम्बे शीर्षस्थ तने को तोड़कर अलग कर देते है। गुलदाउदी के फसल में पिंन्चिंग एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। संकुचन के द्वारा तने में फूलों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।

डिसबडिंग अथवा कली हटाना

डिसबडिंग प्रायः बड़े तथा आकर्षक फूलों के उत्पादन के लिए की जाती है। स्प्रे प्रजातियों की डिसबडिंग प्रक्रिया बहुत ही सरल होती है क्योंकि इनमें केवल बड़ी शीर्षस्थ कलिकाओं को तोड़कर अलग कर देते है, तटस्थ कलिकाओं को उगने देते है और तत्स्थ कलिकाओं का मसल देते है।

स्केटिंग (सहारा देना)

पौधे को सीधा रखने के लिए सहारे की आवश्यकता होती है तथा उचित आकार एवं फूलों के खिलने के लिए भी सहारे की आवश्यकता होती है। सहारे के लिए बॉस की डण्डियों का उपयोग करते है। उत्पादक एक ठण्डी का उपयोग करते है जब उन्हें एक ही फूल प्रति पौधा की आवश्यकता होती है। अगर उत्पादक को तीन फूल प्रति पौधा की आवश्यकता हो तो उन्हें तीन डण्डियों का इस्तेमाल करना होता है।

डिसकरिंग

पौधे में वानस्पतिक वृद्धि ऊपर की ओर होती है। पौधे की उचित वृद्धि तथा विकास हेतु सकर को समय–समय पर निकाल देना चाहिए क्योंकि इसके बिना मुख्य पौधा कमजोर हो जाता है।

विपणन एवं परिवहन

गुलदाउदी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विपणन केन्द्र जापान, नीदरलैण्ड, जर्मनी, यूनाइटेड किन्गडम, यूनाइटेड स्टेट, फ्रांस, इटली, डेनमार्क तथा बेलजियम है। फूलों के परिवहन हेतु ट्रेन, ट्रक, पानी का जहाज आदि का प्रयोग किया जा सकता है। दूर तक फूलों के विपणन एवं परिवहन के लिए फूलों को कम से कम 4 घण्टे तक कोल्ड स्टोर में रखना आवश्यक है। विश्व में फूलों का उपयोग करने वाले देशों में एवं कर्तिक फूलों में गुलदाउदी मुख्य फूलों में से एक है। स्टैडर्ड टाइप फूल से अधिकतम आय अर्जित किया जाता है किन्तु इनका हिस्सा कम है। स्प्रे टाईप फूल छोटे आकार के होते है और वह विश्व में विपणन के लिए प्रमुख है। फूलों का अधिकतम आयात जून–अक्टूबर माह में यूरोपीय देशों से होता है।

कृषकों की आय दोगुनी करनें हेतु नवीन समन्वित कृषि पधति

डाँ विद्या सागर', डाँ प्रदीप कुमार'' एवं डाँ विनय कुमार'''
*सह प्राध्यापक / वि.व.वि.(पशु विज्ञान), *सहा. प्राध्यापक / वि.व.वि.(फसल सुरक्षा),
*** सह प्राध्यापक / वि.व.वि.(कृषि वानिकी),
कृषि विज्ञान केन्द्र,पांती, अम्बेडकर नगर पो0 मंशापुर–224168,उ0प्र0
(आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश)

देश में लघु एवं सीमान्त किसानों की संख्या बड़ी तजी से बढ़ रही है। आज कुल किसानों में से 67 प्रतिशत केवल लघु एवं सीमान्त की श्रेणी में आ गये हैं। हमारा देश कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 62 प्रतिशत जनसंख्या जीवनयापन के लिए कृषि पर आधारित है। देश के कुल क्षेत्रफल का करीब 50 प्रतिशत भूभाग कृषि योग्य है तथा विगत वषों में बढ़ती जनसख्ंया के कारण लगभग 0. 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से कृषि योग्य भुमि के क्षेत्र में कमी आ रही है। अतः बढ़ती जनसंख्या एवं बढते आवश्यकता के चलते कृषि पर दबाव बढ़ता जा रहा है। जहाँ एक तरफ किसान की जोत कम होती जा रही है वही कृषि संबधी उत्पादों की मांग बढ़ती जा रही है। देश में कुल खेती योग्य भूमि का 36.79 प्रतिशत ही सिंचित है। आज भी हमारे देश में ज्यादातर किसान फसलों के उत्पादन के लिए वर्षा पर निर्भर हैं। बढ़ती खेती की लागत, घटती जोत सें किसानों की आमदनी प्रभावित हो रही है। वर्तमान स्थिति में अक्सर ऐसा देखा जाता है कि कभी–कभी किसानों को उनकी फसल उगाने की लागत के बराबर भी पैदावार से दाम प्राप्त नहीं होते हैं जिसके कारण आज का ग्रामीण युवा वर्ग खती से पलायन कर रहा है। वर्तमान स्थिति में किसानों की आय दोगुनी कैसे की जा सकती है, इस संदर्भ में किसान भाइयों को निम्न कृशि तकनीकी के साथ समन्वित कृशि प्रणाली अपनानें की अवश्यकता है।

1. गुणवत्ता वाले प्रजातियों के बीजों का चयनः– अक्सर यह देखा जाता है किसान भाई स्थानीय प्रजातियों के बीज बुवाई के लिए प्रयोग करते है जिनकी पैदावार गुणवत्ता वाले प्रजातियों से करीब–करीब आधी होती है। अतः अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक उपज वाले बीजों के इस्तेमाल से पैदावार करीब–करीब दोगुनी की जा सकती है।

2. बुवाई से पहले मृदा परीक्षणः– बुवाई से पहले मृदा का परीक्षण कराना अति आवश्यक है तथा खेत में उन्हीं उर्वरकों का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है जो मृदा परीक्षण द्वारा दर्शाए जाते है। इसके अलावा उनकी कितनी मात्रा डालनी है, इसका भी अवलोकन मृदा परीक्षण द्वारा किया जा सकता है। ऐसा करने से उर्वरक की लागत में भी कमी आयेगी तथा पैदावार भी भरपूर होगी। इस

तथ्य को ध्यान में रखते हुए सरकार नें किसानों के लिए मृदा स्वास्थ कार्ड का आह्वान किया है।

3. सिंचाई की उचित प्रबन्धनः— पानी उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। उदाहरण के लिए गेहूं की वर्षा आधारित एवं सिंचित फसल का आंकलन करें तो सिंचित क्षेत्र में उपज वर्षा आधारित क्षेत्रों से दोगुनी होती है। अतः सिंचाई का प्रबंधन करना अति आवश्यक है। इस क्षेत्र में भारत सरकार भी सिंचित क्षेत्र को बढ़ाने के लिए भिन्न—भिन्न प्रकार के प्रयास कर रही है। किसानों को भी उचित व्यवस्था के लिए नलकूप अथवा पानी का संग्रह हेतु तालाब इत्यादि बनाकर अपनें खेत में पानी की व्यवस्था का प्रबंध करना चाहिए। पानी की उपयोग दक्षता बढ़ानें के लिए बूंद—बूंद सिंचन एवं फुव्वारे (स्प्रिंकलर) विधि से सिंचाई का प्रबंध करना चाहिए। भारत सरकार नें (मोर क्राप्स पर ड्राप) का नारा दिया है। उचित मात्रा में तथा उचित समय पर पानी की उपलब्धता से फसल की पैदावार बढ़ती है और लागत भी कम आती है।

4. मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ायें :— बुवाई से पहले कम्पोस्ट खाद की अनुमोदित मात्रा डाले हमारे देश की मृदाओं में अक्सर देखा गया है कि कार्बन की मात्रा 1 प्रतिशत से भी कम है जो कम उपज के लिए जिम्मेदार है। अतः उसकी पूर्ति करने के लिए कम्पोस्ट खाद का डालना अति आवश्यक है। इससे जल उपयोग दक्षता एवं पोषक तत्व दक्षता बढ़ती है तथा फसल पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

5. खेती के यांत्रिकरणः— खेती में यांत्रिकरण करनें से लागत का खर्च कम हो जाता है तथा उत्पादन बढ़ जाता है। आज आवश्यकतानुसार हर प्रकार के बड़े— छोटे यंत्र विभिन्न फर्मों के उपलब्ध है। खेत की जुताई तथा बुवाई से कटाई तक, हर स्तर पर यांत्रिकरण लागत को कम करनें में विशेष भूमिका निभाता है।

6. लेसर लेवलिंग तकनीकी का प्रयोगः— हमारे खेत खलियानों की धरती समतलीय नहीं है जिसके कारण सस्य संबंधित प्रबंध कार्यों में अनेंक कठिनाई आती है। लेसर लेवलर यंत्र द्वारा खेतों को समतल किया जा सकता है। खेत के समतल होने पर पानी, खाद इत्यादि लागतों में विशेष कमी होती है। साथ ही साथ फसल भी भरपूर होती है।

7. अनुमोदित सस्य क्रियाः— स्वस्थ फसलों को उगानें के लिए अनुमोदित सस्य क्रियाओं का प्रयोग करें। स्वस्थ फसल एवं भरपूर पैदावार के लिए किसान भाइयों को चाहिए कि बुवाई से लेकर कटाई तक अनुमोदित सस्य पैकेज एवं प्रैक्टिस का प्रयोग करें। उदाहरण के लिए फसलों की बुवाई का उचित समय, फसलों के बोने की उचित विधि, उर्बरक प्रबन्धन, खरपतवार प्रबंधन, कीट प्रबंधन तथा सिंचाई प्रबंधन आदि।

9. खेती में विविधीकरण अपनानें की अवश्यकताः— वर्तमान समय में केवल फसल से जीवनयापन करना लाभकारी नहीं है। अतः समयानुसार अब खेती में विविधीकरण की अत्यन्त

आवश्यकता है। विविधीकरण से ना केवल किसानों के जोखिम कवर होते है अपित उनकी आय भी बढ़ती है। साथ ही साथ विविधीकरण करने से फसलों की पैदावार भी बढ़ती है। उदाहरणार्थ–

- **शुद्ध एवं संकर बीज उत्पादन**– अच्छे एवं शुद्ध बीज की आवश्यकता बाजार में हमेशा रहती है। अनुसंधान केन्द्रो से सम्पर्क करके शुद्ध एवं संकर बीज उत्पादन की विधि अपनाकर अपनीं आय बढ़ा सकते हैं।
- **मधुमक्खी पालन**– खेती में फसल उत्पादन के साथ मधुमक्खी पालन करना सरल है तथा कम लागत के साथ शुरू किया जा सकता है। फसल खेतों में मधुमक्खियों के डब्बे रखे जा सकते है इससे मधु उत्पादन से किसान की आय बढ़ेगी तथा साथ ही साथ मक्खियों द्वारा अनेक फसलों में परागण की क्रिया में तेजी आनें से फसलों की पैदावार बढ़ाने में भी मदद मिलेगी।
- **मशरूम की खेती**– गेहूं एवं धान आदि से प्राप्त भूसे पर मशरूम की खेती आय का एक नया स्रोत है सामान्य तापमान एवं आर्द्र मौसम में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए कई उन्नत किस्में उपलब्ध है जो किसानों को वर्तमान समय खेती के साथ अतिरिक्त लाभ अर्जित करनें में सहायक है।
- **बागवानी एवं सब्जी की खेती**– खेती में फलों एवं सब्जियों का अत्यन्त महत्व है। अच्छे फलों एवं सब्जियों के उत्पादन से आय काफी वृद्धि होती है। इसके साथ साथ पुष्पों की खेती आजकल बड़े पैमाने में मुद्रा इकट्ठा करने में कारगर साबित हो रही है। पुष्पों की देश के प्रमुख बाजारों में मांग लगातार बढ़ती जा रही है। बागवानी को खेती के विविधीकरण में शामिल करके किसान एक अतिरिक्त आय स्रोत अपने जीवन में जोड़ सकते हैं। फलों एवं सब्जियों से मूल्यवर्धित उत्पाद जैसे अचार, मुरब्बा आदि से, जिनकी बाजारों में काफी मांग का इस्तेमाल अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए कर सकते हैं।
- **संरक्षित खेती**– आज के परिवेश में संरक्षित खेती अधिक लाभ प्राप्त करनें के लिए महत्वपूर्ण स्रोत है। विधि में ग्रीननेट हाउस या पाली हाउस का निर्माण कर नियंत्रित वातावरण में हर मौसम की फल एवं सब्जियों की अच्छी पैदावार ली जा सकती है। इससे थोड़े से क्षेत्र में फसलों को उगाकर अधिक उत्पादन किया जा सकता है क्योंकि इसमें वातावरण के कारक रोशनी, तापमान तथा आर्द्रता को नियंत्रित किया जाता है। इससे बेमौसमी सब्जियों को उगाकर बाजार में उच्च दामों पर बिक्रिय करके लाभ कमाया जा सकता है।
- **जैविक खेती**– आर्गेनिक खेती के उत्पादों की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बदलते परिवेश में कीटनाशकों के फसलों में इस्तेमाल के कारण स्वास्थ संबंधी समस्याओं के चलते

जैविक उत्पाद की बाजार में भारी मांग तथा दाम भी अच्छे मिलते है। अतः किसान जैविक रूप से गेहूं, चावल,फल एवं सब्जियां उगाकर अच्छा लाभ कमा सकते हैं।

- **दुग्ध उत्पादन**— खेती में फसलों के साथ दुधारू पशुओं का समावेश अत्यन्त आवश्यक है। दुधारू पशुओं के दुग्ध एवं दुग्ध संबंधी उत्पाद से किसानों की आय बढ़ती है। साथ ही साथ दुधारू पशुओं से प्राप्त गोबर, मलमूत्र से कम्पोस्ट बनाकर फसलों की पैदावार बढ़ायी जा सकती है। इसके साथ आजकल उन्नत नश्ल के पशुओं के सीमेन की बिक्री भी एक नये आय के स्रोत के रूप में उभर रहा है तथा उन्नत नश्ल के दुधारु पशुओं से अच्छा दुग्ध उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- **मुर्गी पालन व्यवसाय**— खेती के साथ मुर्गी पालन कम श्रम एवं कम समय में अच्छी आय देनें वाला व्यवसाय है मुर्गी की कई नश्लों को किसान भाई फसलों से प्राप्त विभिन्न उप—उत्पादों की सहायता से कम व्यय से अच्छा लाभ प्राप्त कर सकतें है।
- **मछली पालन व्यवसाय**— खेती में विविधीकरण के दौर में मछली पालन एक प्रमुख स्तम्भ है। वर्ष भर मछली उत्पादन से ना केवल भोजन की आवश्यकता पूरी होती है बल्कि बाजार में मछली को बेच कर अतिरिक्त आय अर्जित की जा सकती है जहाँ अच्छी बारिश होती है वहां धान के खेतों में भी मछली पालन किया जाता है।
- **सूअर पालन व्यवसाय**— खेती में विभिन्न प्रकार के उत्पाद प्राप्त होते हैं। सूअर पालन के लिए खेती से प्राप्त विभिन्न सस्ते उप—उत्पादों का इस्तेमाल करके अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है।
- **बतख पालन**— बदलते परिवेश में खेती में बतख पालन का समायोजन एक लाभकारी उपक्रम है। ये खेतों में तथा तालाबों में घूम कर वहाँ उपलब्ध कीड़े—मकोड़े खाकर बिना किसी बहुत लागत के अण्डे एवं मांस पैदा कर काफी अतिरिक्त आय उत्पन्न करने में मददगार होती है।

कृषकों को उक्त सभी व्यवसाय,फसल उत्पादन की सस्य क्रियायों से जुड़ी जानकारियों, रोग, कीट आदि का पूर्ण रूप से ज्ञान ना होने से उत्पादन में कमी आती है। अतः किसान भाइयों को उक्त सभी की पूर्ण जानकारी हेतु नजदीकी कृषि विश्वविद्यालय, कृशि संस्थान, जिले में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विभाग, पशु पालन, उद्यान विभाग, मत्स्य विभाग एवं अन्य कृशि संबन्धी विभाग से सम्पर्क कर सकते हैं। इन संस्थाओं से पूर्ण तकनीकी ज्ञान तथा विभिन्न योजनाओं का लाभ प्राप्त कर आय को दोगुना करने के लिए किसान भाई खेती में समन्वित कृषि प्रणाली के विभिन्न आयामों को शामिल करके ना केवल अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर सकतें हैं बल्कि खेती में आने वाली लागत को भी कम कर सकतें हैं।

घृतकुमारी (एलोवेरा) के मानव जीवन में लाभकारी गुण

रोहित कुमार', डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, डॉ. अश्वनी कुमार[1,] डॉ. अमित कुमार मिश्र एवं रावेन्द्र कुमार अग्निहोत्री

शोध छात्र, कृषि विज्ञान संकाय, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

कृषि विज्ञान संकाय, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

[1]उ.प्र. कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ, उ.प्र.

घृत कुमारी एलोवेरा जिसे हम "ग्वारपाठा" के नाम से भी जानते हैं , घृतकुमारी एक प्रकार का औषधीय पौधा है जिसकी उत्पत्ति "उत्तरी अफ्रीका" में मानी जाती है। इसकी विभिन्न प्रजातियाँ विश्व के विभिन्न–विभिन्न स्थानों पर स्वाभाविक रूप से पाई जाती है। इसका उपयोग औषधि पौधे के रू‪ में भी किया जाता है। घृतकुमारी के जूस का उपयोग पीने के लिए तथा सौंदर्य प्रसाधन, त्वचा को चमकदार रखने के लिए प्रयोग किया जाता है। घृतकुमारी को "सुपरफूड" भी कहा जाता है। "एलो" अरबी शब्द "आलो" से लिया गया शब्द है। जिसका मतलब "चमकदार कड़वा पदार्थ" होता है तथा "वेरा" शब्द का अर्थ "सत्य" से है। एलोवेरा एक औषधि पौधा होने के साथ–साथ एक इंडोर पौधा भी है। इसको हम अपने घरों में छायादार जगह पर भी आसानी से लगा सकते हैं।

घृतकुमारी एक प्राकृतिक औषधि वरदानः

घृतकुमारी कुछ समय पहले तक रहस्यमयी पौधों की तरह थी, परंतु पिछले कुछ वर्षों से इसकी उपयोगिता तथा लोकप्रियता में इजाफा हुआ है। भारत के साथ अन्य सभी देशों में इसको "एलोवेरा" के नाम से भी जाना जाता है घृतकुमारी का पौधा देखने में गहरे हरे रंग का होता है इसका उपयोग "एलोपैथी औषधि" एवं" जड़ी बूटियों" में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। एलोवेरा एक गहरा हरे रंग का रसीला पौधा होता है। इसकी पत्तियां मांसल तथा रसयुक्त मांसल होती हैं इसका उपयोग लीवर, पेट के इलाज के लिए भी किया जाता है तथा इसको हम "कुष्ठरोगी" के इलाज के लिए भी कर सकते हैं। मिस्र में एलोवेरा को "अमरता प्रदान करने वाला पौधा" भी कहते हैं घृतकुमारी बहुत ही प्राचीन जड़ी–बूटी है। घृतकुमारी का मानव जीवन में बरदान साबित हो चुका है। जिसका मानव जीवन से गहरा संबंध है, जो निम्न है–

महिलाओं के दिनचर्या में लाभदायकः

घृतकुमारी पौधे का उपयोग महिलाओं के मासिक चक्र को नियंत्रित करने में भी किया जाता है इसलिए इसको संस्कृत भाषा में इसे "कुमारी" भी कहा जाता है । एलोवेरा जैल का उपयोग सौंदय प्रसारण में सबसे ज्यादा किया जाता है। इसके जैल को चेहरे पर लगाने से चेहरे का रंग साफ और चमकदार हो जाता है तथा इसका उपयोग शरीर में नई कोशिकाओं को बढ़ाने में भी करते हैं। इसका उपयोग एलर्जी, जलेनिशान, इन्फेक्शन आदि त्वचा संबंधी विकारों को ठीक करने के लिए भी इसका अत्याधिक उपयोग किया जाता है । मनुष्य के चेहरे पर मुहांसों का निकलना एक आम समस्या है जिस व्यक्ति के वसामयी ग्रंथियां अधिक सक्रिय हो जाती हैं उनके चेहरे पर मुंहासे निकलने लगते हैं इनके निवारण के लिए हम दिन में दो से तीन बार घृतकुमारी का जेल लगाएं, तो हमें जल्द से जल्द मुहांसों से छुटकारा मिल जाएगा । चेहरे के लिए घृतकुमारी किसी वरदान से कम नहीं है।

बालो के लिए लाभदायक:

घृतकुमारी जैल का उपयोग सर के बालों को काले व घने बनाए रखने के लिए उपयोग में करते हैं इसको लगाने से बालों में रूसी जड़ से खत्म हो जाती है तथा इसके उपयोग से बालों का झड़ना भी नहीं होता है क्योंकि इसके जैल में मॉइस्चराइ अच्छा पाया जाता है इससे बालों का रंग काला, बाल सुनहरे रहते हैं। एलोवेरा एक प्रकार एंटीबैक्टीरियल (जीवाणु रोधी) पौधा होता है। इसके जैल में विभिन्न प्रकार के खनिज लवण व विटामिंस पाए जाते हैं जो कि कोशिकाओं के विकास में योगदान प्रदान करते हैं। घृतकुमारी एक प्रकार का शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट है। जो शरीर में उपस्थित बीमारियों के खिलाफ एक सुरक्षा कवच प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है।

मुख सम्बन्धी बीमारियों में लाभदायक:

घृतकुमारी के रस का नियमित रूप से सेवन करने से दांत मजबूत तथा स्वस्थ रहते हैं। इसके नियमित सेवन से मसूढ़ों से खून निकलना तथा मुंह का अल्सर जैसी गंभीर समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है।

कोलेस्ट्रॉल कम करने में सहायक:

घृतकुमारी के नियमित सेवन से शरीर में उपस्थित लाभकारी कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को बढ़ावा देता है तथा हानिकारक कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करने में सहायता प्रदान करता है इसके नियमित उपयोग से ना केवल शरीर तथा त्वचा के लिए भी अत्यधिक उपयोगी माना जाता है इसके सेवन के लिए इसको कच्चा खाएं तो सबसे अच्छा माना जाता है।

सौंदर्य प्रसाधन औषधि के रूप में:

इसके जेल में भरपूर मात्रा में पॉलिफिनॉल्स योगिक पाए जाते हैं। इसकी वजह से

घृतकुमारी हमारे बालों तथा त्वचा की गुणवत्ता में सुधार लाता है । घृतकुमारी त्वचा व बालों तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका उपयोग आंखों की बीमारियों के लिए भी गुणकारी औषधि माना जाता है अगर किसी कारणवश संक्रमण की वजह से आंखें लाल हो जाती हैं या कंजेक्टिवाइटिस की समस्या है तो ऐसे में आंखों में घृतकुमारी का रस लगाने से आंखों की जलन कम हो जाती है तथा आंखों का दर्द में आराम मिल जाता है।

पेट संबंधी बीमारीयों में लाभदायक:

घृतकुमारी का जूस हमारे पेट में कैंसर डायबिटीज तथा स्क्रीन के अलावा अन्य खतरनाक बीमारियों से हमें बचाता है। इसके नियमित सेवन से शरीर में उपस्थित फैट को तेजी से बर्न करता है। इसके अलावा शरीर में फैट जमने की प्रक्रिया भी कम होने लगती है। मोटापे से परेशान लोगों के लिए बहुत अधिक फायदेमंद है। इसका जूस हमारे शरीर के अंदर डिटॉक्स करता है इससे पेट फूलने जैसी समस्याओं में कमी आती है। इसके नियमित सेवन से कब्ज जैसी हानिकारक बीमारियों से जल्द छुटकारा मिल जाता है। इसमें उपस्थित एक रेचक हमारी पाचनक्रिया को उत्तेजित करता है जिससे हमारी पाचनक्रिया नियमित रूप से चलती रहती है इसके रस के सेवन से शरीर में ताजगी तथा ऊर्जा का स्तर बराबर बना रहता है जिन लोगों के शरीर में चर्बी की मात्रा अधिक होती है उनको इसका सेवन नियमित रूप से करना चाहिए इसके सेवन से शरीर का वजन कम हो जाता है। इसके रस में फाइबर की मात्रा अधिक होने से पाचन एवं मल त्याग की क्रिया में भी सुधार प्रदान करता है।

बदलते मौसम में लाभदायक:

अक्सर मौसम के बदलने से वायरल फीवर जैसी बीमारियां होती हैं इसके निश्चित तरीके से सेवन से हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। एलोवेरा की सेवन से कोशिकाओं में साइटो कींस तथा नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन बढ़ जाता है। इससे हमारा शरीर सभी बीमारियों से लड़ने के लिए बेहतर तरीके से तैयार हो जाता है।

बढ़ती उम्र में लाभदायक:

मनुष्य के बढ़ती उम्र के साथ हमारी हड्डियां कमजोर होने लगती है। हड्डियों की कमजोरी के कारण लोगों में जोड़ों का दर्द तथा गठिया रोग जैसे समस्या भी होने लगती है घृतकुमारी के नियमित सेवन से जोड़ों के दर्द में काफी फायदेमंद साबित होता है।

पीलिया में लाभदायक:

जिनको पीलिया की शिकायत रहती है उनके लिए एलोवेरा का जूस अत्याधिक फायदेमंद है। पीलिया से ग्रसित व्यक्ति रोजाना सुबह उठकर घृतकुमारी का जूस का सेवन करें, तो उसकी जल्द ही पीलिया जैसी खतरनाक बीमारियों से छुटकारा पाया जा सकता है।

घृतकुमारी एक ऐसा पौधा जो देखने में भले ही एक छोटा पौधा है लेकिन इसके गुण–गान जग जाहिर है। यह पोषक तत्व का खजाना है। शरीर के हर भाग के लिए इसके जूस में पोषक तत्व उपस्थित हैं यह हर तरह के रोगों के लिए गुणकारी है और किसी से भी अछूते नहीं है अगर इसके फायदे गिनने लगे तो कम पड़ जाएंगे। एड़ी से लेकर चोटी तक हर बीमारी में घृतकुमारी बहुत फायदेमंद है।

प्रयागराज, सहारनपुर, विविध

अवधनामा

लखनऊ, बुधवार, 20 मार्च 2019 6

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन

उत्तम बीज की पहचान व बीज गुणवत्ता नियंत्रण

सौरभ तोमर[1], अनुराग मलिक[2], हिमानी पूनिया[3], राजेश कुमार[4], एवं डॉ. कुलदीप सिंह[5]

[1]बागबानी विभाग, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

[2,4]बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, [3]जीव रसायन विभाग, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविधालय हिसार, हरियाणा

[5]सहायक संचालक कृषि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

सामान्य श्रेणी के बीज की बुआई करके फसल का अच्छा उत्पादन नहीं लिया जा सकता, चाहे फसल में कितनी भी सिंचाई की जाए, खाद, उवर्रक व पौध संरक्षण रसायनों का प्रयोग किया जाए। एक कहावत है कि जैसा बोओगे, वैसा काटोगें। किसी भी फसल से अधिक उत्पादन व गुणवत्तायुक्त उत्पाद के लिए उसका उन्नत शुद्ध बीज सर्वोपरि महत्व रखता है। इस एक ही कारक से उपज में काफी वृद्धि की जा सकती है। उत्तम गुणों से युक्त शुद्ध बीज जिसमें नमी और अंकुरण क्षमता उपयुक्त स्तर की होती है, के उपयोग से परम्परागत बीजों की तुलना में 8 से 25 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इसलिए बीज गुणवत्ता नियंत्रण सम्पूर्ण बीज कार्यक्रम की धुरी है। अधिक उत्पादन क्षमता, रोग और कीट प्रतिरोधी शक्ति, वातावरण की प्रतिकूलताओं की सहन शक्ति, दक्षता और गुणवत्ता आदि उन्नत बीजों की विशेषताएं होती है। सही अर्थों में उत्तम और शुद्ध बीज की परिभाषा यही है कि बीज की भौतिक तथा अनुवांशिक शुद्धता तथा अंकुरण क्षमता उचित मापदंड या मानक स्तर की हो, जो प्रत्येक फसल के लिए निर्धारित है।

उत्तम बीज की विशेषताएं

1. **बीज की भौतिक शुद्धता** – बीजों में किसी दूसरी फसल या खरपतवारों के बीजों का मिश्रण नहीं होना चाहिए। उनमें कंकड़, पत्थर, धूल, मिट्टी, भूसा, डंठल आदि भी नहीं होने चाहिए। विभिन्न फसलों के बीज जो रंग व आकार प्रकार में समान होते है, उनका आपस में मिश्रण नहीं होता है। खरपतवार के बीजों के मिश्रण से विशेष तौर पर बीज की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
2. **बीज की अंकुरण क्षमता** – बीज का मूल्यांकन उसकी अंकुरण क्षमता पर निर्भर करता है। इसी के आधार पर बुवाई के लिए बीज की मात्राा निर्धारित की जाती है। प्रत्येक फसल के लिए अंकुरण प्रतिशत का निम्न स्तर बीज परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा निश्चित किया जाता है और हमेशा उससे अधिक अंकुरण प्रतिशत वाला बीज ही बुवाई के काम में लेना चाहिए।

3. **बीज की जीवन क्षमता** – बीज के भ्रूण को क्षति पहुंचाने पर उसकी जीवन क्षमता नष्ट हो जाती है। बीज को कीटों द्वारा नुकसान, अधिक नमी व ताप पर भंडारण या अन्य भंडारण दोषों से उसकी जीवन क्षमता समाप्त हो जाती है। इसके साथ–साथ बीज की परिपक्वता व आयु का ज्ञात होना आवश्यक है। सामान्यतः परिपक्व बीज चमकीला, साफ तथा भरा हुआ होता हैं और अपरिपक्व बीज सिकुड़े हुए, छोटे तथा बदरंग होते हैं। पुराने बीजों में भी नये बीजों की अपेक्षा कम चमक होती है। बीज पुराना होने अथवा परिपक्वता में कमी होने के कारण उसकी अंकुरण व जीवन क्षमता कम हो जाती है।

4. **बीज की सुडौलता, आकार, रंग व आकृति में समानता** – बीज सुडौल तथा किसी भी प्रकार से क्षतिग्रस्त नहीं होना चाहिए। बीजों का टूट जाना काफी हानिकारक होता है क्योंकि मृदा जनित रोगों का ऐसे बीजों पर आसानी से आक्रमण हो जाता है। बीज रंग, आकृति तथा आकार में भी समान होना चाहिए। छोटे तथा सिकुड़े हुए बीजों से संचित खाद्य पदार्थ की कमी होने के कारण उनसे कमजोर पौधे विकसित होते है जिनसे कम उपज प्राप्त होती है। इसके विपरीत बड़े आकार के स्वस्थ बीजों से प्रायः स्वस्थ तथा मजबूत पौधे तैयार होते है, जो जलवायु की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी प्रकार पनप सकते है।

5. **बीजों का रोगाणु एवं कीटाणु रहित होना** – रोगाणुओं तथा कीटों से बीजों का मुक्त रहना निहायत जरूरी हैं बीज द्वारा फैलने वाले रोगों के रोगाणु बीजों पर आक्रमण कर उन्हें बुवाई के लिए बेकार कर देते हैं भंडारण काल में बहुत से कीट बीजों की जीवन शक्ति नष्ट कर देते है। ऐसे बीज बुवाई के लिए अयोग्य होते है। रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए बीजों को भौतिक अथवा रासायनिक विधि द्वारा उपचारित किया जाता है।

6. **बीज प्रस्तुति** – कुछ फसलों के बीज जैसे आलू, खीरा, टमाटर, बैंगन आदि पूरी तरह परिपक्व एवं अकुंरित होने के लिए सभी आवश्यक तथा अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करने पर भी अंकुरित नहीं हो पाते। ऐसे बीज बोने पर किसान खेती से बिल्कुल ही हाथ धो बैठता है। अतः ऐसे बीजों का चुनाव नहीं करना चाहिए जो प्रसुप्तावस्था में हो। अगर बीज प्रसुप्तावस्था में हो तो विभिन्न उपचारों (प्रकाश, तापमान, रसायन आदि) द्वारा प्रसुप्ति तोड़ लेनी चाहिए। अधिकांश फसलों के बीज कुछ समय तक भंडारण करने के पश्चात इस अवस्था से बाहर निकल जाते है।

बीज गुणवत्ता नियंत्रण

अ. **बीज स्त्रोत** – बीज उत्पादन हेतु प्रजनक या आधार बीज मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय या संस्थान से क्रय करना चाहिए जिससे बीज की उत्तम गुणवत्ता के साथ साथ उसकी वर्ग व वंशावली का भी ध्यान रहें। बुवाई पूर्व थैलों पर लगे लेबल व सील की भली भांति जांच कर बीज के वर्ग के सम्बन्ध में आश्वस्त होना आवश्यक है।

ब. **खेत का चयन** – बीज फसल हेतु ऐसे खेत का चुनाव करना चाहिए जिसमें स्वैच्छिक उगे पौधों की समस्या न हो तथा पिछले वर्ष वह फसल उस खेत में नहीं उगाई गई हो। यदि पिछली वर्ष खेत में रोगों व कीटों का अधिक प्रकोप हुआ हो तो भी ऐसे खेत का चुनाव न करें।

स. **पृथक्करण दूरी** – बीज फसल में पर–परागण, कटाई व गहाई में होने वाले मिश्रण तथ रोगों से बचाव हेतु निर्धारित पृथक्करण दूरी रख कर बीज की उपयुक्त गुणवत्ता रखी जा सकती है।

द. **फसल सुरक्षा** – बीज फसल को खरपतवारों, रोगों व कीटों से मुक्त रखने हेतु समय–समय पर निराई गुड़ाई व पौध संरक्षण रसायनों का छिड़काव करना चाहिए।

य. **अवांछनीय पौधों को निकालना** – फसल में पुष्पन से पूर्व अन्य किस्मों के पौधों, रोगी पौधों व खरपतवारों के पौधों को निकाल देना चाहिए।

र. **कटाई व गहाई** – बीज फसल की कटाई परिपक्व अवस्था पर ही करनी चाहिए। देरी से कटाई करने पर धूप, वर्षा बीज बिखरने व चटकने से बीजों की गुणवत्ता में कमी आती है। जल्दी कटाई करने पर अधिक नमी के कारण गहाई व सफाई के दौरान बीजों को नुकसान होता है। बीजों की गहाई के समय यह ध्यान रखा जाये कि बीज के अन्य फसल, किस्म व खरपतवारों के बीजों का मिश्रण न हो। गहाई के थ्रेसिंग, फलोर, थ्रेसिंग मशीन व बोरों को भली भांति साफ कर लेना चाहिए।

2. **बीज प्रसंस्करण के दौरान गुणवत्ता नियंत्रण**

अ. **बीज सुखाना** – बीज सुखाने के दौरान उस स्थान को पूरी तरह साफ कर लेना चाहिए। जिससे अन्य बीजों का मिश्रण न हो। बीज में अधिक नमी के कारण अंकुरण व ओज प्रभावित होता है। अतः उचित नमी तक बीज को सुखाना चाहिए।

ब. **बीज की सफाई व ग्रेडिंग** – बीजों की सफाई से पूर्व सीड क्लीनर व ग्रेडिंग यंत्रों की जांच कर यह सुनिश्चित कर लें कि यंत्रों में अन्य किस्मों व फसलों के बीज नहीं है। तथा ग्रेडिंग यंत्र सुचारू रूप से कार्यरत है।

स. **बोरा बन्दी व भण्डारण** – बीज भण्डारण हेतु काम में आने वाले थैलें या बोरियां साफ व नमी रोधी होनी चाहिए। जहां तक सम्भव हो बीज भण्डारण हेतु नये बोरों या थैलों का इस्तेमाल करें। बीजों का कम नमी व कम तापमान की स्थिति में भण्डारण करना चाहिए।

3. बीज विपणन के दौरान गुणवत्ता नियंत्रण

बीजों के वितरण व विपणन के दौरान क्षेत्र विशेष की जलवायु, सापेक्ष आर्द्रता, तापमान आदि बीजों की गुणवत्ता प्रभावित करती है। बीज के थैलों व बोरों पर बीज के बारे में सम्पूर्ण जानकारी अंकित होनी चाहिए, जिससे बीज की आयु व दशा का ज्ञान हो सके। बिना बिके बीज का समय समय पर गुणवत्ता परीक्षण करना चाहिये।

शकरकंद की नई किस्मों की उत्पादन तकनीकी

मिनाक्षी कुमारी, डी0पी0 सिंह एंव सौरभ तोमर

सब्जी विज्ञान विभाग, च0 शे0 आ0 कृषि एंव प्रो0 विश्वविद्यालय, कानपुर–208002

भारत में इसकी खेती उड़ीसा, उत्तर प्रदेश एवं बिहार में की जाती है। भारत में इसका औसत उत्पादन 8 टन प्रति हेक्टेयर है। इसकी मुलायम पत्तियों एवं तनों का उपयोग सब्जी बनाने में किया जाता है। इसकी खाने योग्य जड़े कंदीय, लम्बी होती है। जिसका छिलका मुलायम एवं रंग लाल, बैंगनी, भूरा एवं सफेद होता हैं। इसके गूदें का रंग सफेद, पीला, नारंगी एवं बैंगनी होता है। विश्व में सबसे अधिक उत्पादन चीन में किया जाता हैं एवं इसका सबसे ज्यादा प्रति व्यक्ति उपभोग 550 किग्रा. प्रति व्यक्ति प्रति वर्श पपुआन्यूग्रीनी में होता हैं। इसके लगभग 50 जीनस एवं 1000 प्रजातियाँ है। जिसमें से खाने के लिए केवल आइपोमिया वटाटा का प्रयोग किया जाता है। अधिकांश प्रजातियाँ जहरीली होती है।

पोषण मूल्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सब्जियों में सबसे अधिक पोषण मूल्य शंकरकंद का है। इसकी प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में ऊर्जा 360 किलो कैलोरी, कार्बोहाइड्रेट 20.1 ग्राम, प्रोटीन 1.6 ग्राम, विटामिन ए 7.9 माइक्रोग्राम, विटामिन सी 2.4 मिग्रा., कैल्शियम 300 मिग्रा., आयरन 0.6 मिग्रा., मैग्नीशियम 25.0 मिग्रा., फास्फोरस 471 मिग्रा. पोटैशियम 337 मिग्रा एवं सोडियम 55 मिग्रा. पाया जाता है। भारत देश में इसका सबसे अधिक उपयोग व्रत के दिन नाश्ते के लिए किया जाता है।

किस्में

कोयम्बटूर–1

इस किस्म की जड़े 120 दिन में तैयार हो जाती है। इसका उत्पादन 18–22 टन प्रति हे. होता है। कंद का रंग गुलाबी एवं गूदे का रंग सफेद होता है। यह किस्म विविल की सहनशील है।

बी.एल. भांकरकंद–6

कंद का रंग बैंगनी एवं गूदे का रंग पीला होता हैं कंद की लम्बाई 15–18 सेमी. एवं उत्पादन 18–22 टन प्रति हे. है।

श्री नन्दिनी

कंद का आकार फुजी फार्म एवं रंग हल्का क्रीमी होता है। गूदे का रंग सफेद एवं कंद तैयार होने में 100–105 दिन लगते हैं। इस किस्म का उत्पादन 20–25 टन प्रति हे. प्राप्त होता है।

श्री वर्धिनी

इसका कंद 100–105 दिन में तैयार होता है। उपज 20–25 टन प्रति हे. होता है। इस किस्में में कैरोटिन की मात्रा 1200 आई.क्यू. पायी जाती है।

कोयम्बटूर–2

कंद तैयार होने में 120 दिन लगते है एवं उत्पादन 20–25 टन प्रति हे. प्राप्त होता है।

कोयम्बरटूर–3

कंद 110–120 दिन में तैयार होता है, इस किस्म के कंद का रंग हल्का लाल एवं गूदे का रंग गहरा नारंगी होता हैं।

सम्राट

कंद का आकार फुजी फार्म, रंग हल्का गुलाबी एवं गूदा सफेद होता है। इस किस्म की उपज 18–24 टन प्रति हे. एवं किस्म विबिल के प्रति सहनशील है।

एच.–41

वीबिल की प्रतिरोधी किस्म है। इस किस्म की उपज प्रति हे. 32 टन हैं।

एच.–42

वीबिल की सहनशील किस्म है। इस किस्म की उपज 37 टन प्रति हे. होती है।

एच.–268

वीबिल की प्रतिरोधी किस्म है एवं कंद की उपज 20–25 टन प्रति हे. होती है।

नरेन्द्र भांकरकंद–10

कंद का रंग लाल, कंद तैयार होने में 120–130 दिन लगते हैं। उपज 21–22 टन प्रति हे. प्राप्त होती है।

नरेन्द्र सोबरन

कंद का रंग लाल, कंद तैयार होने में 100–110 दिन लगते हैं। उपज 20–24 टन प्रति हे. प्राप्त होती है।

श्री भद्रा

सबसे कम समय 90 दिन में कंद तैयार हो जाते हैं, उपज 20–30 टन प्रति हे. प्राप्त होती है।

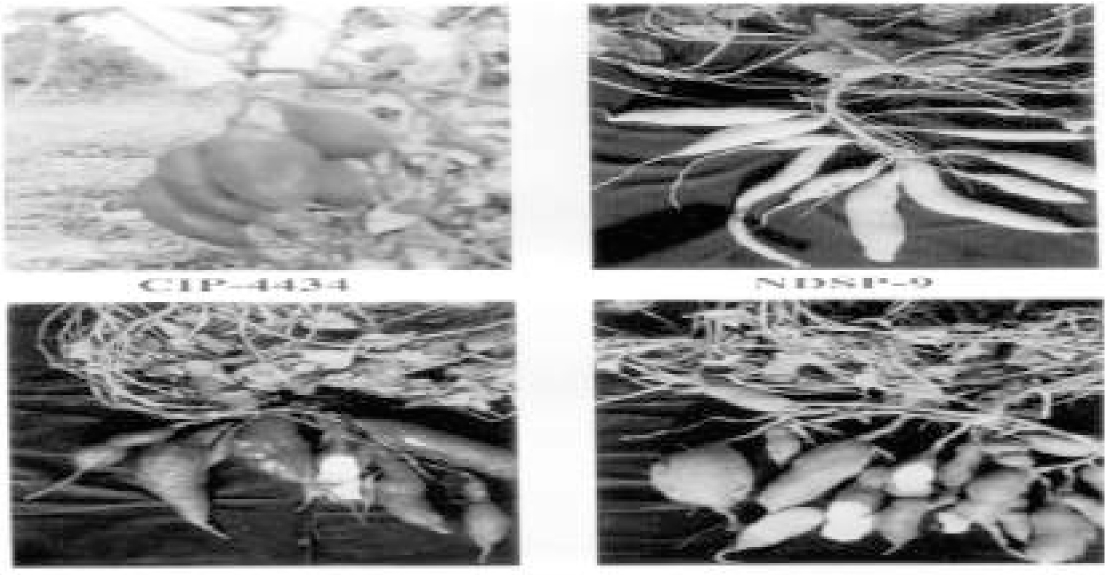

Fig. 4: High yielding Sweet potato genotypes

नरेन्द्र मालती

कंद का रंग सफेद एवं कंद तैयार होने में 120–130 दिन लगते हैं।

जलवायु

इसका पौधा पाला सहन नहीं कर सकता है। औसतन तापमान 24^{0} सें0 अच्छी धूप एवं गर्म रात इसके लिए उपयुक्त हैं।

मृदा

शकरकंद की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए जल निकास युक्त बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी.एच.–5 से 7.0 के मध्य हो उपयुक्ता रहती है। इसकी फसल एल्मिनियम विशाक्ता के प्रति संवेदनशील है। 6 सप्ताह के अन्दर जाइम का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

पौध प्रवर्धन

रोपण से तीन महीने पहले प्रथम पौध शाला में बीज कंद 100 किग्रा. (आकार 125–150 ग्राम) 100 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में रोपित किया जाता है। रोपण के 45 दिन बाद लताओं को 20–30 सेमी. लम्बाई में काटकर द्वितीय पौधशाला के 500 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में 60×20 सेमी. दूरी पर रोपित करते हैं। रोपण के लिए लताओं का ऊपरी भाग अच्छा रहता है। मुख्य प्रक्षेत्र में रोपण द्वितीय पौधशाला से

तैयार लताओं की कलम से करते हैं। मुख्य प्रक्षेत्र में रोपण की दूरी 45×15 सेमी. रखते हैं। रोपण के पहले कलम को 2 दिन तक छाया में रखते हैं।

उर्वरक

शकरकंद की 18 टन प्रति हे. उपज देने वाली किस्मों को 41 किग्रा. नत्रजन, 13 किग्रा. फास्फोरस, 68 किग्रा. पोटाश, 22 किग्रा. कैल्शियम एवं 18 किग्रा. मैग्नीशियम की आवश्यकता होती है। अधिक पैदावार देने वाली किस्मों को उसी अनुपात में तत्वों की मात्रा बढ़ा कर दी जाती हैं।

रोपण का समय

शकरकंद का रोपण जून–अगस्त के मध्य करते हैं। भारत के विभिन्न प्रदेशों में शोध के आधार पर इसका रोपण सितम्बर–अक्टूबर में करने से अधिक उपज प्राप्त होती है।

फसल प्रबन्धन

रोपण के उपरान्त एक सिंचाई तुरन्त करते हैं। इसके बाद नमी कम होने पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते हैं। इसकी फसल के लिए जल निकास का उचित प्रबन्ध करना आवश्यक है। रोपण के 20–25 दिन बाद निराई करना आवश्यक है। रोपण के 45 दिन बाद लता को मृदा से ऊपर उठा कर लता को गांठो से बनने वाली जड़ों को रोकना आवश्यक है जिससे मुख्य जड़ का विकास अच्छा हो सके। रोपण के 60 दिन बाद लता का 15 सेमी. अग्रभाग काट देते हैं। जब कंद खाने योग्य आकार के हो जाय तो इन्हे खुदाई हेतु उपयुक्त समझना चाहिए। किस्मों के अनुसार 90–150 दिन बाद शकरकंद की फसल खुदाई के लिए तैयार हो जाती है।

औषधीय भोजन हमारे स्वास्थ्य को ठीक करता है

डॉ भावना गुप्ता
सहायक प्राध्यापक
श्री तिरूपति बालाजी महाराज डिग्री कॉलेज, इटावा, उ.प्र.

खाद्य पदार्थ न केवल हमारा पेट भरते हैं साथ ही हमें ऊर्जा देते हैं बल्कि इनके औषधीय गुण हमारे शरीर को स्वस्थ रखते हैं तथा संक्रमण से बचाकर रखते हैं। कुछ ऐसी ही खाद्य पदार्थ जो हमें सिर से पैर तक के सारेरोग दूर रखने की क्षमता रखते हैं।

तुलसी (BASIL)

❖ एक ''अतुलनीय'' पौधा है जिससे 'औषधि की रानी' कहा जाता है यह एंटीबायोटिक, एन्ट्रीस्ट्रेस और एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं जो सर्दी, जुखाम, इन्फेक्शन व तनाव से दूर रखता है व इम्यूनिटी पावर बढ़ाता है कैंसर पेट और गुर्दे संबंधित रोग से दूर करता है।

❖ तुलसी के पत्तों को खाली पेट सुबह निगलने से शरीर का इम्यून सिस्टम मजबूत होता है इसमें Anti-inflammatory गुण भी पाए जाते हैं जो हमारी स्किन की समस्या को दूर करते हैं।

तुलसी को खाने का तरीका :— तुलसी का रस काढा या उबाल कर पी सकते हैं तुलसी में पारा धातु के तत्व पाए जाते हैं जो दांतों को नुकसान करते हैं इसलिए इन्हें चबाकर नहीं खाना चाहिए इन्हें निगलना या चूसना चाहिए।

नींबू (LEMON)

❖ नींबू में पॉलिफिनॉल्स तत्व पाए जाते हैं जो मोटापे को नियंत्रित करते हैं नींबू में सिट्रिक एसिड पाया जाता है जो किडनी स्टोन तोड़ने और पेशाब के रास्ते पथरी को बाहर निकालने पर मदद करता है।

❖ नींबू में मौजूद फ्लेवोनॉयड्स एंटीकैंसर के रूप में काम करता है इसके सेवन से अग्नाशय के कैंसर से बचा जा सकता है यह इम्यूनबूस्टर के रूप में कार्य करता है यह शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

- ❖ नींबू हृदय रोग पेट रोग आदि में भी फायदा करता है।
- ❖ मुहाँसों झुर्रियों तथा स्ट्रेचमार्क को कम करने के लिए नींबू का रस इंफेक्टेड एरिया पर लगाएं थोड़ी देर ,मसाज करने के बाद धोलें नियमित रूप से करने पर आपको आराम मिलेगा।

लहसुन (GARLIC)

- ❖ उनको प्राकृतिक एंटीबायोटिक भी कहा जाता है रोजाना सुबह 1 से 2 क्रश किए हुए लहसुन का सेवन करें इससे हृदय तथा गठिया रोग संबंधित रोगों में आराम मिलता है।
- ❖ मुंह के छालों में लहसुन का पेस्ट लगाएं आराम मिलेगा।
- ❖ त्वचा पर चकत्ते कीट काटने या त्वचा एलर्जी पर लहसुन का पेस्ट लगाएं आराम मिलेगा।
- ❖ लहसुन की कलियों को कुचल कर लौंग पानी या दूध में डाला जा सकता है और पाचन की सभी प्रकार के विकारों के लिए लिया जा सकता है।
- ❖ गर्भावस्था में लहसुन का प्रयोग सीमित मात्रा तथा डॉक्टर के परामर्श से करना चाहिए क्योंकि लहसुन ब्लड को पतला, पेट खराब तथा लो ब्लड प्रेशर की परेशानी उत्पन्न करता है।
- ❖ अगर एसिडिटी की शिकायत है तो कच्चे लहसुन के सेवन से परहेज करें।

शहद (HONEY)

- ❖ शहद में एंटीबैक्टीरियल एंटीमाइक्रोबियल्स और एंटीसेप्टिक गुण होते हैं यह कई बीमारियों को दूर करता है।
- ❖ नीम पर लगे छत्ते का शहद आंखों के लिए जामुन के पेड़ पर लगा शहद मधुमेह के लिए और सहजन के पेड़ पर लगा शहर हृदयाघात तथा रक्तचाप के लिए अच्छा होता है।
- ❖ शहद को घाव पर लगाने से घाव जल्दी भर जाता है और इसमें जीवाणुरोध गुण पाया जाता है।
- ❖ गुनगुना पानी शहद और नींबू मिला कर सुबह खाली पेट पीने से कब्ज की समस्या दूर होती है ।
- ❖ गाजर के रस में शहद मिलाकर पीने से आंखों की रोशनी बढ़ती है।
- ❖ शहद के सेवन से रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ती है यह हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता

को बढ़ाता है।

- ❖ ऑलिवऑयल के साथ शहद मिला कर लगाने से बाल लंबे घने और मुलायम हो जाते हैं।
- ❖ उच्च रक्तचाप की स्थिति में अजवायन की पत्ती का रस और शहद समान मात्रा में मिलाकर दिनभर में 3 बार लें।
- ❖ प्याज का रस और शहद मिला लें इस मिश्रण को सुबह–शाम लें यह दालचीनी पाउडर गर्म पानी के साथ शहद मिलाकर पीने से बढ़ते हुए कोलेस्ट्रॉल पर काबू पाया जा सकता है इस प्रक्रिया को 15 दिन तक दोहराएं।

अदरक (GINGER)

- ❖ अदरक में एंटीहिस्टामाइन गुण होते हैं जो एलर्जी को ठीक करने में मदद करते हैं ।
- ❖ अदरक के रस को शहद के साथ मिलाकर खाने से सर्दी जुकाम खांसी की समस्या खत्म होती है यह पाचन शक्ति को मजबूत करता है तथा गैस की समस्या में राहत मिलती है।
- ❖ अदरक में एंटीइन्फ्लेमेटरी और एनाल्जेसिक ऐसे गुण होते हैं जो दर्द निवारक का कार्य करते हैं अर्थराइटिस तथा घुटने की दर्द तथा मासिकधर्म के दर्द में आराम देती है।
- ❖ अदरक में anti-inflammatory गुण होता है जो सूजन दूर करता है
- ❖ माइग्रेन का दर्द होने पर अदरक का पेस्ट अपने माथे पर लगा सकते हैं इससे माइग्रेन की समस्या में राहत मिलती है।

दालचीनी (CINNAMON)

- ❖ गले की तकलीफों जैसी सर्दी खांसी में दालचीनी बहुत फायदा करती है।
- ❖ दालचीनी पाउडर शहद के साथ मिलाकर एक चुटकी मात्रा में खाने से जुकाम में फायदा होता है।
- ❖ दालचीनी पाउडर को कालीमिर्च के साथ लेने से कफ में राहत मिलती है।
- ❖ दालचीनी के तेल की कुछ बूंदें तिल के तेल में मिलाकर सिर पर मालिश करने से सिरदर्द में आराम मिलता है।

पिपली (LONG PIPPER)

- ❖ पिपली पाउडर बनाकर आंखों में लगाने से रोशनी तेज तथा आई फ्लू की समस्या से राहत मिलती है ।

- पिपली वात और कफ संबंधी बीमारियों को दूर करने में मदद करता है।

अकर्करा (PELLITORY)

- अर्जुन की छाल तथा अकरकरा का चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर दिन में दो बार सुबह और शाम आधा–आधा चम्मच खाने से घबराहट हृदय की धड़कन पीड़ा कंपन और कमजोरी में आराम मिलता है।

जीरा (CUMIN SEED)

- आयरन का अच्छा स्रोत है इनमें खून की कमी दूर होती है।
- जीरा में एंटीइन्फ्लेमेटरी और एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं जो ट्यूमर को बढ़ने से रोकते हैं।
- जीरा में फाइबर भरपूर मात्रा में होता है जीरा में मौजूद एंजाइम्स विटामिन और मिनरल्स त्वचा को स्वस्थ रखते हैं।

सौंफ (FUNNEL SEED)

- सौंफ को खाने से ओरल कैंसर का खतरा नहीं रहता साथ ही पाचन क्रिया भी अच्छी होती है
- सौंफ का पानी पीने से खून साफ रहता है और चेहरे पर चमक आती है।

हींग (ASAFOETIDA)

- दर्द निवारक और पित्तवर्धक होती है छाती और पेट दर्द में ही लाभदायक होती है
- नाभि के चारो और लेप करने से दर्द में राहत मिलती है

हल्दी (TURMERIC)

- हल्दी में एंटीसेप्टिक और एंटीइन्फ्लेमेटरी गुण पाए जाते हैं
- हल्दी के सेवन से ग्लूकोस का लेवल कम होता है तथा टाइप टू डायबिटीज का खतरा टल जाता है ।
- हल्दी कैंसर से बचाती है तथा खून साफ करती है।

बीजों का सुरक्षित भण्डारण

अनुराग मलिक[1], सौरभ तोमर[2], हिमानी पूनिया[3], राजेश कुमार[4] एवं डॉ. कुलदीप सिंह[5]

[1,4]बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, [3]जीव रसायन विभाग, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविधालय हिसार, हरियाणा

[2]बागबानी विभाग, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

[5]सहायक संचालक कृषि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

बीज प्रसंस्करण के बाद बीज के विक्रय या बुआई तक बीजों का उचित भण्डारण करना आवश्यक है। उत्तम किस्म के बीजों के उत्पादन करने से ही समस्याओं का अंत नहीं होगा। इनका संसाधन और भण्डारण भी आधुनिक तौर तरीकों से होना चाहिए। ताकि इनमें कोई विकार न पनप सके। देश में बीजों की एक बड़ी मात्रा भण्डारण के दौरान प्रतिकूल परिस्थितियों और बुरी पैकिंग के कारण बर्बाद हो जाती है। असुरक्षित भडारण में बीजों की भौतिक एवं कार्यिकी में परिवर्तन होने से अंकुरण क्षमता में कमी आ जाती है। भौतिक परिवर्तन में रंग, आकार, सरंचना, यांत्रिक सामर्थ्य, बीज नमी व शुष्क पदार्थ में हानि होती है, जिसका प्रभाव गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य पर पड़ता हैं। बीजों की गुणवत्ता, अंकुरण क्षमता व ओज बनाए रखने हेतु बीजों का कम तापमान, व कम नमी की अवस्था पर भण्डारण किया जाता है। कभी कभी भण्डारण के दौरान अधिक नमी होने से बीजों में कीट व फफूंद का प्रकोप बढ़ जाता है। श्वसन सम्बन्धी परिवर्तन में उष्मा, जल तथा कार्बनडाइआक्साइड की अधिकता बीजों को जल्दी खराब कर देती है। अतः बीज भण्डारण व्यवस्था पर पर्याप्त ध्यान देना जरूरी है।

बीज भण्डारण को प्रभावित करने वाले कारक

1. **बीज का प्रकार** – विभिन्न फसलों के बीजो में बीजावरण, बनावट, आकार, रासयानिक संघटन आदि में भिन्नता पाई जाती है। स्टार्चयुक्त बीज 11–13 प्रतिशत नमी पर भण्डारित किये जा सकते है। जबकि तेलयुक्त बीजों को 8–11 प्रतिशत नमी की अवस्था पर भण्डारित किया जा सकता है। कठोर बीजों में नमी का स्तर नीचे लाने पर उनकी जीवन क्षमता कम हो जाती है और उन्हें लम्बी अवधि तक भण्डारित नहीं किया जा सकता। कुछ फसलों के बीज जैसे मूंगफली, सोयाबीन, प्याज आदि अल्पायु होते है जबकि धान्य फसलों के बीजों की आयु अधिक होती है।

2. **बीज में नमी** – भण्डारण में बीज की गुणवत्ता को नमी काफी हद तक प्रभावित करती है। आर्द्रता में 1 प्रतिशत की कमी करने पर बीजों की भण्डारण क्षमता दुगुनी हो जाती है। कटाई व गहाई के समय बीजों में नमी की मात्रा अधिक होती है। अतः भण्डारण के दौरान नमी को सुरक्षित मात्रा तक लाया जाता है। विभिन्न फसलों में भण्डारण के दौरान नमी प्रतिशत निम्न प्रकार होनी चाहिए –

धान्य फसलें	:	10–12 प्रतिशत
कपास व सोयाबीन	:	10 प्रतिशत
दलहनी फसलें	:	9 प्रतिशत
तिलहनी फसलें	:	8–9 प्रतिशत
सब्जियों के बीज	:	8 प्रतिशत

खुले भण्डारण में एक वर्ष तक भण्डारण के लिए बीजों में नमी की मात्रा 11–13 प्रतिशत और अधिक समय तक भण्डारण हेतु 8–10 प्रतिशत एवं वायुरोधी भण्डारण में खुले भण्डारण की तुलना में 2–3 प्रतिशत कम नमी होनी चाहिए।

3. **बीज परिपक्वता** – क्रियात्मक रूप से परिपक्व बीज की गुणवत्ता उत्तम होती है अतः फसल क्रियात्मक रूप से परिपक्व होते ही कटाई कर बीजों को उचित नमी तक सुखाकर भण्डारित कर लिया जाना चाहिए। क्रियात्मक परिपक्वता से पूर्व व बाद में कटाई करने पर बीजों की गुणवत्ता में भण्डारण के दौरान भी कमी आती है।

4. **बीज गुणवत्ता** –क्षतिग्रस्त बीजों का भण्डारण के दौरान गुणवत्ता में ह्रास होता हैं तथा क्षतिग्रस्त बीजों पर जीवाणुओं व कीटों का प्रकोप जल्दी होता है। अतः स्वस्थ्य गुणवतायुक्त बीजों का ही भण्डारण किया जाना चाहिए।

5. **तापमान**– भण्डारण में तापमान में वृद्धि होने के साथ ही ही बीजों की श्वसन दर बढ़ जाती है, जिससे बीज ओज व अंकुरण क्षमता में कमी आती है। भण्डारण में 5 डिग्री सै. तापमान में कमी करने पर बीजों की भण्डारण क्षमता में दुगुनी वृद्धि हो जाती है। शुष्क व कम तापमान वाली परिस्थितियाँ भण्डारण के लिए उपयुक्त रहती है। तापमान (सै.) व सापेक्ष आर्द्रता (:) का योग 100 आर्दश भण्डारण अवस्था होती है।

6. **सापेक्ष आर्द्रता** – वातावरण में सापेक्ष आर्द्रता के अनुसार बीजों की नमी में परिवर्तन होता रहता है। क्योंकि परिपक्व बीज वातावरण की नमी सोखते हैं। वातावरण में 80 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर बीजों की जीवन क्षमता समाप्त हो जाती है। अतः भण्डारण गृहों या

गोदामों में सापेक्ष आर्द्रता अधिक नहीं होनी चाहिए।

7. **ऑक्सीजन** – भण्डारण गृहों या बीज गोदामों में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ने के साथ ही बीजों की श्वसन दर बढ़ जाती है। इसलिए वायुरोधी भण्डारण गृहों की गुणवत्ता अच्छी रहती है।

8. **जीवाणुओं तथा कीटो की सक्रियता** – जीवाणु व कीट बीज को क्षति पहंचाते है। इनकी सक्रियता सापेक्ष आर्द्रता, बीज की नमी व तापमान पर निर्भर करती है।

बीज भण्डारण में महत्वपूर्ण बातें

1. बीज भण्डारण के लिए गोदाम जमीन से एक मीटर ऊंचा बनाना चाहिए ताकि इसमें चूहें व अन्य प्रणी आसानी से प्रवेश न कर सके तथा वर्षा का पानी अन्दर ना जा सके।
2. गोदाम वायुरोधी बनाना चाहिए। वायुरोधी भण्डारण में परिवेश व वातावरण के बीच वायु विनियम न होने पर भण्डारण गृह की आक्सीजन बीजों की श्वसन क्रिया में खत्म हो जाती है और वायु में कार्बनडाइआक्साईड की मात्रा बढ़ने पर बीजों की श्वसन क्रिया खत्म हो जाती है जिससे बीज की गुणवत्ता अधिक समय तक बनी रहती है।
3. गोदाम में खिड़की व दरवाजें अधिक संख्या में नहीं होने चाहिए। क्योंकि दरारों में कीटों का वास होता है।
4. भण्डारण से पूर्व भण्डार गृह की अच्छी तरह से सफाई कर लेनी चाहिए। इसके बाद गोदाम को मैलाथियान 50 ई.सी. 1 भाग को 100 भाग पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। ताकि पिछली भण्डारित फसल के कीटाणु नष्ट हो जाएं।
5. भण्डारण में हमेशा नई बोरियों का प्रयोग करें तथा बोरियों को दीवार से 1 से 2 फुट दूर रखें ताकि फर्श की नमी बोरियों में ना जा सके। अगर बोरियाँ पुरानी हो तो उन्हें उलट–पुलट कर धूप में सुखा लें। बोरियों को उबलते पानी में 15 से 20 मिनट तक डूबोकर रखने से सारे कीट मर जाते है। बोरियों को 0.1 प्रतिशत मैलाथियान 50 ई.सी (एक भाग दवाई 500 भाग पानी) के घोल में 10–15 मिनट तक भिगोएं एवं छाया में सुखा लें।
6. बीज को सुखाने के बाद 1–2 दिन ठण्डा करके ही भण्डारित करें ।
7. भण्डारण से पहले बीज को अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए। क्योंकि टूटे हुए दाने नमी के प्रति संवेदनशील होते है। टूटे दानों में नमी की मात्रा के कारण भण्डारण के दौरान पाए जाने वाले कीट व फफूंद सक्रिए हो जाते है। इनकी अकुंरण क्षमता व ओज घटने लगता है।

8. सफाई के पश्चात बीज को छांव में सुखाकर उसकी नमी को 8 से 10 प्रतिशत तक लाये ताकि भण्डारण में बीजों की श्वसन दर कम रहे तथा बीजों की अंकुरण क्षमता अधिक समय तक बनी रहे।

9. भण्डारित बीज में कीड़ों व सूक्ष्म जीवों के अलावा सर्वाधिक हानि चूहों से होती है। इसके नियंत्रण के लिए एक कि.ग्रा. बाजरा, ज्वार या गेहूं का दलिया लेकर उस पर 20 ग्राम सरसों का तेल मसल लें और उसमें 25 ग्राम जिंक फॉसफाइड किसी लकड़ी की सहायता से मिला दें। इस बेट में से एक चम्मच भर दाने (10 ग्राम) प्रति बिल प्रयोग करें।

10. भण्डार गृहों में कीड़ा लगने पर एल्युमिनियम फॉस्फाइड की एक गोली (3 ग्राम) एक टन बीज या 7–10 गोलियां 1000 घनफुट (28 घनमीटर) जगह के हिसाब से प्रधुम्न करके कीड़ों को नष्ट करें।

11. बीज भण्डारण क्षमता बढ़ाने के लिए किसान भाई नीम की पत्तियों, हींग का धुआं व मिर्च के पाउडर का प्रयोग भी कर सकते है। किसान भाई धातु की टंकी का प्रयोग करें ताकि इनमें नमी, चूहे तथा कीडे हानि न पहुंचा सकें।

सबको मिलकर कोरोना से लड़ना होगा : केएन सिंह

प्रयागराज। प्रभात

सोसाइटी आफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट प्रयागराज एवं सोसाइटी फॉर एग्रीकल्चर एंड साइंसेस फिरोजाबाद के संयुक्त तत्वाधान में शुक्रवार को नेशनल वेबीनार ऑन चैलेंज इज एंड स्ट्रैट जिज फॉर एग्रीकल्चर एंड इन वन सर्विसेज ड्यूरिंग कोविड-19 इन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इस कार्यक्रम में प्रोफेसर के एन सिंह कुलपति उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज उत्तर प्रदेश ने देते हुए बताया कि हम लोग कोविड- 19 जैसी बीमारी से जूझ रहे है जिससे हमारी अर्थव्यवस्था को काफी हानि हो रही है हम सबको मिलकर इस समस्या का समाधान करना है जिससे सब कुछ पुनः ठीक हो सके। इस वेबीनार के दूसरे वक्ता प्रोफेसर ए आर सिद्दीकी अध्यक्ष भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज ने बताया कि मांगों के क्रियाकलाप के तरीकों पर उनके भौगोलिक वातावरण का बहुत महत्वपूर्ण असर होता है पर्यावरण के प्रभाव कृषि व स्वास्थ्य का आपस में घनिष्ठ संबंध है यदि पर्यावरण बेहतर है तो कार्य करने की रफ्तार बढ़ जाती है और स्वास्थ्य बेहतर होता है इस वेबीनार के तीसरे वक्ता डॉ पवन कुमार झा ने कोविद नाइनटीन के समय पर्यावरण स्वास्थ्य व उसके बाद के होने वाले परिवर्तनों पर चर्चा करते हुए कहा कि को विड्डान के दौरान मानवीय हस्तक्षेप कम होने से पर्यावरण स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है कोविड-19 से जब तक पूरी सुरक्षा हम सबकी नहीं हो जाती अर्थात इससे बचाव के पूरे तौर तरीके या दवा का सही जानकारी नहीं मिल जाती फिर भी हमें अब इसके साथ ही पूरी सावधानी के साथ खुद को सुरक्षित रखते हुए चलना होगा।

फसलों की उपज बढ़ाने और जल की बचत के लिए टपक (ड्रिप) सिंचाई

[1]डा0 धर्मेन्द्र कुमार गौतम, [2]डा0 अनिल कुमार, [2]डा0 आशुतोश कुमार सिंह, [2]डा0 पुष्पेन्द्र वर्ती, [2]डा0 विवेक कुमार सिंह, [3]अनूप कुमार एवं [4]डा0 ममता भारती

[1]उद्यान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ, (उ0प्र0)।

[2]उद्यान विभाग, सैम हिगिन बॉटम कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ0प्र0)।

[3]पादप रोग विज्ञान विभाग, सैम हिगिन बॉटम कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि0वि0, प्रयागराज, (उ0प्र0)।

[4]वरिष्ठ गन्ना विकास निरीक्षक, सम्भल (उ0प्र0)।

टपक सिंचाई :

टपक प्रणाली सिंचाई की उन्नत विधि है, जिसके प्रयोग से सिंचाई जल की पर्याप्त बचत की जा सकती है। टपक विधि की सिंचाई दक्षता लगभग 80 से 90 प्रतिशत होती है। यह विधि मृदा के प्रकार, खेत के ढाल, जल के स्त्रोत और किसान की दक्षता के अनुसार अधिकतर फसलों के लिए अपनाई जा सकती हैं। फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ इस विधि से उपज की उच्च गुणवत्ता, रसायन एवं उर्वरकों का दक्ष उपयोग, जल के विक्षालन एवं अप्रवाह में कमी, खरपतवारों में कमी और जल की बचत सुनिश्चित की जा सकती है। टपक तंत्र एक अधिक आवृति वाला ऐसा सिंचाई तंत्र है जिसमें जल को पौधों के मूलक्षेत्र के आस–पास दिया जाता है। ड्रिप सिंचाई के द्वारा पौधे को आवश्यकतानुसार जल दिया जा सकता है। ड्रिप सिंचाई के द्वारा 30 से 40 प्रतिशत तक उर्वरक की बचत, 70 प्रतिशत तक जल की बचत और उपज में 100 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त खरपरवारों में कमी, ऊर्जा की खपत में बचत और उत्पाद की गुणवत्ता में बढ़ोतरी भी होती है। इस विधि का उपयोग पूरे विश्व में तेजी से बढ़ रहा है। सीमित जल संसाधनों और प्रतिदिन बढ़ती हुई जल आवश्यकता और पर्यावरण की समस्या को कम करने के लिए टपक सिंचाई तकनीक निःसन्देह बहुत कारगर सिद्ध होगी। जिन क्षेत्रों में भूमि को समतल करना मंहगा और कठिन हो उन क्षेत्रों में व्यावसायिक फसलों को सफलतापूर्वक उगाने के लिए ड्रिप सिंचाई तकनीक सर्वाधिक उपयुक्त है।

तालिका 1: सतही सिंचाई विधि की तुलना में ड्रिप सिंचाई के मुख्य लाभ :

क्र. सं.	कारण	ड्रिप सिंचाई	सतही सिंचाई
1	जल का नियंत्रण	बिल्कुल सही और सरल ढंग से संभव।	सिंचाई के जल का बड़ा हिस्सा वाष्पन, रिसाव और जमीन में ज्यादा गहराई तक जाकर बर्बाद होता है।
2	उर्वरक उपयोग की दक्षता	निच्छालन और अपवाह न होने के कारण पोषक तत्व नष्ट नहीं होते हैं, इसलिए इनके उपयोग की दक्षता बढ़ जाती है।	निच्छालन और अपवाह न होने के कारण पोषक तत्व नष्ट नहीं होते हैं, इसलिए इनके उपयोग की दक्षत ा बढ़ जाती है।
3	खराब मृदाओं में उपयुक्तता	ड्रिप सिंचाई द्वारा मृदा में जल के वितरण को मृदा की प्रकार के अनुसार नियोजित किया जा सकता है। इसलिए ड्रिप सिंचाई सब प्रकार की मृदाओं के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।	इसमें प्रति सिंचाई ड्रिप से ज्यादा श्रम की जरूरत होती है।
4	भूक्षरण	मिट्टी की सतह का आंशिक और नियंत्रित हिस्सा ही गीला होता है, इससे भूक्षरण नहीं होता है।	खरपतवार अधिक होते हैं।
5	खारे जल का उपयोग	जल्दी जल्दी सिंचाई करने के कारण जड़ तंत्र में अधिक नमी रहती है और लवणों की सान्द्रता हानिकारक स्तर से कम रहती है।	लवणों का सान्द्रण जड़ तंत्र में बढ़ जाता है, जिससे जड़ों की वृद्धि रूक जाती है, इसलिए खारे जल का उपयोग नहीं कर पाते हैं।
6	खरपतवार की समस्या	मिट्टी का कम हिस्सा नम होता है, इसलिए खेत में खरपतवार भी कम होते हैं।	बीमारियों और कीड़े मकोड़ों के ह ोने की संभावना अधिक होती है।
7	जल के उपयोग की दक्षता	80 से 90 प्रतिशत तक	खराब मृदाओं में खराब मृदाओं में सतही विधि से सिंचाई करना संभव नहीं है।
8	श्रम की बचत	ड्रिप तंत्र को लगभग प्रतिदिन शुरू और बन्द करने के लिए श्रम की बहुत कम आवश्यकता होती है।	जल वितरण पर नियंत्रण कम होता है।
9	जल की बचत	70 प्रतिशत तक जल की बचत। सिंचाई का जल सतह पर बह कर और जमीन में मूलक्षेत्र से नीचे नहीं जाता है।	पोषक तत्व निच्छालन और बहाव में नष्ट हो जाते हैं, इसलिए उनके उपयोग की दक्षता निम्न होती है।
10	बीमारियों और कीड़े मकोड़ों की समस्या	पौधों के आसपास वायुमण्डल में नमी की सान्द्रता कम रहती है, इसलिए पौधों में बीमारियों और कीड़े मकोड़े लगने की संभावना कम रहती है।	जल की धारा ज्यादा बड़ी होती है, इसलिए भूक्षरण की अधिक संभावना होती है।
11	पैदावार में बढ़ोतरी	जल्दी जल्दी सिंचाई से मिट्टी में जल तनाव नहीं रहता है और पौधों की वृद्धि अधिक होती है, जिससे पैदावार 100 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।	जल के वितरण असमान एवं सिंचाइयों में अधिक अन्तराल से मृदा में उत्पन्न जल तनाव के कारण पैदावार में कमी होती है।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली :

पानी और पोषक तत्व उत्सर्जक से पौधों की जड़ क्षेत्र में से चलते हुए गुरुत्वाकर्षण और केशिका के संयुक्त बलों के माध्यम से मिट्टी में जाते हैं। इस प्रकार पौधों की नमी और पोषक तत्वों की कमी को तुरंत ही पुनः प्राप्त किया जा सकता है। यह सुनिश्चित करते हुए कि पौधे में पानी की कमी नहीं होगी, इस प्रकार गुणवत्ता, उसके इष्टतम विकास की क्षमता तथा उच्च पैदावार को बढ़ाता है।

टपक सिंचाई प्रणाली फसल को मुख्य् पंक्ति, उप पंक्ति तथा पार्श्व पंक्ति के तंत्र के उनकी लंबाईयों के अंतराल के साथ उत्सर्जन बिन्दु का उपयोग करके पानी वितरित करती है। प्रत्येक ड्रिपर/उत्सर्जक, मुहाना संयत, पानी व पोषक तत्वों तथा अन्यप वृद्धि के लिये आवश्यक पद्धार्थों की विधिपूर्वक नियंत्रित कर एक समान निर्धारित मात्रा, सीधे पौधे की जड़ों में आपूर्ति करता है।

मॉडल टपक सिंचाई प्रणाली का डिजाइन :

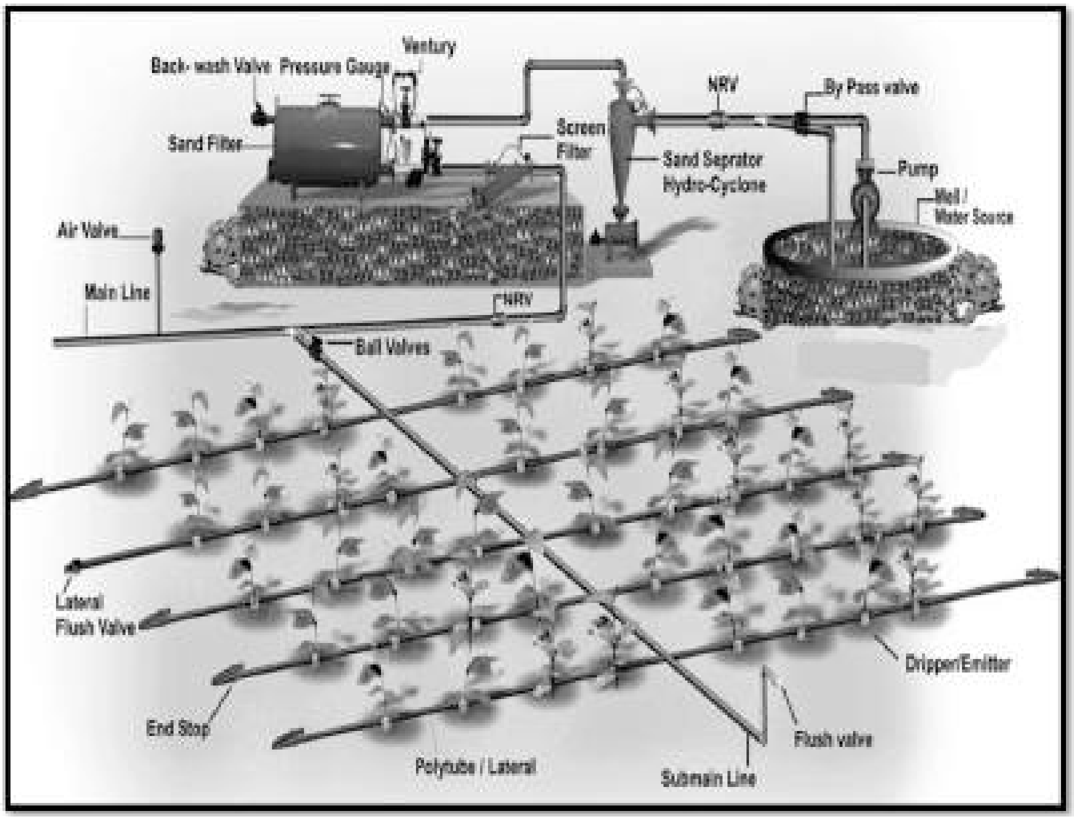

ड्रिप सिंचाई के साथ–साथ उर्वरीकरण (फर्टिगेशन) के लाभ :

उर्वरीकरण से जल और उर्वरक पौधों के मध्य न पहुंचकर सीधे उनकी जड़ों तक पहँचते हैं इसलिए पौधों के मध्य खरपतवार कम संख्या में उगते हैं। उर्वरीकरण उर्वरक देने की विश्वस्तरीय और सुरक्षित विधि है। इससे पौधों की जड़ों को हानि पहुँचने का भय नहीं रहता है। उर्वरीकरण द्वारा पोषक तत्वों को फसल की मांग के अनुसार उचित समय पर दे सकते हैं। उर्वरीकरण पोषक तत्वों की उपलब्धता और पौधों की जड़ों के द्वारा उनका उपयोग बढ़ा देता है। उर्वरीकरण से भूमिगत जल का प्रदूषण नहीं होता है। टपक सिंचाई द्वारा फर्टिगेशन करने से बंजर भूमि जैसे रेतीली या चट्टानी मृदा में जहां जल एवं तत्वों को पौधे के मूल क्षेत्र के वातावरण में नियन्त्रित करना कठिन होता है, फसल ली जा सकती है। उर्वरीकरण जल एवं पोषक तत्वों के नियमित प्रवाह को सुनिश्चित करता है जिससे पौधों की वृद्धि दर तथा गुणवत्ता में वृद्धि होती है। उर्वरीकरण से फसलों के पूरे वृद्धि काल में उत्पादन को बिना कम किए, उर्वरक धीरे–धीरे दिए जा सकते हैं। उर्वरक उपयोग की किसी अन्य विधि की तुलना में उर्वरीकरण सरल एवं अधिक सुविधाजनक है जिससे समय और श्रम की बचत होती है। उर्वरक उपयोग की दक्षता बढ़ती है और उर्वरक की कम मात्रा में आवश्यकता होती है।

रोल ऑफ एग्रीकल्चर एंड एलाइड साइंसेस टुवर्ड्स ग्लोबल फूड सिक्यूरिटी पर हुआ वेबीनार

स्वयं का शुद्ध बीज कैसे तैयार करें किसान

अनुराग मलिक[1], सौरभ तोमर[2], हिमानी पूनिया[3], राजेश कुमार[4] एवं डॉ. कुलदीप सिंह[5]
[1,4]बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, [3]जीव रसायन विभाग, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविद्यालय हिसार, हरियाणा
[2]बागबानी विभाग, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर
[5]सहायक संचालक कृषि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

किसी भी फसल से अधिक उत्पदन व गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए उन्नत शुद्ध बीज सर्वोपरी महत्व रखता है। बिजाई के समय किसानों को उन्नत बीजों की कमी का सामना करना पड़ता है। किसानों को कभी दुकानदारों से मुहमांगे दामों में बीज खरीदना पड़ता है तो कभी ज्ञान के अभाव में खराब बीज भी खरीद लिया जाता है। इन सब परेशानियों से बचने के लिए किसान भाईयों को चाहिए कि वो अपना स्वयं का बीज तैयार करें। इससे किसान को कम लागत पर अच्छा बीज मिल जाएगा। संकर बीज तैयार करने के लिए तो किसान को तकनीकि ज्ञान का होना जरूरी है। लेकिन स्वपरागित फसलों का बीज तो किसान आसानी से तैयार कर सकता है। इसलिए बीज फसल के लिए उचित पृथक्करण दूरी व अवांछित पौधों को निकालने के साथ ही निम्नलिखित उन्नत सस्य क्रियाएं अपनाना अति आवश्यक है –

भूमि का चयन – बीज उत्पादन के लिए भूमि मृदा जनित कीटों व रोगों से मुक्त, समतल, उपजाऊ, अच्छी जल धारण एवं जल निकास क्षमता वाली होनी चाहिए। पिछले वर्ष जो फसल उस खेत में ली गई वही फसल दूसरे वर्ष न लें, क्योंकि दूसरे वर्ष उस फसल के पौधे उग जाते है व बीज में मिश्रण की पूरी सम्भावना रहती है।

भूमि की तैयारी – खेत की तैयारी हल या कल्टीवेटर चलाकर की जाती है, प्रत्येक तीन वर्ष बाद मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करने से भूमि की जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है तथा भूमि व जल संरक्षण में मदद मिलती है।

बीज का स्त्रोत – बीज किसी प्रमाणीकरण संस्था द्वारा मान्य स्रोत से प्राप्त करना चाहिए। आधार बीज उत्पादन के लिए प्रजननक तथा प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए आधार बीज का उपयोग किया जाता है।

बुवाई का समय बीज उत्पादन हेतु फसल की बुवाई सिफारिशानुसार समय पर करनी चाहिए।

प्रत्येक फसल हेतु उपयुक्त समय होता है।

बीज दर एवं बीज उपचार – बीज फसल उगाने के लिए अधिक मात्रा में बीज का उपयोग नहीं करना चाहिए। दलहनी व तिलहनी फसलों के लिए केप्टॉन, कार्बेण्डेजिम या थायरम तथा अनाज वाली फसलों के लिए रेक्सिल या अन्य सिफारिश किये गये रसायन से बीजोपचार करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंध – बीज फसल के पौधों व दानों के उचित विकास के लिए संतुलित उर्वरक जिसमें प्रमुख पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश आदि यथासंभव पर्याप्त मात्रा में देना आवश्यक होता है। नाइट्रोजन उर्वरक की आधी या एक तिहाई या एक चौथाई मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पौटाश उर्वरक की पूर्ण मात्रा बुवाई के पूर्व या बुवाई के समय देना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा फसल की आवश्यकतानुसार 2–3 बार में फसल की पुष्पन अवस्था के पूर्व देना चाहिए। उपलब्धतानुसार अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट 5 से 10 टन/हैक्टर को बुवाईं के लगभग एक माह पहले खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

दलहनी फसलों में जड़ ग्रन्थियों को क्रियाशील बनाने क लिए राइजोबियम कल्चर का उपयोग बुवाई के समय करने से फसल की वृद्धि एवं विकास अच्छा होता है। इन फसलों में पी एस बी कल्चर का उपयोग करने से फसल में फॉसफोरस उपयोग क्षमता बढ़ती है।

पृथक्करण दूरी – बीज फसल को पर–परागण द्वारा होने वाले संदूषण, कटाई व गहराई के समय अन्य बीजों के सम्मिश्रण तथा रोगों के फैलाव की रोकथाम के लिए लिए निश्चित दूरी पर लगाया जाता है। प्रत्येक फसल के लिए पृथक्करण दूरी फसल की परागण विधि व बीज वर्ग (आधार या प्रमाणित) के आधार पर रखा जाता है। सामान्यतया स्वपरागित फसलों हेतु 3 मीटर, आंशिक परपरागित फसलों हेतु 30 मीटर तथा परपरागित फसलों हेतु 200 मीटर पृथकरण दूसरी रखी जाती है। आधार बीज उत्पादन हेतु प्रमाणित बीज की तुलना में दुगुनी पृथक्करण दूसरी रखी जाती है। यदि बीज फसल व अन्य खेतों के बीच कोई रूकावट खड़ी कर दी जायें तो पृथक्करण दूरी कम की जा सकती है। जैसे संकर बीज उत्पादन में सीमान्त पंक्तियों की बुवाई, किसी दूसरी असम्बन्धित फसल की बुवाई आदि। पौधों को ढककर, फूलों पर थैलियां पहनाकर, पृथक्करण वाले पौधों के फूलों से नर अंगों को अलग करके भी पृथक्करण किया जा सकता हैं। कभी–कभी बीज फसल को अपेक्षित दूरी पर उगाना सम्भव न हो तो, बीज फसल की अगेती या पछेती बुवाई करते समय पृथक्करण किया जाता है, जिससे बीज फसल में पुष्पन का समय भिन्न फसल से अलग हो जाता है।

तालिका – विभिन्न फसलों की अन्य किस्मों से पृथक्कर दूरी

फसल	अन्य किस्मों से पृथक्करण दूसरी (मीटर में)		फसल	अन्य किस्मों से पृथक्करण दूसरी (मीटर में)	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज		आधार बीज	प्रमाणित बीज
बाजरा	400–1000	200	जौ	3	3
ज्वार	200–400	100–400	गेहूं	3	3
मक्का	400–600	200–300	चना	10	5
धान	3	3	मसूर	10	5
कपास	50	30	मटर	10	5
ग्वार	10	5	सरसों	50	25
अरहर	250	100	अलसी	50	25
मूंग	10	5	तारामिरा	100	50
उड़द	10	5	बरसीम	400	100
मोठ	10	5	रिजका	400	100
मूंगफली	3	3	जई	3	3
तिल	100	50			
सोयाबीन	3	3			
अरण्डी	600–1000	300			
ढेंचा	10	5			

निराई गुड़ाई – फसलों की प्रारंभिक अवस्था (25 से 40 दिन) में फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा अधिक होती है। इस अवधि में खरपवातर नियंत्रण करने से फसल की वृद्धि एवं विकास अच्छा होता है। खरपतवार नियंत्रण कतारों में हो चलाकर या निराई गुड़ाई कर अथवा उपयुक्त खरपतवारनाशक का प्रयोग सही मात्रा एवं तरीके से करना चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकास – फसल की आवश्यकानुसार क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई से दाने बड़े आकार के ठोस एवं चमकीले होते हैं जिससे उत्पादन अच्छा होता है।

पौध संरक्षण – बीज के लिए उगाई गई फसल में कीट एवं रोग का प्रभाव शुरू होते ही उपयुक्त कीटनाशक व कवकनाशक दवा का सही मात्रा में छिड़काव कर रोकथाम करना चाहिए।

अंवाछनीय पौधों का निष्कासन – बीज फसल में अंवाछित पौधों को निकालने का कार्य सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि बीज फसल की आनुवांशिक एवं भौतिक शुद्धता इस बात पर निर्भर करती है कि फसल से अवांछित सभी प्रकार के पौधों को चुनकर खेत से बाहर निकालना चाहिए। यह कार्य फसल की प्रारंभिक अवस्था से फसल पकने तक चरणबद्ध तरीके से किया जाता है। यदि बीज फसल से अवांछित पौधों को नही निकाला जाता है अथवा रोगिंग नहीं कराई जाती है तो बीज नहीं मात्र व्यवस्सायिक दृष्टिकोण से अनाज प्राप्त होगा। जिससे आय भी प्रभावित हो सकती है। बीज

उत्पादन हेतु फसल किस्म के खेत में अवांछित पौधों को उनके विशिष्ट गुणों के आधार पर निकालने / खेत में अलग करने की प्रक्रिया को रोगिंग कहते है।

अवांछित पौधों के प्रकार

1. भिन्न किस्म के पौधे – गेहू डब्ल्यू एच 711 की फसल में डब्ल्यू एच 147 या अन्य गेहूं के पौधें
2. भिन्न फसलों के पौधें – गेहूं की फसल में जौ, जई एवं अन्य फसल के पौधें
3. खरपतवारों के पौधे – गेहूं की फसल में जंगली जई के पौधें।
4. रोग ग्रस्त पौधे – गेहूं में कंगयारीरोग से ग्रसित पौधें

अवांछित पौधों की पहचान – बीज किस्म की ऊँचाई, पत्तियों का आकर एवं लम्बाई, उपस्थित रोयें, फली या बालियों का आकार प्रकार, पराग कणों का रंग आदि गुण मानक लक्षणों के अनुरूप न होने पर पौधों की पहचान कर मुख्य बीज फसल से अलग निकाल लेना चाहिए।

कटाई एवं गहराई – फसल बीज के पूर्णतः परिपक्व हो जाने पर उचित नमी अवस्था में कटाई करना उपयुक्त होता है। अधिक नमी अवस्था मे कटाई करने पर गहराई व सफाई करने में बीज क्षति होती है, कीटों व कवकों का आक्रमण शीघ्र होता है और अंकुरण क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कटाई विलम्ब करने से धूप, वर्षा, हवा आदि प्राकृतिक आपदाओं से बीज की गुणवत्ता में ह्रास होता है और कुछ फसलों के दाने खेत में बिखरने की समस्या होती है।

बीज प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग) –कटाई के समय बीज फसल में नमी की मात्रा सुरक्षित स्तर से अधिक होती है, अतः बीज नमी सुरक्षित स्तर तक लाने के लिए बीज ढेर को धूप या कृत्रिम हवा से सुखाया जाता है। अनाज फसलों में 12 प्रतिशत व कपास में 8–10 प्रतिशत, दलहनी, फसलों में 9 प्रतिशत एवं तिलहनों में 8 प्रतिशत तक, सब्जियों के बीज में 7–8 प्रतिशत नमी भंडारण के लिए उपयुक्त पाई जाती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत ग्रेडिंग का छोटे, कटे व क्षतिग्रस्त बीज निकाल लिये जाते है।

बीज परीक्षण – बीज की आनुवांशिक व भौतिक शुद्धता, अंकुरण क्षमता नमी प्रतिशत आदि का परीक्षण प्रयोगशालाओं में किया जाता है। बीज परीक्षण के उपरांत बीज शुद्धता का प्रमाणीकरण निश्चित होता है।

बागों में खाद और उर्वरकों का प्रयोग

डॉ0 मनोज कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक

उद्यान विभाग

कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कालेज, प्रयागराज, उ.प्र.

सफल बागवानी के लिए आवश्यक है कि बाग में प्रतिवर्ष उचित मात्रा में खाद देते रहे ताकि पौधे स्वस्थ और वृद्धि एवं विकास करते रहे। फल वृक्षों को मृदा से उचित मात्रा में पोषण तत्व मिलते रहे तो निश्चित रूप से पौधे में गुणवत्तायुक्त अधिक मात्रा में फूल और फल यानि उत्पादन मिलता रहता है। फल वृक्षों के लिए कम से कम नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश पर्याप्त मात्रा में मिलते रहना चाहिए। साथ ही साथ द्वितीयक पोषक तत्व और सूक्ष्म पोषक तत्व भी मृदा में हो। इन तत्वों की पूर्ति के लिए गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद तथा वर्मी कम्पोस्ट खाद देते रहना चाहिए। नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए यूरिया या अमोनियम सल्फेट, फास्फोरस के लिए सिंगल सुपर फास्फेट और पोटाश के लिए पोटैशियम सल्फेट या म्यूरेंट आफ पोटाश जैसे रासायनिक उर्वरकों उपयोग करें। लकड़ी की राख की खाद से पोटाश की पूर्ति की जा सकती है। अब प्रश्न उठता है कि इन खादों और उर्वरकों का बाग में उपयोग कब और कैसे करें करना है कि इससे अधिक से अधिक गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त हो सके इसकी जानकारी प्रत्येक बागवान को होना आवश्यक है। खाद एवं उर्वरक की संतुलित मात्रा का प्रयोग सही समय और विधि बागों में लगे पौधे की उम्र पर निर्भर करता है। साधारणतया बाग में खाद और उर्वरकों का उपयोग वर्ष में दो बार करते है। जून–जुलाई और अक्टूबर–नवम्बर महीने में करना ज्यादा लाभकारी होता है। खाद एवं उर्वरक का सही मात्रा में मिश्रण बनाकर साल में दो बार प्रयोग करते है।

बागों में खाद और उर्वरकों का मिश्रण बनाकर खेत में बिखेर देते हैं या थालों में थाला बनाकर देते है या ऐच्छिक स्थान पर देते है। उपरोक्त विधियों के अलावा कुछ खास पौधे पोषक तत्वों का पर्णिम छिड़काव करते है।

खाद एवं उर्वरकों को बिखेरकर देने के लिए तने से कुछ दूरी छोड़कर खाद एवं उर्वरक के मिश्रण को बिखेर कर मृदा में मिला दिया जाता है। तने की दूरी पौधे की मोटाई और परिधि पर

निर्भर करती है। खाद को मृदा में अच्छी प्रकार से मिला देना चाहिए और इस बात का ध्यान रखे की मृदा में नमी अवश्य रहे।

सामान्यतया खादों को थाला बनाकर उन फल वृक्षों को खाद दी जाती है, जिनकी आयु कम होती है, क्योंकि इस समय पौधे की जड़े थोड़े क्षेत्र में ही फैली रहती है। इस विधि में खाद के मिश्रण को तने से थोड़ी दूरी पर फैला कर अच्छी प्रकार से मिला देते है। खादों को ऐच्छिक स्थान पर देना या नाली विधि से देने से है जैसा कि सर्वविदित है कि पौधे से जितना नजदीक उर्वरकों को दिया जाए उतना ही ज्यादा लाभकारी होता है। फास्फोरस युक्त उर्वरक मृदा में कम चलायमान होते है। ऐसी दशा में पौधे के तने से थोड़ी दूरी पर 60–70 सेन्टीमीटर चौड़ी और 10–15 से0मी0 गहरी नाली बनाकर उर्वरकों और जैविक खाद को साथ अच्छी प्रकार से मिश्रित करके नाली में डाल देते है और नाली को मिट्टी से ढक देते है।

उपरोक्त विधि के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार के पौधे में पोषक तत्वों को देने के लिए पर्णीय छिड़काव भी करते है। पर्णीय विधि का उपयोग सामान्यतया नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैंगनिशियम व सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे कोबाल्ट, जिंक, बोरान, आयरन और मैगनीज इत्यादि के छिड़काव में करते है। पौधे पर पर्णीय छिड़काव करने से पोषक तत्वों का उपयोग पौधे द्वारा जल्दी कर लिया जाता है। उर्वरकों का घोल बनाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि घोल सान्द्रता की उचित ही होना चाहिए क्योंकि सान्द्रता होने पर पत्तियाँ झुलस जाती है और सान्द्रता कम होने पर पौधे को उपयुक्त लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है। पर्णीय छिड़काव उन स्थानों पर सर्वाधिक लाभ प्राप्त होता है जहाँ पर मृदा में नमी की कमी हो तथा मृदा समतल न हो अर्थात् मृदा में उतार–चढ़ाव ज्यादा हो उपयुक्त होती है।

खिरनी की खेती एवं उपयोगिता

विकास मण्डलोई, गौरी शंकर पटेल एवं अभिषेक यादव
उद्यान शास्त्र विभाग
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर, (म0प्र0)

बागवानी की बात की जाये तो व्यावसायिक खेती में कुछ विशेष फल वृक्षों की ही खेती की जाती है। वर्तमान में कृषि जगत में जैवविविधता संरक्षण एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। यह हमारी खाद्य विविधता के लिए भी जरूरी है। खिरनी, जैवविविधता के संरक्षण में एक अहम कड़ी है। आधुनिक बागवानी में खिरनी जैसे फल वृक्षों के संरक्षण की आवश्यकता है। मात्र कुछ ही फलों की व्यावसायिक खेती से जैवविविधता संकुचित होती जा रही है। भोजन की थाली में भी कुछ ही फलों की उपस्थिति रहती है। खिरनी को प्रमुख पफल के रूप में प्रतिस्थापित करने के लिए इसका संरक्षण, प्रवर्धन और बागवानी में संवर्धन आवश्यक है।

खिरनी को स्थानीय भाषा में रायन या रेनिया भी कहते हैं। इसे वानस्पतिक भाषा में मेनिलकारा हेक्सैन्ड्रा के नाम से जाना जाता है। हमारे देश में यह शुष्क पर्णपाती वनों में पाया जाने वाला उपयोगी वृक्ष है। खाद्य फल देने के साथ–साथ खिरनी, चीकू की व्यावसायिक खेती के लिए भी आवश्यक है। इसे चीकू के पौधे तैयार करने में बतौर मूलवृन्त प्रयोग किया जाता है।

परिचय–खिरनी, सपोटेसी कुल का पौधा है, यह एक मध्यम ऊंचाई का वृक्ष है। इसकी पत्तियां मोटी गहरे रंग की होती हैं एवं पौधे की छाल भूरे रंग की होती है, जो इसकी वाष्पोत्सर्जन आवश्यकता को कम करती है। छाल में लेटेक्स नलिकायें होती हैं तथा टैनिन भी पाया जाता है। इनकी मौजूदगी के कारण खिरनी का पेड़ शुष्क वातावरण में बड़ी आसानी से जीवित रहता है। इसमें उत्तरी भारत में दिसंबर में फूल आते हैं। फूल, पत्तियों के कक्ष में नयी बढ़वार पर एकल या गुच्छे में आते हैं। इसके पके फल पीले रंग के एवं रसदार होते हैं व अप्रैल–मई में पककर तैयार हो जाते हैं।

उपयोगिता–खिरनी के पके फल कार्बोहइड्रेट के अच्छे स्रोत होते हैं। इसके बीजों में तेल पाया जाता है। छाल से निकाले जाने वाले सत का उपयोग पेड़ एवं पशुओं की आंतों में होने वाले घाव (अल्सर) के उपचार में होता है। खिरनी के फलों, बीजों एवं छाल के रासायनिक संघटन का वर्णन

सारणी–1 में दिया गया है।

स्पष्ट है कि खिरनी के फल कार्बोहइड्रेट के उत्तम स्रोत हैं। बीज में पर्याप्त मात्रामें तेल एवं छाल में उपयुक्त मात्रा में टैनिन पाया जाता है। इसके फलों को खाद्य फलों की विविधता से जोड़ा जा सकता है। खिरनी के बीजों से प्राप्त तेल से औद्योगिक महत्वके तेल का उत्पादन किया जा सकता है। इसकी छाल टैनिन का स्रोत होने के कारण चमड़ा उद्योग के लिए उपयोगी है एवं इसकी लकड़ी दीमक प्रतिरोधी होती है। इसलिए इसका उपयोग तेल मिल में घानी बनाने के लिए, पफर्नीचर बनाने में एवं दूसरे कार्यों के लिए किया जाता है।

जलवायु–खिरनी के वृक्ष प्राकृतिक रूप से शुष्क क्षेत्रों के जंगलों में पाए जाते हैं। वैसे यह मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में प्राकृतिक वातावरण में उगते हुए देखे जाते हैं। यह आमतौर पर 700 से 1000 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। खिरनी का पुराना वृक्ष ठंड प्रतिरोधी होता है। नया पेड़, जो ग्राफ्रिंटग से तैयार किया जाता है, ठंड से प्रभावित होता है और पौधे की बढ़वार मंद हो जाती है।

बीज बुआई विधि–बीजों की बुआई पॉलीथीन की थैलियों में की जाती है, क्योंकि पॉलीथीन की थैलियों से पौधों को स्थानांतरित करने में सरलता होती है। पॉलीथीन की थैली की मोटाई 300 गेज होनी चाहिए। इनका आकार 10–25 सें.मी. या अन्य आकार वाले पौधों के अनुसार हो सकता है। इन पॉलीथीन की थैलियों को बीज बोने हेतु उपयुक्त बनाने के लिए पहले थैलियों में नीचे की ओर महीन छिद्र करने चाहिए जिससे आवश्यकता से अधिक पानी बाहर निकल जाए किन्तु मिट्टी न निकल पाए। थैलियों में मिट्टी 2 भाग, बालू 1 भाग, गोबर की खाद 1 भाग तथा पत्ती की खाद 2 भाग का मिश्रण भरना चाहिए। थैलियों में स्वस्थ बीज बोना चाहिए।

खिरनी की पौध–खिरनी के पौधे, बीज शैया एवं पॉलीथीन में उगाये जा सकते हैं। बीजशैया ऊँचे स्थान पर जहाँ कि पानी रुकने की संभावना न हो, भूमि सतह से 15–20 सें.मी. ऊपर तैयार करनी चाहिए। बीज शैया तैयार करने से पहले भूमि की जुताई करके मिट्टी अच्छी तरह भुरभुरी बना लेनी चाहिए। बीज शैया तैयार कर इनमें 15 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी–गली हुई गोबर की खाद प्रति क्यारी मिलाकर हल्की गुड़ाई द्वारा समतल करें एवं बीजों की सदैव कतारों में ही बुआई करनी चाहिए। बीज बोने के बाद बीजों को खाद की हल्की परत से बचाव के लिए घास से ढक देना चाहिए। सिंचाई प्रतिदिन हजारे से हल्के रूप में प्रातःकाल करनी आवश्यक है। बीज शैया में उपस्थित जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए मृदा उपचार भी आवश्यक है, यह 0.2 प्रतिशत फाइटोलोन या 2 प्रतिशत बाविस्टीन आदि दवाओं से किया जा सकता है। बीज उगने के पश्चात

बीज शैया से घास आदि निकालते रहना चाहिए। हल्की सिंचाई करके ही पौधों को उखाड़ना चाहिए।

सारणी 1. खिरनी के फल, बीज और छाल का रासायनिक संघटन

क्र.सं.	पोषक तत्व	पोषण मूल्य
1	कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्राा ;डिग्री ब्रिक्सद्ध	24.35–26.35 प्रतिशत
2	कुल शर्करा ;प्रतिशतद्ध	17.5–18.5 प्रतिशत
3	विटामिन सी ;मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम खाद्य भागद्ध	18.75 प्रतिशत
4	कुल कैरोटिनॉयड ;मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम खाद्य भागद्ध	3.65 प्रतिशत
5	वसा ;प्रतिशतद्ध	2.4 प्रतिशत
6	खनिज लवण ;प्रतिशतद्ध	4.8 प्रतिशत
7	गूदा ;प्रतिशतद्ध	87 प्रतिशत
8	**बीज** तेल प्रतिशत	24.6 प्रतिशत
9	**छाल** टैनिन प्रतिशत	30 प्रतिशत

ग्राफ्टिंग से तैयार पौधे 5–7^0 सेल्सियस से कम तापमान पर सूख जाते हैं।

उन्नत किस्में

थार ऋतुराज–यह चार वर्ष में फूल देना शुरू कर देती है। फूल दिसंबर के पहले सप्ताह में आते हैं और फल मई के तीसरे सप्ताह में पकने लगते हैं। फलों का औसत वजन 5.20 ग्राम, गूदा 87.49 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्राा 24.730 ब्रिक्स, अम्लता 0.32 प्रतिशत, कुल शर्करा 17.80 प्रतिशत और विटामिन–सी 28.33 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग पाया जाता है।

प्रवर्धन–खिरनी का प्रवर्धन फांक कलम रोपण ;क्लेफ्रट ग्राफ्टिंग विधि द्वारा किया जाता है। इस कार्य के लिए एक वर्ष पुराने खिरनी के बीजू पौधे का उपयोग किया जाता है। कलम रोपण के लिए 4–6 माह पुरानी पेंसिल जितनी मोटी शाखा का चुनाव कर रोपण का कार्य फरवरी–जून में किया जाता है। पौधे पर कलम चढ़ाने के पश्चात इसे छिद्रिल पॉलीथीन कैप से ढक दिया जाता है। इससे ग्राफ्टिंग किए गए भाग में नमी बनी रहती है एवं पौधे के सूखने का डर नहीं रहता है। कलम किए गए पौधे एक साल में रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

रोपण–पौध रोपण के लिए खेत को अच्छी तरह से समतल कर लेना चाहिए। इसके पश्चात सही विधि से बाग लगाने के लिए खेत का रेखांकन कर गड्ढे तैयार कर लेते हैं। बगीचा लगाने के लिए वर्गाकार विधि उचित रहती है। इससे बगीचे में कृषि कार्य सुगमता से किए जा सकते हैं। पौध रोपण

के लिए 45 X45X45 सें.मी. आकार के एवं 6X6 मीटर की दूरी पर गड्ढे तैयार किए जाते हैं। गड्ढे, पौधे लगाने के एक महीने पहले तैयार किए जाते हैं ताकि गर्मी की खुली धूप में इनके कीट मर जायें। गड्ढे खोदते समय ऊपर की आधी मिट्टी को एक तरफ एवं नीचे की आधी मिट्टी अलग रखते हैं। लगभग 25 दिनों बाद ऊपरी मिट्टी में 5—10 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम नीम की खली तथा 50 ग्राम नाइट्रोजन, फॉस्पफोरस और पोटाश मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर गड्ढे को 10 सें.मी. ऊपर तक भरें ताकि यह बरसात होने पर व्यवस्थित होकर जमीनी सतह के बराबर रहे। पौध को इसकी जड़ों से लगी मिट्टी सहित पहले से तैयार गड्ढे में लगाते हैं। इसके बाद गड्ढे को अच्छी तरह दबाकर उसके चारों तरफ थाला बनाकर पानी देना चाहिए। यदि बरसात न हो तो पौधों की 3—4 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करने से पौधे की स्थापना अच्छी होती है। खिरनी के पौधे लगाने के लिए जुलाई—अगस्त का महीना (बरसात का मौसम) उपयुक्त रहता है। यह समय पौधों के सही स्थापन के लिए उचित माना जाता है।

सिंचाई एवं देखभाल—सामान्य तौर पर खिरनी को बरसात आधारित फल—फसल के रूप में उगाया जाता है और सिंचाई की ज्यादा आवश्यकता नहीं होती है। फसल की शुरुआती अवस्था एवं अधिक फल प्राप्त करने के लिए गर्मी में पानी देना आवश्यक होता है। बरसात की समाप्ति के बाद एक या दो सिंचाई करना फलों के लिए लाभदायक होता है। पौध लगाने के बाद पौधों की नियमित रूप से देखभाल की जानी चाहिए। पौधों के थालों में समय—समय पर खरपतवार नियंत्राण करना चाहिए।

सधाई—नये पौधों को उचित ढांचा प्रदान करने एवं मजबूत बनाने के लिए शुरुआती 3 वर्षों तक सधाई करनी चाहिए। जब पौधे छोटे होते हैं तो इनको सहारे की जरूरत पड़ती है। इसके लिए पौधे के तने पर जमीन से 45 सें.मी. की ऊंचाई तक सभी आड़ी—तिरछी शाखायें हटा दी जाती हैं। उसके ऊपर 3—4 शाखाएं जो चारों ओर फैली हुई हों, उन्हें बढ़ने देना चाहिए। इससे पौधों का उचित ढांचा तैयार हो जाता है।

उपज—खिरनी के पौधे प्रायः बीज से उगाये जाते हैं। बीजू पौधे वृहद आकार लेते हैं और इन पौधों पर फलत देर से आती है। पौधे अधिक उम्र तक उत्पादनशील बने रहते हैं। फल पकने पर चटक पीले रंग के हो जाते हैं एवं इनको प्रायः पकने पर तोड़ा जाता है। कच्चे फलों को खुरचने पर दूधिया स्राव निकलता है। फलों से निकलने वाला दूधिया स्राव समाप्त हो जाये और फलों का रंग हरे से पीला हो जाये, तब समझना चाहिए कि फल तोड़ने के लिए तैयार हो गए हैं। खिरनी के एक विकसित 10—15 वर्ष के वृक्ष से 20—25 कि.ग्रा. उपज प्रति वर्ष प्राप्त होती है।

छत के ऊपर सब्जियों की खेती

सौरभ तोमर[1], डॉ. कुलदीप सिंह[2], निर्मल सिंह[3], प्रीति[4] एवं सौरभ[5]

[1]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

[2]सहायक संचालक कृषि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

[3,4,5]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविधालय हिसार, हरियाणा

बढ़ता तापमान, दूषित वातावरण, ताजे और स्वस्थ फल सब्जियों के अभाव के कारण शहरी लोगों को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है लेकिन यदि आप छत पर टेरेस गार्डन स्थापित करेंगे तो इन समस्याओं से निजात पा सकते हैं।

गार्डन में उपयोग होने वाले औजार :

खुरपी, कुदाल, रोज केन, हैंड स्पेयर, गेडिग हौज, जूट की रस्सी, बाँस की फट्टी इत्यादि।

आवश्यक सामग्री :

विश्वसनीय स्थान से गुणवत्ता बीज, खरपतवार पत्थर रहित अवघटित पदार्थों रहित अच्छी मिट्टी होनी चाहिए, अच्छी प्रकार सड़ी हुई जैविक खाद, नदी की बलुई मिट्टी, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशी दवाइयँ, कवकनाशी दवायें ।

आवश्यक जैविक पदार्थ :

नीम तेल, नीमकैक, नीम पाऊडर, पंचगाब्या इत्यादि।

टेरेस गार्डन की शुरुआत कैसे करें :

बुवाई में उपयोग होने वाले एक कंटेनर गमले अच्छी तरह से धो कर उनमें जल निकास के लिए छिद्र बनाना चाहिए चयनित पौधों के लिए उपयुक्त मिट्टी लाये और मिट्टी में खाद को हाथ या खुरपी से मिलाए ।कंटेनर में ऊपर से 1 इंच जगह छोड़कर मिट्टी के मिश्रण को हल्के हाथों से ढीला भराई करें जहाँ पर सब्जियों का रोपण करना हो वहाँ पर उथले गमले का प्रयोग करना चाहिए उसमें एक भाग मिट्टी, एक भाग कमपोस्ट, एक भाग बालू का प्रयोग करना चाहिए तथा जहां पर सीधे बीज की बुवाई करनी है वहाँ बुवाई के बाद तुरंत सिंचाई करना चाहिए और बुवाई के बाद घास या पुवाल की परत बिछा देनी चाहिए जो बीज जन्म के बाद हटा भी देनी चाहिए। ज्यादातर सब्जियों के पौध रोपण हेतु एक माह में तैयार हो जाते हैं कुछ सब्जी के बीज की सीधी बुवाई करते हैं इस तरह के

बीजों को चयनित बर्तन और पॉलीथीन बैग में बोते है प्लग ट्रे जो कपनुमा सरंचना से बनी ट्रे होती है जो कि 2 से 3 इंच गहरी तथा जल निकास छिद्र वाली होती है ये नर्सरी उगाने में सबसे उपयोगी है एक चौथाई भाग कंपोस्ट खाद से भरकर एक प्याले में एक बीज बोते है और उसके बाद सिंचाई और अन्य कार्य किये जाते हैं ।

कुछ बीजो की सीधी बुवाई की जाती है तथा उनको चयनित पाठ और पॉलीथिन में ही बुवाई करनी चाहिये जितना बीज का आकार हो उससे दुगुने या तिगुने के अंदर बीज की गहराई होनी चाहिए। अधिकतर बीजो की बुवाई सीधे कंटेनर में बुवाई करते है तथा बैंगन मिर्च टमाटर शिमला मिर्च और प्याज के 30 से 40 दिन पुराने पौधों को कंटेनर में रोपण करते हैं और इनकी नर्सरी पौधशाला पक्के मिट्टी के बर्तन या पेन में उगाते है तथा एक स्वस्थ नर्सरी पौध को ट्रे के एक कंटेनर में उगाते है और यदि सीधे बुवाई करनी है तो एक कंटेनर में 2–3 बीज की बुवाई करते हैं बीज उगने के बाद एक स्वस्थ पौधे को छोड़कर सबको निकाल देते हैं ।

फसलो का चुनाव और उगाना :

सब्जियाँ	समय	दूरी	बुवाई के बाद पहली कटाई या तुड़ाई	प्रति पौध उपज/वर्ग मीटर (किलो)
चौलाई साग	फरवरी–मार्च, जुलाई–अगस्त	15×10 से.मी.	25 से 30 दिन	3 किलो/वर्ग मीटर
चुकंदर	अक्टूबर–दिसंबर	15×10 से.मी.	90 से 100 दिन	4 किलो /वर्ग मीटर
मिर्ची	फरवरी–मार्च, जुलाई–अगस्त	60×60 से.मी.	45 से 60 दिन	1 से 3 किलो /पौध
लोबिया	जुलाई–अगस्त	45×15 से.मी.	45 से 60 दिन	7 से 7.5 किलो/पौध
खीरा	फरवरी–मार्च, जुलाई–अगस्त	2×1.5 मी.	45 से 50 दिन	7 से 7.5 किलो/पौध
भिंडी	फरवरी–मार्च, जून–जुलाई	60×60 से.मी.	30 से 35 दिन	1.5 से 2 किलो/पौध
प्याज	जून–जुलाई	15×10 से.मी.	75 से 80 दिन	3 किलो/वर्ग मीटर
मूली	वर्षीय फसल	15×10 से.मी.	40 से 45 दिन	4 किलो/वर्ग मीटर
पालक	सिंतबर–दिसंबर	10×10 से.मी.	25 से 30 दिन	33 किलो/वर्ग मीटर
टमाटर	अगस्त–अक्टूबर, जनवरी–मार्च	60×60 से.मी.	60 से 65 दिन	10 किलो/पौध
शलजम	सितम्बर–अक्टूबर, दिसंबर–जनवरी	15×15 से.मी.	40 से 45 दिन	4 किलो/वर्ग मीटर

अप्रैल–मई–जून–नवंबर फसल चक्र सामान्यतः सभी सब्जिया तथा मसाला फसले तीनो मौसमों खरीफ रबी जायद में उगाते है उसके अनुसार फसल चक्र इस प्रकार अपनाना चाहिए

मई जून से सितंबर अक्टूबर – करेला बैंगन लोबिया भिंडी मिर्च

सिंतबर अक्टूम्बर से नवंबर दिसंबर दृ पालक, मिर्ची, टमाटर, मूली, शलजम, खीरा

दिसंबर जनवरी से मई जून – भिंडी, लौकी, चौलाई, बैंगन, मिर्च, खीरा, प्याज

बहुवर्षीय फसलें

सब्जिया –सहजन, सब्जी केला

फल –निम्बू, पपीता, अमरूद

मसाले –अदरक, हल्दी

छत के लिए उपयुक्त

फलों की खेती – कागजी निम्बू, पपीता, अमरूद

रोपण वाली सब्जियों की खेती दृ टमाटर, बैंगन, मिर्च

सीधी बुवाई वाली सब्जियों की खेती दृ पालक, मूली, शलजम, लौकी, चौलाई, करेला, खीरा, भिंडी

मसाला फसलो की खेती – हल्दी, धनिया, मेथी

औषधीय फसलो की खेती –अगाथी, अश्वगंधा, धृतकुमारी, ओमावल्ली, निम्बूघास

छत के लिए उपयुक्त फलो की खेती के लिए फलो की प्रजातियां और उपयुक्त दूरी इस प्रकार है :

फलों की खेती	**प्रजातियाँ**	**बुवाई दूरी (मी०)**	**उपज / पौध / किलो**
आम	आम्रपाली, दशहरी	5×5	20 से 50
केला	हरिछाल, रोवस्ता	2×2	20 से 25
अमरूद	इलाहबादी सफेदा, लखनऊ 49	5×5	50 से 60
पपीता	ताइवान, हनीड्यू, सूर्या	2×2	125
नींबू	लोकल प्रजातियाँ	4×4	50 से 60

मानव जीवन पर प्रदूषण के प्रभाव

आनन्द कुमार पाण्डेय, अंकित सिंह, आलोक कुमार सिंह, ए. के. सिंह एवं डा. रमेश प्रताप सिंह

फसल कार्यिकी विभाग एवं कृषि जैव रसायन विभाग

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक वि0 वि0, कुमारगंज, अयोध्या

भारत देश एक बहुत ही बड़ा जनसंख्या वाला देश है। जनसंख्या की विशालता को देखते हुए, यदि एक अनुमान लगाया जाए, तो पता चलता है कि आज भी देश में गरीबी, अनपढ़ता, भुखमरी का अम्बार है, जिसके कारण प्रदूषण की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। भारत में प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण अशिक्षिता या अज्ञानता है। जिसके चलते बीमारियाँ या ऐसे रोग फैले हैं जो कि लाइलाज या असमय मृत्यु का कारण तक बन जा रहे हैं। यह भारत की ऐसी बड़ी समस्या है, जिसका समय रहते यदि निराकरण न किया गया तो आने वाले समय में भारत ही नहीं अपितु विश्व समुदाय को एक भयावह स्थिति का सामना करना पड़ सकता है।

प्रकृति में सब जीव जन्तु, प्राणि तथा वनस्पति जगत परस्पर मिलकर संतुलन बनाए रहते है। प्रत्येक का अपना विशिष्ट कार्य है। जब मनुष्य प्रकृति के कार्य में हस्तक्षेप करता है, तब प्रकृति का स्वास्थ बिगड़ता है। इससे सारी सृष्टि का सामनजस्य बिगड़ जाता है। आज का युग वैज्ञानिक या औद्योगिक दोनो है। औद्योगिकरण के फलस्वरूप वायु प्रदूषण बहुत तेजी से बढ़ रहा है, ऊर्जा तथा उष्णता पैदा करने वाले संयंत्रों से गर्मी निकलती है जिसके परिणाम स्वरूप प्रदूषण बहुत तेजी से बढ़ रहा है और यह उद्योग जितने बड़े होगें, जितने बढ़ेगें, उतनी ज्यादा गर्मी फैलायेंगे और प्रदूषण का प्रकेप उतना ही बढ़ेगा। इसके अलावा ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए जो ईधन प्रयोग में लाया जाता है, यह प्रायः पूरी तरह नहीं जल पाता, इसका परिणाम यह होता है कि धुएं में कार्बन मोनोऑक्साइड काफी मात्रा में निकलती है। आज मोटर वाहनों का यातायात तेजी से बढ़ रहा है। 960 किमी0 की यात्रा में एक मोटर वाहन उतनी ऑक्सीजन का उपयोग करता है, जितनी एक आदमी को एक वर्ष में चाहिए। तेल शोधन, चीनी मिट्टी की मिले, चमड़ा, कागज, रबर आदि के कारखाने बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं, सब उत्पादन के लिए किसी न किसी रूप में ईंधन को फूंकते हैं। अपने धुएं से वातावरण को दूषित करते हैं। विकास के क्रम में प्रकृति अपने लिए ऐसी परिस्थितियाँ बनाती है जो उनके लिए आवश्यक है। इसलिए इन व्यवस्थाओं में मनुष्य का हस्तक्षेप सब प्राणियों के लिए घातक होता है। प्रदूषण का मुख्य खतरा इसी से है कि इससे परिस्थिति संस्थान पर दबाव पड़ता है। घनी आबादी वाले क्षेत्रों में कार्बन मोनोऑक्साइड की वजह से रक्त संचार में 5–10 प्रतिशत ऑक्सीजन कम हो जाती है। शरीर के ऊतकों को 25 प्रतिशत ऑक्सीजन की आवश्यकता

होती है। ऑक्सीजन की तुलना में कार्बन मोनोऑक्साइड लाल रूधिर कोशिकाओं के साथ ज्यादा मिल जाती है। इससे यह हानि होती है कि ये कोशिकाएं ऑक्सीजन को अपनी पूरी मात्रा में संभालने में असमर्थ रहती है। लंदन में चार घंटों तक यातायात संभालने के काम पर रहने वाले पुलिसकर्मी के फेफड़ों में इतना विष भर जाता है कि मानो उसने 105 सिगरेट पी ली हो। आराम की स्थिति में मनुष्य को दस मीटर हवा की आवश्यकता होती है। कड़ी मेहनत पर उससे दस गुना ज्यादा चाहिए।

कुछ वैज्ञानिकों की मान्यता है कि वातावरण के प्रदूषण की वर्तमान रफ्तार से तीस वर्ष में जीवन मंडल, जिस पर प्राणि और वनस्पति निर्भर है, समाप्त हो जायेंगे। पशु, पौधे और मनुष्यों का अस्तित्व नहीं रहेगा। सारी पृथ्वी की जलवायु बदल जाएगी। संभव है कि बर्फ तक पृथ्वी का वातावरण, नदियाँ और महा समुद्र सब विषैले हो जायेंगे। यदि मनुष्य प्रकृति के नियमों को समझकर प्रकृति को गुरू मानकर उसके साथ सहयोग करता है और विशेष करके सब अवशिष्टों की प्रकृति को लौटाता है तो सृष्टि और मनुष्य स्वस्थ रह सकते है नही ंतो लम्बे अर्से में अणु विस्फोट के खतरे की अपेक्षा प्रकृति के कार्य में मनुष्य का कृत्रिम हस्तक्षेप कम खतरनाक नहीं है। अतएव हमें प्रकुति के शोषण को कम करना होगा अन्यथा हमारा जीवन पानी के बुलबुले के समान बेवजह समाप्त हो जाएगा। हमारे सारे विकास के कार्य ज्यों के त्यों पड़े रह जायेंगे।

दैनिक जीवन के कुछ मूलभूत बिंदुओं पर ध्यान रखने से हम कुछ हद तक ऐसे विनाशकारी भविष्य से बच सकते हैं और अपने आने वाले भविष्य के नौ निहालों को एक अच्छा एवं स्वस्थ पर्यावरण दे पायेंगे –

- कृषि कार्यों में ज्यादा से ज्यादा जैव उत्पादों का प्रयोग करें।
- सौर ऊर्जा से चलने वाले मशीनों को ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करें।
- बढ़ रहे प्लास्टिक के उपयोग को रोके और कचरे के रूप में फेंके जाने वाले प्लास्टिक को रिसाइकिल कर प्रयोग करें।
- अधिक से अधिक पेड़–पौधे लगाएं।
- देश में अंधविश्वास एवं अज्ञानता को खत्म करें, नदियों में पूजा–पाठ की सामग्री एवं मृत शरीर और अस्थियों का प्रवाह न करें।
- वाहनों का प्रयोग कम से कम करें, जिससे खनिज पदार्थों की खपत को रोका जा सके।
- पब्लिक ट्रांसपोर्टेशन का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करें।
- बिना आवश्यकता के प्रकृतिक प्रदत्त सुविधाओं का उपयोग कम से कम करें, साथ साथ अपव्यय पर अंकुश लगाएं।
- इन कुछ बातों को अपने जीवन के रोजमर्रा के आदतों में डालने से हम पर्यावरण के दुष्प्रभावों से कुछ हद तक निजात पा सकते हैं।
- वनों एवं पेड़ों की कटाई पर पूर्णतः रोक लगानी चाहिए।
- कल–कारखानों में प्रदूषक नियंत्रण यंत्र लगाना चाहिए।
- प्रदूषित जल, नदियों, समुद्र में मिलाने से पूर्व उसका शोधन होना चाहिए।

चुकंदर बीज पेलेटिंगरू गुणवत्ता वाले बीज उत्पादन हेतु एक वृद्धि तकनीक

वरुचा मिश्रा[1], संतेश्वरी[1], धर्मेंद्र कुमार[1], अश्वनी कुमार[2], ए के मल्ल[1]
[1]फसल सुधार विभाग, भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226 002, भारत
[2]उ.प्र. कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ

बीज पेलेटिंग वह प्रक्रिया है जिसमें मृदा या चूना पत्थर जैसी जड़ सामग्री को उनके माप और आकार में परिवर्तन के लिए बीजों में जोड़ा जाता है ताकि वृक्षारोपण में सुधार हो सके। पिछले 40 से 50 वर्षों में व्यावसायिक रूप से पेलेटिंग की तकनीक विकसित की गई है जिसमें फार्मास्यूटिकल्स उद्योगों से तकनीकों को लागू किया गया था। चुकंदर के पौधे की एक बीज गोली बनाने में जर्मन पहले आविष्कारक थे। आमतौर पर पेलेटिंग का मतलब खेत में एकल बीज के लिए होता है। बीज पेलेटिंग को अन्य महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों जैसे कि प्रायमिंग और बीज स्वास्थ्य रखरखाव तकनीक के साथ जोड़ा जा सकता है जो उच्च फसल उपज प्राप्त करने में योगदान देता है। चुकंदर के बीजों के अनियमित आकार के कारणवश बीजों की पेलेटिंग की जाती है। आमतौर पर विभिन्न प्रकार के बीज पेलेटिंग होते हैं जो कि इनोक्युलंट्स पेलेटिंग, सुरक्षात्मक कोटिंग, हर्बिसाइड कोटिंग, पोषक तत्व कोटिंग, हाइड्रोफिलिक कोटिंग और ऑक्सीजन आपूर्तिकर्ता कोटिंग हैं। चुकंदर के पौधे में, सुरक्षात्मक कोटिंग पसंद की जाती है।

चुकंदर में बीज की प्रक्रिया:

बीज पेलेटिंग प्रक्रिया में, बीज को घूमते ड्रमों और पाउडर सामग्री के साथ घुमाया जाता है। पेलेट बनाने हेतु पानी को डाला जाता है जिससे कि मिश्रण बीज पर सही तरह से चिपक जाए। यह इसलिए किया जाता है जिससे परिवहन और ड्रिलिंग के दौरान बीज टूटे नहीं, साथ ही कीट और कवक रोगजनकों से सुरक्षा प्रदान की जा सके। चुकंदर में बीज पेलेटिंग चार अलग–अलग परतों (चित्र 1) में होता है। पहली परत सक्रिय थिरम युक्त कवकनाशी की होती है जो कि कीटाणुनाशक कार्रवाई से बीजों को कवक क्षति से बचाता है। यह परत पतली होती है। दूसरी परत कठोर कोट गोली के गठन के लिए की जाती है। यह परत ठोस और तरल खोल द्रव्यमान के घटकों द्वारा बनाई

जाती है जिसमें अंकुरण क्षमता बढ़ाई जा सके। इसके अलावा, इस परत को परिशुद्धता की आवश्यकता होती है क्योंकि यह उचित वजन और गोली को आकार प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त, यह दूसरी परत तीसरी परत के लिए स्थानिक विभाजक (उपचार और बीज के बीच) के रूप में कार्य करती है। तीसरी परत कीड़ों और बीज जनित रोगों की रोकथाम के लिए अतिरिक्त लेप की होती है जैसे कि अफेनोमाइसिस और पीथियम आद्रपतन रोग। चौथी परत पिग्मेंटेड कोटिंग की होती है जो तीसरी परत पर लागू होती है। यह परत बीज उपचार के घर्षण को रोकने में मदद करती है जो आमतौर पर बीज की ड्रिलिंग के दौरान होती है। इसके अतिरिक्त, यह बीज उपचार एजेंटों को किसानों के सीधे संपर्क से रक्षा करती है।

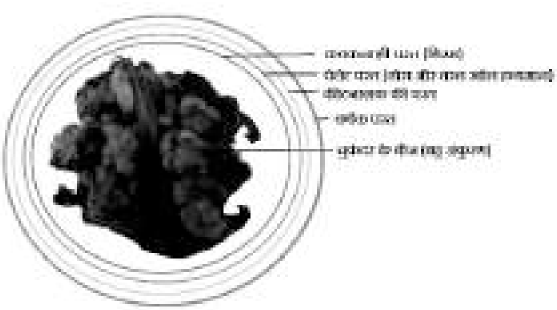

चित्र 1: चुकंदर का पेलेटिंड बीज

चुकंदर में बीजों के लेपन में प्रयुक्त वाले कीटनाशक:

कुछ कीटनाशक जैसे निओनिकोटिनोइड और पाइरेथ्रोइड् इत्यादि का उपयोग चुकंदर के बीजों के लेप/पेलेटिंग में किया जाता है ताकि बीजों को कीटों से होने वाले क्षति से बचाया जा सके। उनके गुणों का उल्लेख नीचे दी गई तालिका में किया गया है:

कीटनाशक	गुण
निओनिकोटिनोइड	1. चूसने और काटने वाले कीटों से पूरे पौधे का संरक्षण। 2. इसका सक्रिय संघटक पौधे के रस के माध्यम से फैलाया जाता है।
पाइरेथ्रोइड्	1. यह उपचारित बीज के अंदर घुसने वाले कीटों को मारता है। 2. इसके सक्रिय संघटक जानवरों द्वारा खाए जाने पर रोकथाम का कारण बनते हैं। 3. हाइपोकोटिल्स से बचाता है। 4. केवल मृदा में कार्य करता है।

बीज पेलेटिंग में उपयोग होने वाले पेलेटिंग सामाग्री तथा उन्हें कैसे चयन किया जाए?

बीज पेलेटिंग के लिए पेलेटिंग सामग्री, चिपकने वाले और साथ ही बीज के उचित उत्पादन के लिए रसायनों की आवश्यकता होती है। पेलेटिंग सामग्री का उपयोग जिप्सम, कैल्शियम कार्बोनेट (चॉक

पाउडर), लकड़ी का चुड़ा, चारकोल, लीफ पाउडर (एल्बिजिया, पोंगामिया, प्रोसोपिस), फ्लाईएश के रूप में किया जाता है जबकि चिपकने के लिए मैदा, गम, रिवाइव, स्टार्च, राइस ग्रेल, साबूदाना तथा रसायनों के लिए मैक्रोन्यूट्रिएंट, कीटनाशक, माइक्रोन्यूट्रिएंट, विटामिन, ग्रोथ रेगुलेटर का उपयोग किया जाता है ।

पेलेटिंग सामग्री का सही चयन करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

1. सामग्री को प्रकृति में छिद्रपूर्ण होना चाहिए ताकि हवा की आवाजाही की अनुमति मिल सके।
2. मृदा की नमी के संपर्क में कोटिंग आसानी से टूटने योग्य होनी चाहिए। इससे बीजों के अंकुरण में शारीरिक बाधा को रोकने में मदद मिलती है।
3. पेलेटिंग के लिए प्रयुक्त सामग्री में कोई विषाक्तता नहीं होनी चाहिए।
4. पेलटिंग के रूप में प्रयुक्त सामग्री का व्यावसायिक महत्व होना चाहिए।

चुकंदर के पौधे में बीज पेलेटिंग के फायदे:

चुकंदर में बीज पेलेटिंग से कई फायदे मिलते हैं। ये हैं:

1 चित्र में समान बीज के उद्भव की संभावना ताकि अंतराल को भरने किए रोपण की प्रक्रिया को रोका जा सके।

2. रोपण में बीज दर में कमी लाता है।
3. एक पौधे से दूसरे पौधे की दूरी को बनाए रखता है।
4. उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है।
5. अच्छे उत्पादन हेतु रसायनों या उर्वरकों के छिड़काव को मृदा पर लगाने से बचाया जाता है।
6. बीज को संभालना आसान हो जाता है क्योंकि बिना पेलेट वाले बीज छोटे और अनियमित आकार के होते हैं।
7. अंकुरित अवस्था में कीट से बचाव को रोकता है।
8. पक्षियों, जानवरों और कीड़ों द्वारा बीजों को खाने/क्षति से सुरक्षा प्रदान करता है।
9. बीजों में ऑक्सीजन की उपलब्धता में वृद्धि करता है।
10. बीजों में नमी की मात्रा बनाए रखता है।

पालतू पशुओं में खुर का बढ जानाः जानकारी एवम् उपचार

असलम
जूनियर रिसर्च फेलो
एन. डी. आर. आई., करनाल, हरियाणा

पालतू पशुओं में खुर का बढना एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। जो पशु चलायमान होते है, उनके खुर घिसते रहते है। जिससे खुर अपने उचित आकार में बने रहते हैं। परन्तु दिन–प्रतिदिन घटते चारगाह, असंतुलित पशुपालन, शहरों में छोटे से छोटे स्थान पार बाँध कर पशुपालन करने, पशुओं के खुरों की उचित देखभाल व कटाई, छंटाई, रगडाई के आभाव में आजकल पशु का खुर अत्यधिक बढ रहा है। जिस कारण पशु चलने फिरने व खड़ा होने में धीरे धीरे असमर्थ होने लगता है। साथ ही पशु के स्वास्थ्य का तीव्र क्षरण भी प्रारम्भ हो जाता है। फलस्वरूप पशु बिमार,कमजोर दिखने लगता है। जिससे उत्पादन कार्य भी बाधित हो जाता है। यह समस्या लगभग छोटे पशुओं बकरी से लेते हुए गाय–भैंस में पाई जाती है। इस समस्या के कारण पशु पालकों को भारी आर्थिक क्षति उठानी पडती है।

खुर बढ़ने का कारण

1. लम्बे समय तक पशु को एक ही स्थान पर बाँध कर पशुपालन करना जिससे पशु के खुर एक ही स्थान पर बंधे रहने के कारण घिसावट के आभाव में निरंतर बढते रहते है।
2. कभी–कभी प्राकृतिक कारणों के हस्तान्तरण या शारिरिक विकृति इत्यादि के कारण से भी पशुओं के खुर में तीव्र वृध्दि देखने को मिलता है।
3. ज्यादा उम्र होने के कारण भी खुर बढते है।
4. कैल्सियम का क्षरण जब पशु शरीर से अधिक होता है। इस दशा में भी पशुओं के खुर में वृद्धि देखी जाती है।
5. पशु जब अत्यधिक कमजोर हो जाता है तब भी खुर बढ जाता है।
6. पशु को जब संतुलित राशन नहीं प्राप्त होता है। तब खुर का बढना जारी रहता है।
7. बैक्टीरीयल बीमारी जो की गंदे बाडों में चराई के दौरान पशु के खुरों में लगती हैं। उसके

कारण भी खुर असमान्य हो जाता है।

8. जब पशु चलने फिरने में असमर्थ हो जाता है तब भी खुर अत्यधिक बढने का कारण है।

लक्षण

उपरोक्त सभी कारणों के कारण एक समय ऐसा आता है। कि पशु के खुर इतना अत्याधिक बढ जाते है की पशु जब चलने की कोशिश करता है तो खुर के अत्यधिक बढे होने के कारण बार–बार पशु को कष्ट होता है। अतः पशु घुटनों के बल अथवा बढे हुए खुर के पैर को मोड कर चलने का प्रयास करता है।

पशु के खुर बढ़े हुए दिखते है।

पशु लगड़ा कर चलता है।

पशु चलना फिरना नहीं चाहता है।

पशु को चलने पर दर्द प्रतीत होता है।

पशु चारा कम हो जाता है।

पशु के शारीरिक वृद्धि में कमी होने लगती है।

मादा पशु समय से गर्मी में नही आती तथा नर पशु प्रजनन के उदासीन हो जाता है।

कभी–कभी पशु के खुर में घाव हो जाता है।

पशु अत्यंत कमजोर, सुस्त दिखता है।

उपचार

पशुओं के खुर बढ़ने की समस्या के उपचार हेतु खुर बढ़े पशु को अन्य पशुओं से अलग कर उसके खुर की कटाई–छंटाई व रगड़ाई करा देना चाहिए।

पशुपालकों को रेगमाल, रेती चाकू आदि से कुशल खुर काटने वाले तथ पशु चिकित्सक की उपस्थिति में पशु के खुर की घिसाई, रगड़ाई कटाई–छंटाई कराते रहना चाहिए।

बचाव व रोकथाम

इस समस्या से बचाव व रोकथाम हेतु पशुओं को लम्बे समय तक एक ही स्थान पर बांध कर खिलाई–पिलाई से बचना चाहिए :

- यदि संभव हो सके तो पशुओं को चारागाह भेजते रहना चाहिए, जिससे प्राकृतिक रूप से खुर घिस कर अपने उचित आकार में बने रहें।
- शहरों अथवा ग्रामीण में पशुपालन को अपनाने से पूर्व पशु चिकित्सकों एवं पशु वैज्ञानिकों से सलाह–परामर्श ले लेना चाहिए। तथा उनके द्वारा बताये गए प्रजाति के पशु को ही पालना

चाहिये। जैसे बकरी की बरबरी नस्ल शहरों में बांधकर पालने हेतु उत्तम है। खुर बढ़े माता अथवा पिता का चयन पशुपालन व्यवसाय में नहीं करना चाहिए।

- पशु के खुरो को भी देखते रहना चाहिए तथा बढ़ा हुआ प्रतीत होने पर तत्काल पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें। पशुओं को संतुलित आहार दिया जाए।
- पशु बाड़े की प्रतिदिन साफ–सफाई कराते रहना चाहिए।
- पशुओं के खुर को कीटाणुनाशक से उपचारित कराते रहना चाहिए।
- पशुपालक को पशुओं के चलने– फिरने, व्यायाम, चराई हेतु पर्याप्त खुले स्थान की व्यवस्था करनी चाहिए।
- शहरी पशुओं को समय समय पर ग्रामीण अंचल में ग्रीष्मकालीन चराई हेतु भेजते रहना चाहिए।
- पशुओं को कच्चे–पक्के दोनों स्थानों पर चलाते रहना चाहिए।
- बढ़े हुए खुरों से निजात पाने के लिए नियमित रूप से कतरन करते रहना चाहिए।

उपरोक्त बचाव व रोकथाम के उपायों का अपनाने से पशुओं में बढ़ते खुर अथवा खुर बढ़ने की समस्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

कृषक जानें अपने अधिकार

सौरभ तोमर[1], अनुराग मलिक[2], हिमानी पूनिया[3], राजेश कुमार[4], एवं डॉ. कुलदीप सिंह[5]

[1]बागबानी विभाग, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

[2,4]बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, [3]जीव रसायन विभाग, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविधालय हिसार, हरियाणा

[5]सहायक संचालक कृषि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

प्राचीन काल से कृषि व्यवसाय से जुड़े रहने के कारण किसान बहुत से आनुवांशिक संसाधन सुरक्षित रखे हुए है। उसके ये आनुवांशिक संसाधन नई किस्मों के विकास के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं तथा उनसे विकसित उन्नत किस्मों के बीजों की बिक्री से बीज कम्पनियां भारी मुनाफा कमा रही हैं। जो लाभ किसानों को मिलना चाहिए था, वो ज्ञान के अभाव में उस लाभ से वंचित है।

विश्व व्यापार संगठन के समझौते अनुसार भारत सरकार ने पौधा किस्म संरक्षण एवं कृषक अधिकार अधिनियम सन् 2001 में लागू किया, जिसके तहत पौधों की किस्मों के संरक्षण तथा भारतीय कृषकों के हितों की रक्षा की जा सकेगी। अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय ने 11 नवम्बर 2005 को ''पौधा किस्म संरक्षण और कृषक अधिकार प्राधिकरण की स्थापाना की । जिस किसी किसान या किसान समूह ने कई किस्म विकसित की है या कोई आनुवांशिक संसाधन सुरक्षित रखा हुआ है, वो इस प्राधिकरण में उसे पंजीकृत करवा सकता है। बसर्ते कि वो किस्म (विशिष्टता, एकरूपता और स्थायित्व) परीक्षण मापदण्डों को पूरा करती हो। पंजीकरण के लिए जारी किए गए ये प्रमाण पत्र वृक्षों व लताओं के मामले में 18 वर्षों के लिए तथा अन्य फसलों के मामले में 15 वर्षों के लिए वैद्य होंगे तथा जब पंजीकरण की अवधि समाप्त हो जाएगी तो यह सामग्री स्वतः ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए उपलब्ध हो जाएगी।

इस अधिनियम के तहत किसानों को निम्नलिखित अधिकार प्रदान किए गए हैं:

(1) जिस किसान ने कोई किस्म प्रजनित या विकसित की है उसे पंजीकरण और सुरक्षा का वही अधिकार होगा जो प्रजनक को किसी किस्म के लिए प्रदान किया जाता है।

(2) कृषकों की किस्म को विद्यमान किस्म के रूप में भी पंजीकृत किया जा सकता है।

(3) कोई भी किसान पौधा किस्म संरक्षण एवं कृषक अधिकार अधिनियम सन् 2001 के अन्तर्गत संरक्षित किस्म के बीज सहित अपनी किस्म को उसी प्रकार बचा सकता है, बो सकता है, इस्तेमाल कर सकता है, विनियम कर सकता है, भागदारी कर सकता है, या बेच सकता है जैसा कि वो इस अधिनियम के लागू होने से पहले कर सकता था। लेकिन कृषक पौधा किस्म संरक्षण एवं कृषक अधिकार अधिनियम सन् 2001 के अन्तर्गत संरक्षित किसी किस्म के ब्रांड वाले बीज को बेचने के लिए प्राधिकृत नहीं होगा।

(3) किसी कृषक को इस अधिनियम के तहत प्राधिकरण या पंजीकरण अथवा न्यायधिकरण या उच्च न्यायालय के समक्ष किसी मुकदमें के लिए किसी प्रकार का शुल्क अदा नहीं करना होगा।

(4) अधिनियम 2001 की धारा 39 (2) के अन्तर्गत किसी किस्म के निष्पादन न करने पर कृषकों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने का प्रावधान भी है।

(5) जो किसान आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण पौधों की भू–प्रजातियों और उनके वन्य सम्बन्धियों के आनुवांशिक संसाधनों का संरक्षण करता है, उसे जीन निधि से पुरस्कृत किया जाएगा।

(6) पौधा किस्म संरक्षण एवं कृषक अधिकार अधिनियम सन् 2001 की धारा 42 में प्रावधान किया गया है कि यदि अधिनियम की पालना में कृषक कोई उल्लंघन करता है तो उसे अपराधी नहीं माना जाएगा यदि वह यह सिद्ध कर दे कि उल्लंघन के समय उसे उस बात का ज्ञान नहीं था।

प्राधिकरण ने पंजीकृत किस्म के प्रजनक द्वारा प्रस्तुत बीज सामग्री को भण्डारित करने के लिए राष्ट्रीय जीन बैंक स्थापित किया है। राष्ट्रीय जीन निधि को पंजीकरण शुल्क, वार्षिक शुल्क या राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से प्राप्त होने वाले दान से वित्तिय सहयोग मिलता है जिसका उपयोग लाभ में भागादारी या क्षतिपूर्ति राशि के रूप में किया जाता है। पौधा किस्म संरक्षण एवं कृषक अधिकार अधिनियम सन् 2001 के अन्तर्गत पंजीकरण प्रमाण पत्र की प्रति प्राप्त होने पर प्राधिकरण प्रमाण पत्र की विषयवस्तु 'भारतीय पौधा किस्म जरनल' में प्रकाशित करता है ताकि अधिनियम के अर्न्तगत लाभ में भागीदारी के लिए दावों को आमंत्रित किया जा सके। कोई भी भारतीय नागरिक या संगठन यह दावा प्रकाशन की तिथि के 6 माह की अवधि के अन्दर कर सकता है।

बाग लगाने पूर्व महत्वपूर्ण बातें

डॉ. कुलदीप सिंह[1], सौरभ[2], प्रीति[3], सौरभ तोमर[4] एवं निर्मल सिंह[5]
[2,3,5]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविधालय हिसार, हरियाणा
[4]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर, उ.प्र.
[1]सहायक संचालक कृषि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

आज के समय में फलों की बढ़ती हुई मांग और दूसरी तरफ पुराने फलोद्यान में कम होता उत्पादन के फलस्वरूप आज के समय आवश्यक है कि नए फल उद्यानों को स्थापित कर आप अच्छी आय के साथ–साथ अपने वातावरण को शुद्ध रख सकते हैं जैसा कि आप जानते है फल वृक्षों का जीवनकाल काफी बड़ा होता है और यदि आप भी बाग स्थापित करने जा रहे है तो बाग स्थापित करने के पूर्व और स्थापित करते समय सभी प्रबंधों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है जिससे कि इन बागो से अच्छे और अधिकतम फलों की प्राप्ति की जा सके अन्यथा किसी भी प्रकार की गलती का खामियाजा हमें लंबे समय तक भुगतना पड़ेगा।

अतः बाग लगाने से पहले और स्थापित करते समय कौन–कौन से कार्य को करना है जिससे कि आने वाले समय में आप अपने फल उद्यान में अधिक से अधिक फलों की प्राप्ति कर सकें इसके लिए बाग लगाने की योजना बनाते समय कुछ मौलिक सिद्धांतों का ध्यान रखना चाहिए जो इस प्रकार हैं।

स्वस्थ बाग की स्थापना हेतु महत्वपूर्ण पहलू हैः

1. सही स्थान एवं उपयुक्त मृदा का चुनाव जिसके अंतर्गत व्यसायिक दृष्टि से बाग लगाने के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करें जो शहर के नजदीक एवं यातायात की पर्याप्त सुविधा हो जहां तक उचित मृदा की बात है तो लगाने से पहले मिट्टी का परीक्षण अवश्य करा लें मिट्टी की रिपोर्ट के आधार पर फल वृक्ष का चुनाव करें जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वर्षा के दिनों में बरसात का पानी ना लगे।
2. बाग की तैयारी और रेखांकन भूमि में फलों की किस्म के अनुसार बाग को भिन्न–भिन्न खंडों और ब्लॉकों में विभाजित कर लेना चाहिए सर्वप्रथम खेत की दो से तीन गहरी जुताई कर और पटा लगाकर खेत को समतल करले फिर स्वेच्छानुसार वर्गाकार विधि या अन्य विधि द्वारा रेखांकन करले।

वर्गाकार विधि : यह बाग लगाने की सबसे सरल एवं लोकप्रिय विधि है इस विधि में पंक्ति से पंक्ति

तथा पेड़ की दूरी बराबर रखी जाती है बाग की प्रारंभिक अवस्था में दूसरे फसल की खेती भी कर सकते हैं।

खरबुजाकार विधि : इस विधि में पेड़ से पेड़ की दूरी बराबर परन्तु पंक्ति से पंक्ति की दूरी कम रखी जाती है। इसमें वृक्ष षटसमबहुभुज के कोणों पे लगाए जाते है तथा इसमें वर्गाकार विधि से 15 पौधे अधिक लगाए जा सकते है। पंचम विधि अगर किसी स्थायी बाग में अस्थायी पौधे लगाने की योजना हो तो इस विधि का उपयोग कर सकते है। ये वर्गाकार विधि के समान ही होती है परंतु इसके केंद्र में एक और पौधा लगा दिया जाता है।

3. गड्ढ़े का आकार और फल वृक्षो की दूरी अलग अलग पौधों के अनुसार गड्ढ़े का आकार और एक दूसरे से दूरी तय की जाती है। जैसेः

फल प्रजाति	**गड्ढ़े का आकार मीटर**	**रोपड़ दूरी**	**पौध संख्या/एकड**
आम	1×1×1	10×10	40
अमरूद	0.75×0.75×0.75	6×6	111
लीची	1×1×1	8×8	62
आंवला	1×1×1	10×10	40
नींबू प्रजाति	0.6×0.6×0.6	5×5	160

सघन बागवानी के लिए दूरी कम कर दी जाती है ।

4. गड्ढ़े की खुदाई एवम भराई रेखांकन के समय पौधे लगाने वाली जगहों पर खूंटियां गाढ़ दी जाती है और अब इन खूटियों के स्थान पर वृक्षों के अनुसार गड्ढ़े की खुदाई की जाती है । खुदाई के समय ऊपर के गहरे रंग की मिट्टी को एक तरफ था नीचे की मिट्टी को दूसरे तरफ रखना चाहिए। खुदाई बाग लगाने के 1 2 महीने पहले करनी चाहिए था गड्ढ़े को खुला छोड़ देना चाहिए इससे कीड़े तथा उसके अंडे सूर्य की तेज गर्मी और हवा से खत्म हो जाते है खुदाई के 15 से 20 दिन बाद ऊपर की मिट्टी में 1.5 किलो सिंगल सुपर फोस्फेट 15 से 20 किलो गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट की खाद को अच्छी तरह से मिला देना चाहिए फिर नीचे की मिट्टी में 40 50 किलो कम्पोस्ट खाद मिलाकर पुनः गड्ढ़े में भर देनी चाहिए। इसी कम्पोस्ट की खाद के साथ 100 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति गड्ढ़े के हिसाब से अवश्य मिला देना चाहिए तथा इसको अच्छी तरह गड्ढ़े में दबा देना चाहिए। अगर दीमक की दिक्कत है तो 100 ग्राम चलोरोप्यरिफोर्स भी गड्ढ़े में मिला देना चाहिए। गड्ढ़े जमीन की सतह से 10 से 15 बउ ऊपर तक भरना चाहिए अब इसके बाद थाला बनाके पानी देना चाहिए । पेड़ लगाने का सबसे उपयुक्त समय जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के अंतिम सप्ताह होता है परन्तु इसे अगस्त माह तक भी लगाया जा सकता है ।

स्वरोजगार हेतु सूकर पालन – लाभकारी व्यवसाय

डॉ0 देवेन्द्र स्वरूप

कृषि विज्ञान केन्द्र थरियांव, फतेहपुर, उ.प्र.

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर, उ.प्र.

19वीं पशुगणना के अनुसार भारत में सूकरों की जनसख्या 10.29 मिलियन है यानि संम्पूर्ण पशूधन का 2.01 प्रतिशत के साथ विश्व में भारत पांचवे स्थान पर है। आसाम के बाद उत्तर प्रदेश 1.33 मिलियन सूकरों के साथ भारत में दूसरे स्थान पर है। फार्म के पशुओं में सूकर सबसे अधिक और जल्दी बच्चे देता है। एक सूकरी एक बार में 12–14 बच्चे देती है। उनकी वृद्धि भी बड़ी तेजी से होती है। 6–8 माह की आयू तक ही बच्चे का शरीर भार 60–65 किग्रा. तक हो जाता है। इस आयु पर ही बच्चे का मांस प्राप्ती के लिये बध किया जा सकता है। एक सूकर से हमें मास, खाने योग्य मांस, कूल्हा, डिब्बा बंद मशाला युक्त मांस और चर्बी (Pork, bacon, ham, sausages and lard) प्राप्त होते हैं जो कि हमारी आवश्यकता को पूरा करने के साथ–साथ विदेशी मुद्रा भी दिलाती है। सूकर से इन खाद्य पदार्थों के साथ–साथ चमड़ा, बाल एव कृषि के लिए उपयोगी खाद भी प्राप्त होता है। सूकर के चमड़े से अनेको सामान मानव उपयोग के लिये तैयार किये जाते हैं। सूकर की विश्टा से खेती के लिये खाद तैयार किया जाता है, इसके विश्टा का मछली पालन में भी महत्वपूर्ण उपयोग है।

सूकर पालन बढ़ते समय के साथ–साथ एक नयं रोजगार के रूप में आकर्षित कर रही है, ग्रामीण क्षेत्रों में इससे रोजगार के नये अवसर बन रहें हैं बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन की व्यवस्था करना अति आवश्यक है। अत' सूकर बहुत जल्दी बढ़ने वाला पशु है और एक मादा द्वारा प्रति व्यात में 12 से 14 बच्चे उत्पन्न होते है। अच्छे प्रबन्ध व अच्छी दशा में रखने पर ये पशु 1 वर्श में 2 बार बच्चे देने में भी समर्थ हैं। इस पशु के कुल शारीकि वनज में से 60–80 प्रतिशत तक मांस होता है। एक साधारण सा किसान/पशुपालक थोड़ी सी पूँजी लगाकर उनके रहने भर का प्रबन्ध करके तथा भोजन की पूर्ण सुविधा देने व अच्छा प्रबन्ध व उचित परिश्रम व समय को लगाकर एक अच्छे व्यवसाय की ही तरह अच्छा–खासा लाभ प्राप्त कर सकता है।

प्रमुख जातियाँ

सूकरों की जातियां का चुनाव करते समय कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

जैसे कि बच्चे का पैदा होने पर वजन, दूध छुड़ाने क पश्चात् वजन, पतिदिन वजन में बढ़ोत्तरी व भोजन को मांस के रूप में उचित वापसी देने वाली जाति का ही चुनाव करना चाहिए यह समस्त गुण इन कुछ जातियों में पाये जोते हैं। जैसे लार्ज व्हाठट, यॉर्क शायर, मिडिल व्हाइट यॉर्क शायर व लैण्ड्रेस।

लार्ज व्हाइट यॉर्कभायर

जन्म स्थान इंग्लैण्ड, कान सीधे, थथून मश्यम, लम्बाई कान व चेहरा प्याली के आकार की तरह होता है, अच्छी उत्पादन क्षमता वाली जाति है।

रंग—पूरे शरीर का रंग कुछ भूरेपन लिये सफेद रंग होता है।

सिर— मध्यम दर्जे का लम्बा चेहरा, चपटा थूथन, कानों के बीच चौड़ी एवं बड़ी होती है

गर्दन— लम्बी कंधों से सूस्पश्ट, विक्सि एवं मजबूती से जुड़ी होती हैं।

नर जानवर का औसन वजन 300—400 किलोग्राम तक

मादा जानवर का वजन 230—320 किलोग्राम तक

मिडिल व्हाइट यॉर्कशायर

जन्म स्थान इंग्लैण्ड, यह लार्ज व्हाइट यॉर्कशायर व बौनी जाति के व्हाइट यॉर्कशायर द्वारा प्राप्त दोगला है और लार्ज व्हाइट मार्कशायर की अपेक्षा कम उत्पादन क्षमता रखता है। यह नस्ल अत्तम प्रकार के मांस वाली नस्ल वाली समझी जाती है।

रंग—पूरे शरीर का रंग सफेद होता है।

सिर— मध्यम दर्जे का छोटा, जबड़ा सीधा और थूथन छोटी

गर्दन— पतली मध्यम लम्बाई की कंधों से भलिंभाँति जुड़ी होती है

वजन— नर जानवर का औसन वजन 250—340 किलोग्राम तक

मादा जानवर का वजन 200—270 किलोग्राम तक

लैन्ड्रेस

इस नस्ल का जन्म स्थान डेनमार्क है, यह नस्ल उत्तम प्रकार के मांस के लिए पाली जाती है।

रंग— यह सफेद रंग की होती है। पर त्वचा पर जगह—जगह काले रंग के धब्बे पाये जाते हैं।

इस नस्ल का शरीर लम्बा, थूथन, गहरी चकौर कूल्हें सुगढ़ित जबड़े व भारी लम्बे लटकने वाले नीचे को झुके कान होते हैं।

नर का वनज 300 से 350 किलोग्रम

मादा का वनज 200 से 250 किलोग्राम तक होता है।

अच्छे उत्पादक स्टाक का चुनाव निम्न बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए

मादा के बच्चे देने की क्षमता, एक मादा उत्पादित सम्पूर्ण समूह की क्षमता व शक्ति, मादा के दूध देने की की क्षमता, मातृत्व, स्वभाव, शारीरिक बढ़वार, भोजन ग्रहण करने की क्षमता लम्बे समय तक बच्चे पैदा करने की क्षमता तथा उत्पादकता में किसी भी प्रकार त्रटि ने रखने वाला सूकरों का ही चुनाव करना लाभप्रद होता है। मादा को एक व्यात में 10 व उससे अधिक कच्चे को देने में समर्थ होना चाहिए। एक मादा द्वारा लिए गये सारे बच्चों को वजन दूध छुटाने के पश्चात् 120 किलोग्राम होना चाहिए और मादा का वजन 150 किलोग्राम व एक गिल्ट और बोर की 6 माह का आयु पर 85–90 किलोग्राम वजन होना चाहिए।

सूकर का भोजन

यह एक साधारण पेट वाला जानवर है जिससे कि यह सम्पूर्ण धारे का समुचित लाभ नहीं प्राप्त कर पाता है। इसलिये इस जानवर को चारे की अपेक्षा दाना अधिक खिलाना चाहिए। सम्पूर्ण पूँजी को 80 प्रतिशत भाग भोजन पर व शेश भाग अन्य आवश्यकताओं पर व्यय करना चाहिए। इन को अच्छी किस्म का भोजन देना चाहिए क्योंकि भोजन की किस्म का प्रभाव सीधा इनकी बढ़वार पर होता है, इनके साथ–साथ भोजन की किस्म का प्रभाव, समूह की शक्ति, लगातार बच्चे देने की क्षमता, दूध की मात्रा व संरचना और मांस की किस्म, इन समस्त बातों पर भोजन के प्रकार का प्रभाव होता है।

प्रोटीन व ऊर्जा की आवश्यकता

	पशु की किस्म/श्रेणी	प्रोटीन प्रतिशत	ऊर्जा
1.	दूध पीने वाला बच्चा	20%	80%
2.	45 किग्रा0 तक वाले सूकर	14%	80%
3.	90 किग्राम तक वाले सूकर	14%	65-80%

सूकरों के लिए मिनरल मिक्सचर

हड्डी का चूरा 6 भाग, चूना पत्थ्र 2.5 भाग, चारकोल एक भाग, लकड़ी की राख एक भाग, साधारंण नमक 0.5 भाग, पोटैशिम आयोडाइड 19 ग्राम प्रति 100 किग्रा0 मिनिरल मिक्सचर में।

एन्टीबायोटिक

क्लोरोढेट्रा साइकिलीन (ओरोमाइसिन) या टेरामाइसिन, या पैनीसिलिन/बांऊरासिन इनमें से कोई भी 10–20 मिलिग्राम प्रति किग्रा0 भोजन पर।

भोजन का उपभोग

सूकर का वजन	**भोजन का उपभोग प्रतिदिन प्रति प ा**
25 किग्रा.	2.0 किग्रा.
50 किगा.	3.2 किग्रा.
100 किग्रा.	5.3 किग्राम.
150 किग्रा.	6.8 किग्राम.
200 किग्रा.	7.5 किग्रा.
250 किग्राम.	8.3 किग्रा.

सूकरों की भोजन सामग्री

भोजन सामग्री % मे		**ऊपरी भोजन दूध छुड़ाने तक**	**बढ़वार के समय भोजन 20—40 किग्रा.**	**समापन भोजन किग्रा. वजन**
1.	खली (मोमफली)	16—18%	14—16%	13—14%
2.	दाना (मक्का ज्वार)	60—65%	50—55%	40—50%
3.	गेहूँ की भूंसी व राईस पालिश	5%	10%	20%
4.	लूर्सनमील (रिजका)	——	5—8%	——
5.	मि0मिक्स0 (मिनरल मिक्सचर)	0.5%	0.5%	0.5%
6.	एन्टीबायोटिक (mg)	40	20	10

सूकरों के आवास की आवश्यकता

सूकरों की श्रेणी		**वर्ग मी. बन्द स्थान प्रति जानवर**	**वर्ग मी0 में खुला स्थान प्रति जानवर**	**घनमी. में हवा के लिए स्थान**	**पीने वाला पानी ली0 में**
1.	बोर	6.25—7.5	8.8—10.0	11.5	4.5-5.0
2.	फैरोइंग	7.5—9.0	8.8—12.0	11.5	1.8-2.0
3.	विनर	0.96—1.8	8.8—12.0	8.5	3.5-4.0
4.	शुष्क मादा सुअर	1.8—2.7	1.4—1.8	8-5	4.5-5.0

ग्रामीण दशा में एक रहने वाले स्थान का साइज 3 मीटर x 2.4 मीटर अथवा 3 मीटर x 3 मीटर होना चाहिए।

स्वास्थ्य प्रबन्धन

1. आवास साफ एवं सुखा हो
2. जल निकासी का उचित प्रबन्ध हो जिससे
3. सूकरों में नियमित रूप से कृषि नाशक दवओं को प्रयोग।
4. खाज, खुजली व जुएँ आदि रोकने के लिए दवाओं का छिड़काव करना चाहिए।
5. नये जानवरों को पुराने से अलग करना।
6 बीमार जानवरों को स्वयं जानवरों से अलग कर उचित इलाज की व्यवस्था करना।
7. अच्छे खनिज चुर्ण का प्रबन्ध हो जिसमें लोहां हो।
8. विटामिन युक्त अच्छा पाचक भोजन देना।
9. पशुओं के आराम की व्यवस्था होनी चाहिए।
10. सूकर बुखार'' व अन्य बिमारियों से बचाने के लिए समयानुसार टीका लगाना चाहिए।
11. अच्छी फैली हुयी छत हो जिससे खुली हवा का आदान प्रदान अच्छी तरह से हो सके।

सूकर की प्रजनन सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचना

1.	यूवा मादा को पहली बार गाभिन करने का समय	6 से 8 माह
2.	गर्भाने का चक्र	18 से 24 दिन औसन 21 दिन
3.	गरम रहने की अवधि	2 से 3 दिन
4.	प्रजनन का उचित समय	गिल्ट (पदिया) गरम होने का पहला दिन मदा—गरम होने का दूसरा दिन
5.	गभित होने के लिये कितनी बार प्रजनन की आवश्यकता है	पहले दिन एक बार प्रजनन, देसरे अथवा तीसरे दिन एक एक बार
6.	मादा के प्रजनन की उम्र	10 से 12 माह
7.	मादा को गर्भित करने का वजन	90 से 100 किलोग्रा प्रजनन के लिये उम्र से ज्यादा वजन का ध्यान रखना चाहिए।
8.	नर का प्रजनन करने का उम्र	अच्छी वृद्धि वाला नर 7 से 8 माह में प्रजनन के लिये तैयार होता है लेकिन इसको 12 माह बाद प्रजनन के लिये सलाह दी जा सकती है।
9.	नर का प्रजनन करने का बजन	100 से 120 किग्र. (12 माह में)
10	प्रजनन के लिए कितनी बार सलाह देना	जवान नर एक सप्ताह में दो बार लेकिन

		दिन में दो बार प्रजनन कराना चाहिए एवं परिपक्व नर सप्ताह में दो बार तथ दिन में दो बार कर सकता हैआवश्कतानुसार सही परिपक्व नर काप्रत्येक प्रजनन में प्रयोग कर सकते है।
11.	अथिंक रूप से कितने दिन तक सूकर को प्रजनन प्रयोग कर सकते हैं	2 से 5 साल के बाद भी अगर सुकर में अच्छा बच्चा उत्पादन करने की क्षमता हो तो प्रयोग कर लेना चाहिए
12.	एक नर के साथ कितनी मादा रहनी चाहिए	10 मादा
13.	गर्भ काल का समय	औसत 112–114 दिन तीन माह, तीन सप्ताह तीन दिन।
14.	एक बार ब्याने के समय कितने बच्चे देती है	8 से 9 कभी 10 से 14 तक
15.	कितने दिन तक बच्चा माँ का दूध पियेगा	56 दिन (8 सप्ताह)
16.	बच्चे का माँ से दूध छुडाने के बाद कितने बच्चे जीवित रह जाते है।	8 से 10
17.	बच्चों को माँ का दूध छुटाने के बद मादा कब फिर गरम होगी	2 से 10 दिन बाद
18.	दो ब्यात का मध्य काल	7 से साढ़े सात माह सामान्यतः 15 माह में दो बार बच्चा देती है।
19	बधिया करने का सही समय	4 से 8 सप्ताह

सूकरों की खिलाई पर कुछ व्यावहारिक नियम

इस व्यवसाय में यदि उक्त राशन के साथ–साथ सूकरो को खाने की अन्य वस्तुए जोकि बायोंप्रोडक्ट के रूप में खद्यान्न, सब्जियों आदि फैक्टरियों से मिल सकती हैं के द्वारा पूर्ति की जा सकती है। शहरों में होटल से बची हुई जूठन गांओं में गन्ने की खेयी, वरसीन प्रति पशु खिलाने पर राशन में एक किलों से दो किलो की कटौती की जा सकती है। सूकर राशन जितना ही सस्ता और पौश्टिक होगा उतना ही उनसे पशुपालक लाथ उठा सकेगें। क्योंकि सूकर को एक किलो शारीरिक भार ग्रहण करने के लिए 3–4 किलो राशन की जरूरत पड़ती है। जैसे जैसे सूकर बढ़ते हैं उनकी खुराक बढ़ती जाती है। लगभग 7 से 9 माह के अन्दर इनका वजन 70 किलो से अधिक हो जाता है। अतः 6 माह की उम्र में सूकरों को वेच देना चाहिए।

1. सूकरों के खाने में कोई भी परिवर्तन अचानक नहीं करना चाहिये, न ही उनके खिलाने के शिड़यूल में कोई अचानक परिवर्ततन करना चाहिए।
2. प्रत्येक एक किलोग्राम शारीरिक भार की बढ़ोत्तरी के लिये 50 ग्राम दाना बढ़ाया जाना चाहिए।
3. सूकरियों जो प्रजनन हेतु रखी जाती है। (लगभग 80 किलोग्राम वजन) उनको 2 वे 2.5 किलोग्राम दाना प्रतिदिन खिलाना चाहिए।
4. प्रजनन से पहले गिल्टस को 2.75 से 3.0 किलोग्र0 दाना प्रतिदिन खिलाना चाहिए।
5 प्रजनन के पश्चात सूकरियों को 1.5 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम शारीरिक भार पर मिलना चाहिए।
6. ग्याभिन होने के बाद नव बच्चे (गर्भ मे) की बढ़ोत्तरी प्रारम्भ हो जाती है उस समय 5–6 किलोग्राम वरसीम या लूसर्न दाने के अतिरिक्त प्रतिदिन खिलाना चाहिये।
7. जब सूकरियां दूध देती हों, उस समय 1.5 से 4 किलोग्राम दाना प्रति सूकरी उसके साथ बच्चों की संख्या व वजन के अनुसार खिलाना चाहिये।
8. राशन के प्रोटीन प्रतिशत के अनुसार खिलाई :

आयु (माह)	वजन (किग्रा0 में)	खिलाई की मात्रा / दिन (किगांम में)	प्रोटीन प्रतिशत (%)
2–3	10– 22	0.5	18
3–4	23–35	1.00	16
4–5	36–47	1.5	16
5–6	48–60	2.0	16
6–7	61–75	2.5	14
7–8	76–90	2.5	14
प्रजनन हेतु सूकरियां (गिल्टरा)	80–90	2.5	14
दूध देने वाली सूकरियां	90–110	2.5–4.00	15
नर	90–110	2.00	14

अमरूद में बहार नियंत्रण

सौरभ[1], प्रीति[2], डॉ. कुलदीप सिंह[3], सौरभ तोमर[4] एवं निर्मल सिंह[5]
[1,2,5]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविधालय हिसार, हरियाणा
[4]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर
[3]सहायक संचालक कृषि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

फलों की बागवानी में अमरूद का एक महत्वपूर्ण स्थान है । इसकी बहुउपयोगिता एवं पौष्टिकता को ध्यान में रखते हुए लोग इसे 'गरीबों का सेब' भी कहते हैं इसमें विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है अमरुद से जैन शैली नेक्टर आदि परीरक्षित पदार्थ भी तैयार किए जा सकते हैं उत्तरी व पूर्वी भारत में अमरूद दो बार फल देता है एवं पश्चिमी और दक्षिणी भारत में वर्ष में तीन बार फल आते हैं जिसे अम्बे बहार मृग बहार एंवम हस्त बहार कहते हैं।

बहार नियंत्रण का उद्देश्य

अमरूद में तीन बार फूल आते हैं फरवरी–मार्च, जून–जुलाई, अक्टूबर–नवंबर अतः अवांछित बहार के फूलों को विभिन्न क्रियाओं द्वारा हटाकर गुणवत्ता युक्त बहार के फलों का उत्पादन करके किसान अपनी आय बढ़ा सकता है ।

अम्बे बहार

इस फसल के फल स्वाद में कम मीठे एवं कम गुणवत्ता युक्त होते हैं जिससे बाजार मूल्य नहीं मिल पाता है।

मृग बहार

भारत में मुख्यतः मृग बहार की फसल लेते हैं क्योंकि अन्य दोनों बहार की तुलना में मृग बहार के फल गुणवत्ता, स्वाद और उपज में सर्वोत्तम रहते हैं अतः मृग बहार में अधिक फूलों और बड़े आकार के फलों का उत्पादन स्वाद में मीठे एवं गुणवत्ता युक्त फलन प्राप्त करने के लिए वर्षा ऋतु वाली फसल अर्थात अंबे बहार के फूलों का नियंत्रण किया जाता है।

हस्त बहार

फलों की गुणवत्ता के हिसाब से हस्त बहार भी अच्छी रहती है इसमें फ्लोर का स्वाद अच्छा होता है लेकिन उपज कम मिलती है।

अंबे बहार को रोकने के तरीके

जड़ों के पास की मृदा को निकाल कर – इस विधि में सिंचाई भी बंद कर दी जाती है तथा जड़ों के आसपास की ऊपरी मृदा को अप्रैल–मई में सावधानीपूर्वक खोदकर बाहर निकाल दिया

जाता है जिससे जड़ों को प्रकाश अधिक मात्रा में प्राप्त होता है परिणामस्वरूप मृदा में नमी की कमी हो जाती है एवं पत्तियां गिरने लग जाती है और पेड़ सुसुप्त अवस्था में चले जाते हैं 20 – 25 दिनों बाद जड़ों को मिट्टी द्वारा फिर से ढक दिया जाता है और खाद देखकर सिंचाई कर दिया जाता है इस विधि के प्रयोग से पेड़ों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा पेड़ों की आयु कम हो जाती है।

उर्वरकों का प्रयोग

जून के महीने में उर्वरकों का प्रयोग करके भी मृग बहार के फूलों की संख्या बढ़ाई जा सकती है अतः इस प्रक्रिया द्वारा किसान अच्छी ज्यादा और गुणवत्ता युक्त फलन प्राप्त कर सकता है।

सिंचाई पानी को रोक कर

जिस बहार के फल प्राप्त करना है उससे एक से डेढ़ माह पूर्व सिंचाई बंद कर देते हैं। मृग बहार लेने हेतु पेड़ों को गर्मी के दिनों में पानी देना बंद कर देते हैं जिससे पत्तियां गिर जाती है और पेड़ सुसुप्त अवस्था में चले जाते हैं इस दौरान पेड़ अपनी शाखाओं में खाद्य पदार्थ का संरक्षण करते हैं इसके बाद मध्य मई में बगीचों की गुड़ाई करके और खाद देने के बाद सिंचाई की जाती है जिससे 25–30 दिनों बाद मृग बहार में अधिक मात्रा में फूल खिलते हैं और शरद ऋतु में फल तैयार हो जाते हैं।

पादप वृद्धि नियंत्रको का उपयोग

इस विधि में वृद्धि नियाम को जैसे नेपथीलीन एसिटिक एसिड 30 ग्राम नेपथिलीन एसिट एमाइड 50 पीपीएम, 2–4 डी (10–30 पीपीएम) और यूरिया 10: आदि का छिड़काव किया जाता है। अतः हमें जिस बहार के फल नहीं चाहिए उस बहार के फूलों के खिलने पर उसे झड़ाने के लिए इन वर्द्धि नियामकों का छिड़काव करते हैं।

फूलों को झड़ाकर

इस विधि में फूलों को हाथ से या पादप नियंत्रको का उपयोग करके हटाया जा सकता है। सामान्यतः अप्रैल के अंत में तथा नई माह के शुरुआत में आने वाले सभी फूलों और फलों को तोड़ दिया जाता है तथा 15 दिन बाद आने वाली नई कलियों और फूलों को भी तोड़ दे तो मृग बहार में अच्छा फल उत्पादन किया जा सकता है।

पेड़ों को झुकाकर

जिस पेड़ की शाखा सीधी रहती है वह बहुत कम फल उत्पादन करती है। अतः ऐसे पेड़ों की सीधी शाखाओ को अप्रैल मई माह में झुकाकर जमीन में बाँस या खूंटा गाड़कर रस्सी की सहायता से बांध दिया जाता है और शाखाओ की शीर्ष की उपरी 10–12 जोड़ी पतियों को छोडकर अन्य छोटी–छोटी शाखाओं, पतियों , फूलों और फलो को काट–छांट कर अलग कर दिया जाता है।

जैविक कृषि की नवीनतम तकनीकी का संचालन एवं लागत को घटाने की रणनीति

धर्मेन्द्र कुमार[1], ए. के. मल्ल[1], वरूचा मिश्रा[1], संतेश्वरी[1], अश्वनी कुमार[2]

[1]फसल सुधार विभाग, भाकृअनुप – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ – 226 002, उ.प्र.

[2]उत्तर प्रदेश कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ, उ.प्र.

कृषि उत्पादन की वह विधि जिसमें कृत्रिम रूप से निर्मित उर्वरकों, कीट/रोग नाशकों और पादप वृद्धि रसानयों का प्रयोग या तो बिल्कुल न किया जाता हो या बहुत कम किया जाता हो। मुख्य रूप से फसल लगाने की यह पद्धति फसल चक्र अपना कर, मूसला जड़वाली दलहनी फसलों के उगाने के बाद उकठा जड़ वाली फसलों का उगाना, फसल अवशेषों का भूमि में समावेश करना, जैविक खाद और हरी खाद का प्रयोग करके अपनाई जाती है। यह एक कृषि विविधिकरण की पद्धति है जिसमें फसल उगाने के साथ–साथ जानवरों को एकीकृत करके प्रबंधन करना होता है।

हरित क्रान्ति के आगवन से उर्वरकों, कीट/रोगनाशी दवाओं का और खरपतवार नाशक रसायनों का अंधाधुद प्रयोग होने लगा है। इसका दुष्परिणाम हुआ है कि मृदा, जल और वातावरण के स्वास्थ्य में भारी गिरावट आयी है। इसका परिणाम यह भी हुआ है कि पशुओ, मनुष्यों और अन्य जीव जन्तुओं के स्वास्थ्य में भी गिरावट आयी है और नई–नई बीमारियों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है।

उपरोक्त दुष्परिणामों के निस्तारण के लिये जैविक कृषि ही एक मात्र विकल्प है। परन्तु जैविक कृषि इस पद्धति की हो जिसका संचालन सरल और सुगम हो और लागत भी ऐसी हो जिसको छोटे और सीमांत किसान अपना कर अपने परिवार का भरणपोषण कर सकें। नीचे कुछ सरल जैविक कृषि पद्धतियों का वर्णन किया गया है।

1. जीव परिवर्तनात्मक (बायोडानेमिक) कृषि : यह कृषि की वह पद्धति है जिसमे फार्म का एक जीवित इकाई माना जाता है जो कि वातावरण से मिलकर मृदा का इस प्रकार से स्वास्थ्य और सक्रिय बनाता है जो कि उन खाद्य पदार्थों का उत्पादन कर सके जो कि मनुष्य को ऊर्जा देकर उनका भरणपोषण कर सके।

इस कृषि पद्धति के मुख्य अवयव निम्नलिखित हैः–

1) फसल के अवशेषों, भूसा और हरी खाद / हरे पौधों को मिट्टी में पलटकर मिलाना।

2) रसायनिक उर्वरकों और कृत्रिम कीट / रोग / खरपतवार नाशकों का प्रयोग न करना।

3) मशीनों या बैलो द्वारा भूमि की जुताई करके उसको ठोस न करें।

4) भूमि को चारागाह, फसलों या फसल के अवशेशों से ढककर रखना।

5) भूमि की संरचना को अधिक जुताई करके न बिगाड़ना।

6) भूमि को पर्ती न छोड़कर उसमें गहरी जड़वाली चारागाह पेड़ो को उगाना या हरी फसलों या पौधों से ढककर रखना।

7) उपक्रम वीडी 500 और वीडी 501 का प्रयोग करना।

8) उपक्रम वीडी 502 और वीडी 507 की खाद बनाना।

9) उपक्रम वीडी 502 और वीडी 507 से द्रव खाद बनाना।

10) उपक्रम वीडी 502 और वीडी 507 से काउपेट पिट खाद बनाना।

यह उपक्रम (वीडी 500–वीडी 507) पौधों के पोषक तत्व नहीं है बल्कि यह कम्पोस्ट बनाने वाले जीवाणओं को क्रियाशील बनाते है। अब तक 9 ऐसे उपक्रम (वीडी 500 से वीडी 508) बनाये जा चुके है। लेकिन इनमें से वीडी 500 (गाय के सींग की खाद) और वीडी 507 (सींग की सिलिका) किसानों में बहुत प्रचलित है। उपक्रम वीडी 502 से वीडी 507 कम्पोस्ट को उपजाऊ बनाते है। उपक्रम वीडी 508 बीमारियो के नियंत्रण में सहायता करता है।

2. ऋषि कृषि विधिः यह वेदों से उघ्रित की गई है जो कि प्राकृतिक कृषि पद्धति है और यह महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के किसान विस्तृत रूप से अपना रहे है। इस विधि में जैविक पदार्थों (कम्पोस्ट) पशुओं के गोबर की खाद, हरी पत्तियों की खाद और फसलों का अवशेष) का दोहन करके भूमि को उर्वरक बनाया जाता है। इसके लिये . ऋषि कृषि उपक्रम जिसे 'अभृतपानी' कहते है उत्पन्न किया जाता है। इसके लिये 15 किलो मिट्टी बरगद के पेड़ के नीचे से एकत्रित करके एक एकड़ क्षेत्र में फैला दी जाती हे फिर इसको 200 लिटर अमृत पानी से उपजाऊ बनाया जाता है। अमृत पानी को बनाने के लिये 250 ग्राम घी को 10 किलो गोबर, 500 ग्राम शहद को 200 लिटर पानी में घोल लिया जाता है। इस उपक्रम को बीजोपचार (बीज संस्कार), मृदा उपचार (भूमि संस्कार) और पौधों पर पर्णीय छिड़काव (पादप संस्कार) में प्रयोग किया जाता है। मृदा उपचार के लिये अमृत पानी को सिंचाई के पानी में मिश्रित करके खेत में प्रवाहित किया जाता है। इसका सुप्रभाव फल, सब्जियाँ, अनाज, दलहन, तिलहन, गन्ना और कपास पर देखा गया हैं।

3. पंचगव्य कृषि विधिः यह उपक्रम पांच पदार्थो (गोबर, पेशाब, दूध, दही और घी) को मिलाकर बनाया जाता है। इसका लाभदायक प्रभाव बागवानी और कृषि फसलों पर देखा गया है। इसमें कई लाभदायक सूक्ष्मजीव जैसे फफूँदी, जीवाणु, एक्टीनोमाईसीट्स और सूक्ष्म पोशण तत्व पाये जाते है। इसकी कीमत मात्र 25–35 रू प्रति लीटर होती है।

4. प्राकृतिक कृषि (नेचुरल फार्मिग): कृषि की इस पद्धति फार्म पर उपलब्ध जैविक संसाधनों का उपयोग करके भूमि की उर्वरा शाक्ति बढ़ाने में किया जाता है। यह उर्वरता जीवामृत के प्रयोग से स्थापित की जाती है। इस जीवामृत की बीज व रोपाई वाले पौधों का उपचार किया जाता है। यह विभिन्न प्रकार के लाभदायक सूक्ष्मजीवियों से भरपूर होता है। 200 लिटर जीवामृत एक एकड़ क्षेत्रफल में एक बार छिड़काव के लिये पर्याप्त होता है। यह सिंचाई के पानी या बूंद या छिड़काव द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। मल्च को खेत के ऊपर फैलाकर इस जीवमृत को उसके ऊपर छिड़का जा सकता है।

5. नेटूको कृषि पद्धति (नेटूको फार्मिग): यह पद्धति व्यवसायिक एवं अंधाधुद रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग द्वारा अपनाई जाने वाली पद्धति का विकल्प है। उस पद्धति का मुख्य सिद्धांत है अधिक से अधिक सूर्य ऊर्जा का दोहन करना होता है। यह पद्धति निम्न तीन मूल्य सिद्धांतो पर आधारित हैः

1) भूमि– फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलाकर मिट्टी की उर्वरता बढ़ाना।

2) जड़ें– जड़ों के सफेद क्षेत्र का विकास करना जिससे पानी और खनिज पोषक तत्वों का अवशोषण कुशलता पूर्वक हो सके।

3) केनोपी (छतरी)– सूये ऊर्जा के दोहन के लिये केनोपी का विकास करना जिससे अधिक से अधिक मात्रा में कुशलतापूर्वक प्रकाश संश्लेषण हो सके।

सभी जैविक क्रियाओं के लिये सूर्य ऊर्जा एक मात्र शोत्र है। प्रकाश संश्लेशण एक मात्र ऐसी जैविक क्रिया है जिसके माध्यम से सूर्य ऊर्जा का दोहन होता है। आकलऩ से ज्ञात हुआ है कि प्रकाश संश्लेषण की क्षमता यानी सूर्य ऊर्जा का दोहन मात्र 1.5 से 2.5 प्रतिशत होता है। इस मात्रा को बढ़ाने के लिये पत्ती के क्षेत्रफल सूचकांक (पत्ती का क्षेत्रफल प्रति वर्ग मीटर भूमि में) को बढ़ाना पड़ेगा जिसके लिये खेत को हरित पेड़ पौधों से अधिक से अधिक आच्छादित करना पड़ेगा। इस लेख का मुख्य उद्देश्य विशिष्ट कृषि पद्धतियों से खेत को हरी फसल से आच्छादित कर के अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना है।

कार्यक्रम – 1

कार्यशाला सम्पन्न

''मुख्य पर्यावरणीय एवं कृषि मुद्देः नीति व अभ्यास में नये विकास'' नामक विषय पर सात दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला

सोसाइटी ऑफ बॉयलाजिकल साइंसेस एवं रुरल डेवलपमेंट, प्रयागराज तथा भारतीय गो विज्ञान सेवा समिति, प्रयागराज के संयुक्त तत्वाधान द्वारा सात दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला का शुभआरम्भ दिनांक 20 दिसम्बर 2019 को सनशाइन रॉयल पैलेस, प्रयागराज (उ.प्र.) में हुआ। इस कार्यशाला में अतिथियों का स्वागत तथा कार्यक्रम की पूरी जानकारी डॉ0 हेमलता पन्त, सचिव, सोसाइटी ऑफ बॉयलोजिकल साइंसेज एण्ड रुरल डेवलपमेंट (प्रयागराज) ने दी।

कार्यशाला के मुख्य अतिथि माननीय कुलपति उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय (प्रयागराज) प्रो0 के0एन0 सिंह थे। प्रो0 सिंह ने अपने उद्बोधन में कहा हमारी जनसंख्या के भरण–पोषण हेतु कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु विभिन्न प्रकार के रासायनिक खादों, उर्वरकों आदि का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग हो रहा है जो हमारी मृदा, पशु, पक्षियों के स्वास्थ्य के साथ ही हमारे पर्यावरण पर भी विपरीत प्रभाव डाल रहा है, अतः हमें पर्यावरण मित्र कृषि के तौर–तरीके पर जागरूक होना चाहिए।

कार्यशाला की अध्यक्षता प्रो0 कृष्णा मिश्रा, पूर्व महासचिव, नासी ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में बताया कि जैव प्रौधोगिकी की विभिन्न तकनीकों का प्रयोग कर हमें पर्यावरण प्रदूषण को कम कर सकते हैं। हमें सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जीवाणुओं आदि के प्रयोगों के बारे में भी जागरुक होना पड़ेगा। इस कार्यशाला में 'इनोवेशंस इन एग्रीकल्चर, इनवायरमेंट एण्ड हेल्थ रिसर्च फार इकोलाजित रिस्टोरेशन नामक संपादित पुस्तक का विमोचन भी मंचासीन अतिथियों द्वारा किया गया। इस कार्यशाला का संचालन डॉ0 ज्योति वर्मा, सहायक आचार्य, जन्तु विज्ञान विभाग, सी0एम0पी0 कालेज (प्रयागराज) द्वारा तथा धन्यवाद ज्ञापन पीयूष रमण पाण्डेय, विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, गेकू अरुणाचल प्रदेश ने दिया। कार्यशाला के उद्घाटन सत्र में डॉ0 भावना श्रीवास्तव, डॉ0 रन्नंजय सिंह, डा0 हीरालक्ष्मी जडोन, डा0 प्रदीप कुमार के उनके क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हेतु सम्मानित किया गया।

इस कार्यशाला में प्रो0 डी0 प्रसाद, प्रो0 ए0आर0 सिद्दीकी सहित देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों, संस्थाओं, महाविद्यालयों के प्राध्यापक, वैज्ञानिक व शोध छात्र–छात्रायें एवं विद्यार्थी शामिल थे।

डॉ0 हेमलता पन्त
सचिव

आम से बनने वाले संसाधित खाद्य एवं पेय पदार्थ

सौरभ[1], डॉ. कुलदीप सिंह[2], प्रीति[3], सौरभ तोमर[4] एवं निर्मल सिंह[5]

[1,3,5]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविधालय हिसार, हरियाणा

[4]बागबानी विभाग, कृषि महाविद्यालय,चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर, उ.प्र.

[2]सहायक संचालक कृशि, जिला श्योपुर, म.प्र. शासन

फलों का राजा आम हरियाणा का एक महत्वपूर्ण फल है। आम विटामिन, फ्लावनोईड, एंटीऑक्सीडेंट्स, डाइटरी फाइबर और मिनरल्स से भरपूर है। इसमें विटामिन ए, सी और डी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो कि शरीर की संपूर्ण सेहत में सुधार लाने में उपयोगी है। आम का सेवन फल ,जूस या शेक के रूप में किया जाता है पिछले कुछ वर्षों में भारत में फल प्रसंस्करण में अच्छी प्रगति हुई है जिसमें आम से बने पदार्थों की भागीदारी काफी अधिक है। फिर भी अन्य विकसित एवं विकासशील देशों की तुलना में भारत का प्रसंस्करण उद्योग काफी पीछे है कच्चे एवं पके आम से कई प्रकार के संसाधित पदार्थ बनाए जा सकते हैं।

कच्चे आम के परीरक्षित उत्पाद

अमचूर

छोटे–बड़े कच्चे आम को छीलकर 1 प्रतिशत पोटैशियम मेटाबाईसल्फाइट के पानी में रख दे। इसके बाद फांके काट कर इसी पानी में डाल दे। कुछ देर पश्चात फांको को पानी से निकालकर 0 ।1– 0 ।5 प्रतिशत नमक तथा 0–1 प्रतिशत पोटैशियम मेटाबाईसल्फाइट मिलाकर एलुमिनियम के बर्तन में धूप में सुखा लें अच्छी तरह से सूखने के बाद इसे पॉलिथीन के बैग में रख ले और इन्हीं फांको को कूटकर आवश्यकता अनुसार अमचूर बना ले।

अचार

कच्चे आम को अच्छी तरह से धोकर 4 से 6 टुकड़ों में काट कर बीज निकाल ले । इसके लिए रामकेला किस्म सर्वश्रेष्ठ है दी गई मात्रा के हिसाब से नमक में हल्दी मिलाकर एलुमिनियम या कांच के बर्तन में रखकर धूप में तब तक रखें जबतक की टुकड़ों का हरा रंग समाप्त होकर हल्का पीला होने लग जाए लहसुन और अदरक को मोटा पीस लें तथा शेष मसालों का पाउडर बनाकर टुकड़ों के साथ मिलाकर कुछ समय के लिए धूप में रख दे इसके बाद तेल को गर्म करके ठंडा कर

लें। अब तैयार टुकड़ों को बर्तन में भरकर अच्छी तरह दबा दें जिससे उसके बीच की हवा निकल जाए और इसके बाद तेल को इतना भर दे कि तेल अचार के ऊपर तक आ जाए। लगभग 5–7 दिन के बाद उपयोग करने के लायक हो जाता है।

आम का बिना तेल का अचार

आम की फांके 1 किलो, नमक 200 ग्राम, हल्दी 25 ग्राम, कलौंजी 30 ग्राम, मेथी 100 ग्राम, लाल मिर्च 10 से 20 ग्राम, काली मिर्च 5 ग्राम, सौंफ 50 ग्राम, हींग 2 ग्राम

बनाने की विधि – तेल के अचार की भांति।

आम–पन्ना

2 किलो कच्चा आम 500 से 700 मिलीलीटर पानी में 25 से 30 मिनट तक उबालें। उसके बाद आम को ठंडा करके गुद्दा निकालकर छलनी से छान ले इससे रेशे बाहर निकल जाए तैयार पल्प में ढाई सौ ग्राम पुदीना की पत्तियों को पीसकर मिला दें। नमक 75 ग्राम, लाल मिर्च 30 ग्राम, जीरा भूना पिसा 50 ग्राम, काला नमक 50 ग्राम, काली मिर्च 50 ग्राम, सिट्रिकएसिड 50 ग्राम, सोडियम बेंजोएटआधा ग्राम, हरा रंगआधा ग्राम। उपयुक्त सामग्री से नमकीन पन्ना बनता है यदि मीठा पन्ना बनाना हो तो इस मिश्रण में 400 ग्राम चीनी और मिलाकर बोतलों में रखकर कॉर्क लगा दें और आवश्यकतानुसार उपयोग में लाएं गर्मी में लू से बचाने में पेट के रोगों से मुक्ति दिलाने में आम पन्ना काफी लाभदायक होता है।

आम का स्क्वैश

पके आम के फल को अच्छी प्रकार से धोकर गुद्दा निकालकर छान ले चीनी और पानी मिलाकर एक बार उबाल ले। इसके बाद सिट्रिक एसिड को भी इसी में डाल दे इसके बाद घोल को उतारकर मलमल के कपड़े से छान लें जब घोल कुछ ठंडा हो जाए तो उसे गुद्दे में अच्छी तरह से मिला ले तथा सुंदर दिखने हेतु रंग भी मिला सकते हैं इसके बाद पोटेशियम मेटाबाईसल्फेट को स्क्वैश को छोटे से बर्तन में मिलाकर मिला देते हैं तत्पश्चात पूरे स्क्वैश में मिलाना चाहिए जिससे अच्छे से मिल जाए।

आम का रस 1 लीटर, पोटेशियम मेटाबाईसल्फेट 2 से 5 ग्राम, सिट्रिक एसिड 30 ग्राम, चीनी डेढ़ किलोग्राम, पानी 1 लीटर, रंग आवश्यकतानुसार। सोडियम बेंजोएट 1 ग्राम प्रतिलीटर तैयार पदार्थ की दर से मिलाएं।

शेष भाग पृष्ठ 140 पर

उत्तम दुग्ध उत्पादन हेतु गर्भवती गाय–भैस का खान पान, प्रबन्धन एवंम उचित देखभाल

गौरव जैन, डॉंखम जेमस सिंह एवं डॉ अजीत सिंह
शोध छात्र पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग शुआट्स, प्रयागराज, उ.प्र.
पशु चिकित्सा अधिकारी चिल्ला ब्लाक, प्रयागराज, उ.प्र.

प्रस्तावनाः– सभी जीव जन्तुओं, पशु पक्षियों, पेड़ पौधों को जिन्दा रहने के लिए एक निश्चित मात्रा में खुराक की आवश्यकता होती है। जो उनका भोज्य पदार्थ कहलाता है। किसी पशु को जीवित रखने के उद्देश्य से जो भोजन दिया जाता है। वह भोजन उसका जीवन निर्वाह भोजन कहलाता है। इसी भोज्य पदार्थ में उपस्थित पोषक तत्वों के द्वारा वह शरीर में होने वाली सभी प्रकार की टूट फूट की मरम्मत, शरीर का तापमान बनाये रखना एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बनाये रखता है। उत्पादन करने वाले पशुओं को जैसे दूध, अंडा, मांस, ऊन आदि के उत्पादन हेतु पशुओं को जीवन निर्वाह से अतिरिक्त भोज्य पदार्थ दिया जाता है। जो उनका पशु उत्पादन भोज्य पदार्थ कहलाता है। परन्तु पशुओं को दिया जाने वाला आहार इस प्रकार का होना चाहिए की वह पशु की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो जैसे जीवन निर्वाह, शरीर की टूट फूट की मरम्मत, भ्रूण का विकास, अंडा, ऊन, मांस, दूध का उत्पादन हेतु तथा प्रजनन सम्बन्धी, उत्तम प्रकार के नर पशुओं से उत्तम गुणवत्ता युक्त वीर्य प्राप्त करने हेतु आदि की पूर्ति करता हो इस प्रकार का आहार संतुलित आहार कहलाता है। मादा पशुओं को दिए जाने वाला आहार उनकी अवस्था पर भी निर्भर करता है। जैसे गर्भित हीफर, गर्भित गाय, तथा गर्भित गाय के दूध उत्पादन हेतु ।

बच्चा देते समय एवं बच्चा देने के बाद खुराक एवं प्रबंधन

गर्भित हीफरस वह बछिया होती है। जो प्रथम बार गर्भ धारण करती है। इसीलिए वे दूध का उत्पादन नहीं करती है। सर्वप्रथम वृद्धि के लिए एक सही निश्चित अनुपात में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। जो उनको भोजन से प्राप्त करनी होती है। ताकि उनके द्वारा प्रथम बार बच्चा देते समय कोई परेशानी या बीमारी न हो एवं बच्चा स्वस्थ एवं पूर्ण दुग्ध उत्पादन हो सके। इस प्रकार की बछियों को 0–6 माह तक सामान्य आहार दिया जाता है। क्योंकि इस समय भूर्ण का विकास सामन्य गति से होता है। तथा 7–9 माह में उनको भूर्ण के विकास हेतु शरीरिक विकास हेतु

दिये जाने वाले आहार एवं दाने से अतिरिक्त 1.5 किलोग्राम दाना दिया जाता है।

गर्भित गाय (दुग्ध उत्पादन करने वाली) 0–6 माह तक तथा 7–9 माह तक

<u>अ. 0–6 माह</u> इसके अंतर्गत वे गाय आती है। जो अपने से दूध का उत्पादन कर रही होती है। तथा वे उचित समय आने पर गर्भ धारण कर लेती है। और गर्भ धारण के बाद भी लगभग 0–6 या 7 माह तक दूध का उत्पादन करती रहती है। तथा कभी–कभी तो और भी लम्बे समय तक दुग्ध उत्पादन करती रहती है। इन गायों को प्रति 3 लीटर दुग्ध उत्पादन पर 1 किलोग्राम दाना अतिरिक्त मात्रा में दिया जाता है। जो कि जीवन निर्वाह से अलग दिया जाता है।

चूँकि प्रत्येक माँ अपने बच्चे के लिए दूध का उत्पादन करती है। ऐसे में हम गाय, भैंस से अपने लिए भी दूध का उत्पादन करते है तो ये पूर्णतया हमारा स्वार्थ होता है। इसलिए उनको दूध उत्पादन हेतु अधिक दाना एवं हरा चारा दिया जाता है। सामान्यतः देखा जाता है कि दुग्ध उत्पादन पशु की जाति एवं नस्ल पर निर्भर करता है। परन्तु यदि पशु को उचित देखभाल एवं उत्तम गुणवत्ता युक्त भोजन न मिले तो पशु का दुग्ध उत्पादन 30–50 प्रतिशत तक या उससे भी अधिक मात्रा में कम हो जाता है। जबकि उनको सही समय पर सही अनुपात में भोजन प्राप्त हो जाने पर उसके दुग्ध उत्पादन में 20–40 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाता है।

<u>ब. 7–9 माह तक गर्भित गाय</u>: इसके अंतगर्त वे गाय आती है। जो दुग्ध का उत्पादन कर रही होती है। और सही समय पर गर्भ धारण कर लेती है। और कभी–कभी 7–9 माह तक दूध देती रहती है। परन्तु पशु पालक को चाहिए की बच्चा देने से 2 माह पूर्व ही मादा पशु को सूखा देना चाहिए क्योंकि जब मादा पशु गर्भ धारण करती है। तो शुरू के 5–6 माह में भ्रूण की विकास दर सामान्य होती है परन्तु 7–9 माह के दरम्यान भ्रूण की विकास दर बहुत तेज गति से होती है। और यदि उस समय पशु दुग्ध का उत्पादन भी करता है। तो पोषक तत्वों का शरीर से तेजी के ह्रास होता है। और भ्रूण के विकास दर पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए पशु को 7–9 माह के दरम्यान 1 से 1.5 किलोग्राम दाना अतिरिक्त मात्रा में दिया जाना चाहिए। इस अवस्था में पशु को 15–20 किलोग्राम तक हर चारा दिया जाना चाहिए तथा 30 से 40 ग्राम तक मिनरल मिक्चर भी दिया जाना चाहिए तथा बच्चा देने के 7–10 दीन पूर्व 2 किलो तक दाना देना चाहिए इस समय पशु को कैल्शियम एवं फास्फोरस भी दिया जाना चाहिए। ताकि पशु को बच्चा देते समय कोई परेशानी न हो एवं बच्चा भी स्वस्थ्य पैदा हो सके, पशु को मिल्क फीवर जैसी कोई समस्या न हो सके।

गाय को सुखाने के कारण–

1. पिछले गर्भ धारण के कारण पशु स्वास्थ्य में आई कमी की पूर्ति के लिए।

2.. पिछले ब्यांत में दुग्ध उत्पादन के कारण हुई पोषक तत्वों की हानि की पूर्ति हेतु।

3. पशु का अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु ताकि पशु अगले ब्यांत में अधिक मात्रा में दुग्ध का उत्पादन कर सके।

4. अगली गर्भावस्था के कारण तनाव को शरीर से कम करने हेतु।

5. पोषक तत्वों की कमी के कारण होने वाली दुग्ध संबधित बीमारियों को जैसे दुग्ध ज्वर को दूर रखने हेतु।

6. बच्चे का स्वास्थ्य उचित बना रहता है।

7. गाय का स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहता है।

विभिन्न पशुओं का गर्भकालः

भैंस 307 दिन	**गाय 281 दिन**	**भेड़ 150 दिन**
बकरी 145 दिन	**मादा सूअर 115 दिन**	**ऊंटनी 406 दिन**
घोड़ी 340 दिन	**हाथी 21 माह**	

प्रबंधनः प्रायः दुग्ध उत्पादन के लिए पशु पालक को प्रबन्धन का सम्पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। जिस कारण वो न केवल रूचि पूर्वक कार्य करता है। अपितु वो उसे लाभकारी भी बनाता है। एक अच्छा पशु पालक पशुओं की नम्रता पूर्वक देखभाल तो करता ही है। अपितु वो यह भी जनता है कि पशु के पालन पोषण के चारे दाने की उचित व्यवस्था हो तथा सभी श्रमिक से उनकी छमता पूर्वक अधिक से अधिक कार्य कैसे लिया जा सकता है। जो निम्न बातो पर भी निर्भर करता है।

तापमानः—पशु से अधिकतम उत्पादन के लिए उनके बाड़े का तापमान की जानकारी होना अति आवश्यक है। हमे पशु बाड़े का तापमान 20—27 डिग्री सेल्सिअस तक रखना चाहिए ताकि उनके भोजन ग्रहण करने छमता पर प्रभाव ना पड़े और उनकी उत्पादन क्षमता का ह्रास न हो।

पोषणः—गर्भित एवं दुधारू पशु के लिए भोजन हमेश इस तरह का होना चाहिए कि पशु उसको रूचि पूर्वक खाए वो दस्तावर हो भूख बढ़ाने वाला हो दुर्गन्ध रहित हो उसमें किसी प्रकार का पत्थर कील कांच आदि न मिला हो वो धूल रहित हो वो पशु को संतुष्टि प्रदान करने वाला हो और साथ में पशु की सभी जरूरतों की पूर्ति करता हो तथा पशु का आहार हमेशा संतुलित होना चाहिए। पशु के आहार में कभी भी अचानक से कोई भी परिवर्तन नहीं करना चाहिए नही ंतो पशु अफारा आने का डर बना रहता है चारे को अगर कुट्टी काटकर और दाने को पानी भिगोकर खिलाने से उनकी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। पशु को दुग्ध उत्पादन पर प्रति 3 किलो दूध पर 1 किलो दाना अलग से दिया जाना चाहिए।

पानी की व्यवस्थाः—पशु शरीर में सर्वाधिक मात्रा में पानी ही होता है। भ्रूण में 95% तक नये जन्मे बच्चे में 70—80% तक तथा एक व्यस्क पशु शरीर में 55—70% तक पानी पाया जाता है। वैसे तो पशु शरीर में पानी की पूर्ति पानी पीने से हो जाती है। परन्तु पानी की कुछ पूर्ति पशु को भोजन के द्वारा भी हो जाती है। यदपि पानी शरीर में रक्त निर्माण में दुग्ध निर्माण में आंखों की रोशनी में तापमान बनाये रखने में मदद करता है। इसलिए एक स्वस्थ्य व्यस्क पशु को 40—50 किलो पानी की आवश्यकता प्रतिदिन होती है। तथ पशु को प्रति 1 किलो शुश्क पदार्थ पर 4 किलो पानी तथा प्रति 1 किलो दुग्ध उत्पादन के लिए 3 किलो पानी की भी आवश्यकता होती है।

अनावश्यक पशुओं को झुण्ड से निष्काषित करनाः—पशु का उम्र के साथ साथ उनकी प्रजनन क्षमता पर भी प्रभाव पड़ता है। तथा कुछ कारक भी प्रभाव डालते है। जैसे पशु की जाती, नस्ल, वातावरण, साफ—सफाई, संक्रामित बीमारी से पीड़ित होना, पशु का सही समय पर गरम (हीट) में न आ पाना, बार—बार ग्याभिन कराने पर भी गर्भ का न ठहर पाना आदि। इसलिए पशु पालक को अनावश्यक पशुओ को झुण्ड से निकाल देना चाहिए ताकि बेकार पशु के उपर होने वाले खर्चे से बचा जा सके और उसकी आय में होने वाली हानि से बचा जा सके और अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।

दयालुतापूर्ण व्यवहार करनाः— पशु पालक को हमेशा पशुओ से मित्रता पूर्ण व्यव्हार करना चाहिए क्योंकि पशु को डराने से उसको अनावश्यक तौर पर दोराने से मारने पीटने से अधिक परेशान करने से न केवल दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है अपितु पशु के स्वस्थ पर भी प्रभाव पड़ता है। और उसकी संरचना पर भी प्रभाव पड़ता है।

बिछावन एवं साफ—सफाईः—बिछावन के लिए सामान्यतः भूंसा, लकड़ी का बुरादा, धान की पुआल का प्रयोग किया जाता है। प्रतिदिन एक गाय को 5—7 किलो भूंसे की जरूरत होती है। सामान्य तौर पर गावों में बिछावन के प्रयोग होने वाले मुख्यतः फसलों की पत्तियां गन्ने का अगोला, राख, सूखे उपलों का चूरा तथा कभी कभी रेता भी प्रयोग किया जाता है। जो पशुओं का आराम देता है। जहाँ पशु रखा जाता है। वहां पर से प्रतिदिन गोबर को साफ कर देना चाहिए ताकि वहां पर मक्खियाँ ना पनप सके जिनके कारण पशु में होने वाले रोगों से बचा जा सके। समय समय पर गौशाला के फर्श, नाली, नांद, और दीवारें की सफाई करते रहना चाहिये और रोगाणु नाशक का प्रयोग करके कीटाणुओं को नष्ट कर देना चाहिए।

बच्चा देते समय एवं बच्चा देने के पश्चात खुराक और प्रबंधनः— जब प्रसव के दौरान में कुछ दिन ही बाकि होते है। तो बच्चा देने से पहले मादा पशु को बाकि गायों के झुण्ड से अलग कर देना

चाहिए क्योंकि ग्रुप में उसको चोट लगने का डर बना रहता है। तथा बच्चा देते समय सक्रंमित रोग होने कर डर बना रहता है। या कभी कभी गर्भपात तक हो जाता है। और वैसे भी पशु उस अवस्था में एकांत पसंद करते है। तो उनको एक अलग कमरे में रखे और उस समय पानी उनको कुछ समय पश्चात पिलाते रहना चाहिए क्योंकि उस समय पानी की सबसे अधिक जरूरत होती है। जिस कमरें पशु बच्चा देती है। वह पर गंदगी फैल जाती है। अतः मादा पशु को उस कमरे में रखने से पहले ही उस कमरे को रोगाणुनाशक से रोगाणु रहित कर देना चाहिए ताकि पशु बीमार न पड़ सके। कभी–कभी देखते है कोई कोई पशु खड़ी होकर बच्चा देती है तो उस अवस्था में बच्चे को चोट लग सकती है। इसलिए वहां पर पशु के निचे मोटा बिछावन का प्रबन्ध कर देना चाहिए ताकि बच्चे का चोट न लगे बिछावन की मोटाई 6 से 10 इंच तक होना चाहिए तथा बच्चा देते समय पशु के अंदर कैल्शियम तथा फास्फोरस और विटामिन डी की कमी अधिक हो जाती है। जिस कारण उनका शोषण बढ़ जाता है इसीलिए गायों को मिनरल्स की पूर्ति हेतु बोनमिल (हड्डी का चुरा) या मिनरल सप्लीमेंट खिलाना चाहिए। बच्चा देते समय ऊर्जा का ह्रास होता है। तो पशु को गुण, बिनोला या कुछ मात्रा में भी भी खिला सकते है। ताकि उसकी ऊर्जा की पूर्ति हो सके सामान्य प्रसव काल 2–6 घंटे का होता है। कभी–कभी पशु इससे भी अधिक समय ले लेता है। तो पशु का परेशान न करें तथा तुरंत पशु चिकित्सक की मदद लेना चाहिए ताकि किसी प्रकार की कोई हानि न हो सके बच्चा देने के पश्चात वहां की साफ सफाई कर देना चाहिए ताकि कोई सक्रंमित बीमारी बच्चे या पशु को न हो सके तथा प्रसव के जेर गिराने का इंतजार करना चाहिए जो ज्यादातर पशु 4 से 6 घंटे में गिरा देता है और कभी कभी अधिक समय भी ले लेता है। परन्तु जब अधिक समय लग जाये और पशु जेर न गिराए तो तुरंत पशु चिकित्सक की मदद लेनी चाहिए जेर न गिराने में कुछ प्रमुख कारण हो सकते है। जैसे पशु की आयु, उसका स्वास्थ्य खराब होना पशु का बीमार होना या अधिक कमजोर होना आदि। जेर ना गिराने पर पशु को गुड़ अजवाइन शौंठ तथा मेंथी आदि की पानी से उबाल कर पिलाना चाहिए और जब जेर गिर जाये तो उसको कुछ दूर पर गड्ढा खोदकर उसमें दबा देना चाहिए अब पशु को सर्दी गर्मी से बचाना चाहिए उसे साफ पानी पिलाना चाहिए तथा गुड़ चोकर या शीरा मिलाकर उसको खिलाना चाहिए अब कुछ दिनों तक उससे ताजा हरा चारा जो दस्तावर हो पौष्टिक हो तथा संतुलित हो देना चाहिए और साथ में खनिजों की पूर्ति हेतु हड्डी का चुरा और नमक भी 50–50 ग्राम प्रतिदिन देना चाहिए क्योंकि ब्याने के बाद कैल्शियम की कमी से मिल्क फीवर रोग होने की ज्यादा सम्भावना रहती है। इसलिए खनिजों की पूर्ति अति आवश्यक होती है।

कददूवर्गीय सब्जियो में कीट एवं रोग नियंत्रण

नीलम सोनी[1], निकिता देवांगन[1] एवं मुकेश कुमार[2]
[1]जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म0 प्र0)
[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, मोतीपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सब्जियों के बीज शुष्क फसल के लिए शुष्क जलवायु से उनके व्यापक अनुकूलन के साथ सबसे बड़े समूहों में से एक है। एशिया में लगभग 23 खाद्य प्रमुख और छोटे कददूवर्गीय उगाए एवं खपत किए जाते है। सब्जी उत्पादन में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। कुल सब्जी उत्पादन में कद्दूवर्गीय सब्जियों का लगभग 8 प्रतिशत हिस्सा है। उत्पादन और खपत में धीरे–धीरे वृद्धि के साथ भी कददूवर्गीय का उत्पादन रोगों और कीटों की उपस्थिति गुणवत्ता के बीज की अपर्याप्त उपलब्धताएं आनुवंशिक किस्मों के रखरखाव की कमीं और स्वाभाविक रूप से होने वाली जैव विविधता और अंतर्राश्ट्रीय स्तर पर ज्ञान की कमी से ग्रस्त है। भारत में कददूवर्गीय सब्जियों के अन्तर्गत मुख्य रूप से लौकी, खीरा, करेला, कददू, ककड़ी आदि की खेती की जाती है। इनके कोमल एवं मुलायम फलों का प्रयोग सब्जी एवं विभिन्न प्रकार के पकवान बनाने में किया जाता है। कददूवर्गीय सब्जियों में औशधीय गुण भी होते हैं। कददूवर्गीय सब्जियों की खेती खरीफ एवं जायद दोनों श्रतुओं में की जाती है। कददूवर्गीय सब्जियों में विभिन्न प्रकार के कीटो एवं रोगो का आक्रमण होता है। जिनकी पहचान एवं नियंत्रण निम्नवत है–

प्रमुख कीट तथा उनका नियंत्रण–

1. **रेड पम्पकिन बीटल–**

इस कीट की प्रौढ़ अवस्था ही क्षतिकारक होती है। प्रौढ का शरीर चमकीले लाल रंग के कठोर पंखो से ढका रहता है जिनके ऊपर कई काले धब्बे होते हैं। यह कीट जनवरी से मार्च के महीने में अधिक सक्रिय रहता है। यह कीट पौधों की छोटी कोमल पत्तियों को खाकर नष्ट कर देता है। अधिक आक्रमण की स्थिति में पौधे पत्ती रहित हो जाते हैं जिससे पौधों का विकास

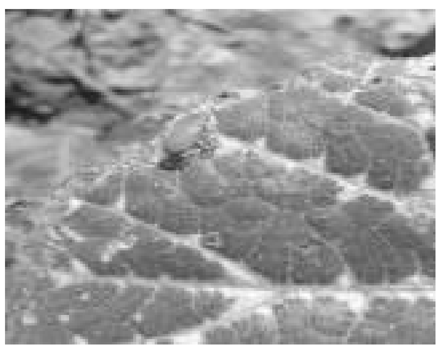

एवं बढवार रूक जाता है।

नियंत्रण– सुबह ओस पड़ने के समय राख का भुरकाव करने से प्रौढ पौधो पर नही बैठता है जिससे नुकसान कम कम होता है। इस कीट का अधिक आक्रमण होने पर कीटनाशी जैसे– डेल्टामेथ्रिन 100 (ई.सी.) 15 मिली / टंकी की दर से 10–15 दिन के अन्तराल पर 2 छिडकाव करते हैं।

2. **फल मक्खी**– इस कीट की सूड़ी अवस्था हानिकारक होती है प्रौढ़ पौधों के छोटे मुलायम फलो में छिद्र बनाकर उसमें अपने अण्डे रख देती है जिनसे सूड़ियाँ निकलकर फलों के गूदे को खाकर नष्ट कर देती ह‌ै मक्खी फल के जिस भाग पर अण्डे देती है वह भाग वहाँ से टेढ़ा होकर सड़ जाता है। मक्खी जिस जगह पर अण्डे देती है वहाँ पर छोटे छोटे निशान बन जाते हैं। जो गोंद जैसे पदार्थ से ढके रहते हैं ग्रीष्म कालीन फसल की अपेक्षा वर्षाकालीन फसल पर इसका अधिक प्रकोप होता है।

नियंत्रण– कीटग्रस्त फलों को तोड़कर जमीन में दबा देना चाहिए तथा क्षति की प्रारम्भिक अवस्था में आवश्यकतानुसार कीटनाशी जैसे– डेल्टामेथ्रिन 100 (ई.सी.) 15 मिली को 150 ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर प्रति टंकी की दर से 2 छिड़काव करना चाहिए।

3. **लीफ माइनर**– इस कीट की मैगट अवस्था ही हानिकारक होती है, कभी–कभी यह कीट कददूवर्गीय फसलों को बहुत नुकसान पहुचाता है। इस कीट के आक्रमण से पौधों की पुरानी पत्तियों पर सफेद धारियां बन जाती हैं। कुछ समय बाद इनका प्रकोप नई पत्तियों पर भी दिखाई देता है। यह कीट पत्तियों के हरे भाग (क्लोरोफिल) को खुरचकर खाता है जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है अतः पौधा अपना भोजन नहीं बना पाता।

नियंत्रण– इस कीट के नियंत्रण हेतु आवश्यकतानुसार कीटनाशी जैसे– थायमेथोक्जाम 25 (डब्ल्यू.जी.) 10 ग्राम या इमीडाक्लोप्रिड 17.8 (एस.एल.) 10 मिली / टंकी की दर से छिडकाव करें।

4. **एफिड**– ये अत्यन्त छोटे एवं हरे–पीले रंग के कीट होते है इस कीट के प्रौढ़ एवं शिशु

पौधों के विभिन्न भागो से रस चूसकर पौधों के विकास एवं बढ़वार को प्रभावित करते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियों पर पीले या गहरे हरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं प्रभावित पौधो पर फूल व फल कम बनते है जिससे उपज घट जाती है ये कीट पौधों में विशाणु रोग फैलाने में सहायक होते हैं।

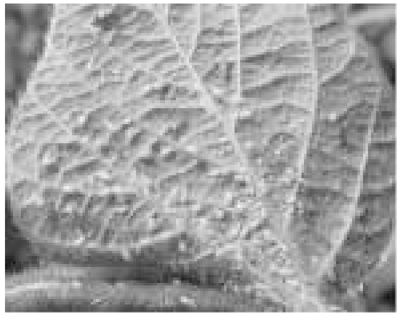

नियंत्रण— इसके नियंत्रण हेतु थायमेथोक्जाम 25 (डब्ल्यू.जी.) 10 ग्राम या फ्लोनिकामीड 50 (डब्ल्यू.जी) 8 ग्राम / टंकी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

5. **सफेद मक्खी**— यह छोटे आकार एवं सफेद रंग का एक प्रमुख कीट है। इस कीट का पूरा शरीर मोम जैसे पदार्थ से ढका रहता है, इसीलिये इसे सफेद मक्खी कहा जाता है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ दोनो ही पौधों की नयी पत्तियों से रस चूसते हैं जिससे पत्तियों की शिरायें पीली पड़कर कमजोर हो जाती हैं तथा पत्तियों की मोटाई सामान्य से कुछ अधिक हो जाती है, प्रभावित पौधों पर फूल एवं फल कम लगते है जिससे उत्पादन में गिरावट आ जाती है। यह कीट पौधों में विशाणु रोग फैलाते हैं।

नियंत्रण— इस कीट के नियंत्रण हेतु थायमेथोक्जाम 25 (डब्ल्यू.जी.) 10 ग्राम या एफिडोपायरोपेन 50 (जी. एल.) 40 मिली / टंकी की दर से 2—3 छिड़काव करें। एक ही दवा का दोबारा प्रयोग नहीं करना चाहिए।

प्रमुख रोग तथा उनका नियंत्रण—

1. **मृदुरोमिल आसिता**— कद्दूवर्गीय फसलों की यह प्रमुख बीमारी है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों की उपरी सतह पर हलके पीले रंग के कोणीय धब्बो के रूप मे दिखाई देते हैं। कुछ समय बाद इन धब्बों के नीचे पत्तियों की निचली सतह पर फफूंदी कपास के समान बैगनी या गुलाबी रंग की विकसित होती हुई दिखाई पड़ती है। जब तापमान 20—22 डिग्री सैल्सियस हो तथा वातावरण

में नमी हो तब यह रोग तेजी से फैलता है। रोग की तीव्रता के कारण पत्तियां पीली पडकर सूखने लगती है। रोगी पौधों पर फल बहुत कम लगते है।

नियंत्रण– बीज को बुआई से पहले कार्बेन्डाजिम + मैंकोजेब 75 (डब्ल्यू.एस.) 3 ग्राम / कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। रोग के लक्षण दिखाई देते ही अवश्यकतानुसार कवकनाशी जैसे– फिनामिडोन + मैंकोजेब 60 (डब्ल्यू.जी.) 45 ग्राम या साइमोक्सानील + मैंकोजेब 72 (डब्ल्यू.पी.) 45 ग्राम / टंकी की दर से 10–15 दिन के अन्तराल पर 2 छिड़काव करना चाहिये।

2. **चूर्णिल आसिता**– इस रोग का प्रसार पौधो में हवा के द्वारा होता है तथा 16–24 दिन की पुरानी पत्तियों में ही रोग का आक्रमण अधिक होता है, जबकी नयी पत्तियों पर रोग का आक्रमण प्रायः नहीं होता है। पुरानी पत्तियों की निचली सतह पर सफेद पाउडर जैसा चूर्ण दिखाई देता है। कुछ समय पश्चात् यह पाउडर पत्तियों के दोनों सतहो पर दिखाई देता है। उग्र अवस्था में रोग का प्रभाव शाखाओ तथा तनों पर भी दिखाई देता है। गम्भीर रूप से संक्रमित पत्तियाँ भूरे रंग की होकर सिकुड़ जाती है तथा परिपक्वता से पहले ही झड़ जाती है। कुछ समय पश्चात् शाखाओं की भी मृत्यु हो जाती है। कम तापमान (20–25^{0} सेल्सियस) एवं अधिक आर्द्रता (95 प्रतिशत) पर यह रोग तेजी से फैलता है।

नियंत्रण– इस रोग के नियंत्रण हेतु कवकनाशी जैसे– माइक्लोब्युटानिल 10 (डब्ल्यू.पी.) 15 ग्राम या हेक्साकोनाजोल 5 (एस.सी.) 30 मिली / टंकी की दर से 2 छिडकाव करते हैं।

3 **फल विगलन**– इस रोग का आक्रमण उन फलों पर अधिक होता है जो फल जमीन के सीधे संपर्क में रहते हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में फल के जिस हिस्से पर संक्रमण शुरु होता है, उस हिस्से पर कोमल, हरा एवं जलशक्ति जैसी संरचना बन जाती है। नम वातावरण में फल के संक्रमित हिस्से में कवक की रुई जैसी बढ़वार दिखाई देती है। कुछ समय पश्चात् फल पूर्ण रुप से सड़ जाते हैं। अधिक नमी एवं उच्च तापमान होने पर रोग का आक्रमण अधिक होता है।

नियंत्रण— पौधों की लताओं को चढ़ाने हेतु सहारा देना चाहिए जिससे फल जमीन के सीधे संपर्क में न रहें। जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिये। अधिक आक्रमण होने पर आवश्यकतानुसार कवकनाशी जैसे— फिनामिडोन + मैंकोजेब 60 (डब्ल्यू.जी.) 45 ग्राम या साइमोक्सानील + मैंकोजेब 72 (डब्ल्यू.पी.) 40 ग्राम / टंकी की दर से 2 छिड़काव करें।

4 **एन्थ्रेक्नोज**— वर्षाकालीन फसल पर इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। पौधों का जमीन से ऊपर का सभी भाग इस रोग से प्रभावित होता है। प्रारम्भ में पत्तियों पर जलशक्ति जैसी संरचना बन जाती है तथा बाद में उन पर गोल पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। कुछ समय बाद ये धब्बे भूरें रंग में बदल जाते हैं तथा आपस में मिलकर पत्तियों को जला देते हैं। रोगग्रस्त फलों पर जलसिक्त, गोल या अण्डाकार भूरे या काले रंग के धब्बे पड़ जाते है, जो बाद में बढ़कर आपस में मिल जाते हैं तथा फलों को सड़ा देते हैं। गर्म एवं नम मौसम में यह रोग तेजी से फैलता है।

नियंत्रण— बीज को बुआई से पहले कार्बेन्डाजिम + मैंकोजेब 75 (डब्ल्यू.एस.) 3 ग्राम / कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। रोग के लक्षण दिखाई देने पर आवश्यकतानुसार कवकनाशी जैसे— टेबुकोनाजोल 25.9 (ई.सी.) 25 मिली या पाइरेक्लोस्ट्रोबीन + मेटीराम 60 (डब्ल्यू.जी.) 45 ग्राम / टंकी की दर से 2 छिडकाव करना चाहिये।

5. गम्मी तना झुलसा—

इस बीमारी में पौधों की जड़ो को छोड़कर शेष सभी भागो में संक्रमण होता है। प्रारम्भिक लक्षण के रूप में पोधे की पत्ती के किनारों पर पीलापन / हरिमाहीनता दिखाई पड़ती है और सतह पर जलसिक्त धब्बे दिखाई देते हैं। रोग से ग्रसित पोधे के तने पर घाव बन जाते हैं जिससे लाल—भूरे रंग का चिपचिपा पदार्थ (गम) निकलता हैं। तने पर भूरे—काले रंग के धब्बे बन जाते जो बाद में जाकर एक दूसरे से मिल जाते हैं।

नियंत्रण— रोपाई का निरीक्षण करते रहें एवं संक्रमित पौधों को उखाड़ कर खेत से बाहर फेंक दें। बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही एजोक्सीस्ट्राबिन + डाइफेनोकोनाजोल 29.6 (एस.सी.) 20 मिली. या टेबुकोनाज़ोल 25.9 (ई.सी.) 25 मिली. / टंकी की दर से घोल बना कर छिड़काव करें।

जैविक खेती में ह्यूमिक एसिड का प्रयोग

अजय बाबू, रामअवतार मीना, आशुतोष कुमार एवं कमल रवि शर्मा

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग,

कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय 221005

विश्व की बढ़ती जनसंख्या आज की सबसे बड़ी समस्या है। भारत में जनसंख्या वृद्धि का क्रम यह है कि हर पीढ़ी में दो गुनी होती रहती है। भारत की आबादी आज 1 अरब से अधिक हो गई है। बढ़ती जनसंख्या के साथ एक और समस्या उत्पन्न हो रही है। इस जनसंख्या को भोजन की आपूर्ति की समस्या, जो दिनों दिन बढ़ती जा रही है। आज कल मौसम की परिस्थितियां भी खेती और ऋतु के लिए अनुकूल नहीं है। जिस वजह से किसान पहले की तरह फसल उत्पादन में भी सक्षम नहीं है।

गौरतलब है कि अपनी फसलों के उत्पादन के लिए हमारे किसान भाई रासायनिक खाद, जहरीले कीटनाशक पदार्थों का उपयोग करने लगे है। जो कि इंसानों के स्वास्थ्य और मिट्टी दोनों के लिए हानिकारक है तथा वातावरण भी प्रदूषित होता जा रहा है। इन सभी गंभीर समस्याओं को रोकने के लिए यदि किसान रासायनिक तरीकों की जगह कृषि के जैविक तरीकों का उपयोग करें तो इन समस्याओ ंपर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। मृदा की उर्वरा शक्ति बनाए रखने तथा फसलोत्पादन को बढ़ाने में जैविक खेती की अहम भूमिका है। जैविक खेती में ह्रमिक एसिड का प्रयोग शीर्ष पर है। ह्यूमिक एसिड का नाम सुनते ही ऐसा लगता है। जैसे यह कोई केमिकल या एसिड होगा जो हमारे फसल को नुकसान पहुंचाएगा लेकिन ये जैविक है।

ह्यूमिक एसिड क्या है ?

ह्यूमिक एसिड खदान से उत्पन्न एक बहुपयोगी खनिज है। इसे सामान्य भाषा में मिट्टी का कंडीशनर कहा जा सकता है। जो कि बंजर भूमि की उर्वराको बढ़ाता है। मिट्टी की संरचना को सुधार कर उसे नया जीवन दान देता है। बाजार में यह तरह–तरह के नामों से बिकता है। तथा यह पानी में अघुलनशील होता है। बाजार में जो ह्यूमिक एसिड मिलता है वो पोटेशियम ह्रमेट है।जो कि

ह्यूमिक एसिड पर कास्टिक पोटाश की क्रिया द्वारा बनाया जाता है। फसल की उत्पादन बढ़ाने के लिए जो रासायनिक खाद हम मृदा में डालते हैं। उसका केवल 25–30% ही पौधों को प्राप्त हो पाता है।शेष मृदा में जम जाता है या पानी में बह जाता है। शेष ह्यूमिक एसिड मृदा में अधुलनशील खाद को घोलकर पौधों को उपलब्ध कराता है। नाइट्रोजन आयन मृदा में जोड़ के रखता है तथा भूमि की नमी बनाये रखने में सहायक है। ह्मिक एसिड का 70% कार्य मृदा में होता है तथा 30% कार्य पत्तियों पर होता है। बाजार में यह तरल दाने दार पपड़ी आदि विभिन्न रूप में उपलब्ध है परन्तु हमारे किसान भाई इसे घर पर ही कम लागत में बना कर प्रयोग कर सकते हैं। इसे घर पर बनाना बहुत ही आसान है। ह्यूमिक एसिड को बनाने के लिए निम्नलिखित सामग्रीयों की आवश्यकता होती है।

सामग्री

–दो वर्ष पुराने गोबर के उपले याकंडे

–50 लीटर क्षमता वाला ड्रम

–पानी

बनाने की विधि

1. ड्रम में गोबर के उपले या कंडे को भर दें।
2. ड्रम में पानी डाल दें लगभग 25–30 लीटर पानी।
3. इसके पश्चात सात दिनों के लिए ड्रम को ढ़ककर रख दें।
4. सात दिनों पश्चात पानी का रंग बदल कर लाल भूरा हो जायेगा।
5. कंडो को ड्रम से बाहर निकाल कर सूखा दें या चाहे तो आप इसे घरेलू कार्य में प्रयोग कर सकते हैं।
6. पानी को कपड़े से दो बार छान लें ताकि कंडो के अवशेष घोलमें न रहे।

प्रयोग

शेष भाग को पानी में मिलाकर भूमि में छिड़काव करें। पौधों की जड़ों को घोल में डूबा कर रोपित करें। इसे सभी प्रकार के फसलों में सभी प्रकार के कीटनाशकों के साथ मिलाकर स्प्रे किया जा सकता है। या फिर आप इसे ड्रिप सिंचाई या किसी प्रकार के रासायनिक खाद में मिलाकर या अलग से भी प्रयोग कर सकतें हैं।

ह्यूमिक एसिड के लाभ

1. इसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य मिट्टी को भुरभुरी बनाना है।जिससे जड़ों का विकास अधिक हो सके।
2. ये प्रकाश संलेषण की क्रिया को तेज करता है जिससे पौधे में हरापन आता है। और शाखाओं में वृद्धि होती है।
3. पौधों की तृतीयक जडों का विकास करता है जिससे की मृदा से पोषक तत्वों का अवशोषण अधिक हो सके।
4. पौधों की चयापचयी क्रियाओं में वृद्धि कर मृदा की उर्वरा शक्ति बढाता है।
5. पौधों में फलों और फूलों की वृद्धि कर फसल की उपज को बढ़ाने में सहायक है।
6. बीज की अंकुरण क्षमता बढाता है तथा पौधों को प्रतिकूल वातावरण से भी बचाता है।

पृष्ठ 127 का शेष भाग

आम का नेक्टर

अच्छे पके आम लेकर धुले उनका छिलका हटाकर रस को निकालकर अच्छी तरह से छान ले चीनी एवं पानी को मिलाकर गर्म करें उसी समय सिट्रिक एसिड डाल दे जब तक एक उबाल आ जाए तो खोल को छानकर आम के रस में अच्छी तरह से मिला दे इसके बाद तैयार नेक्टर को बोतलों में भरकर क्राउन कॉर्क लगाकर बंद कर दें इसके बाद एक बड़े बर्तन में पानी डालकर बहुत लोग को रखकर लगभग 25 से 30 मिनट तक वाले और बोतलों को ठंडा करके रखले और उपयोग में ले। आम का रस 1 लीटर, सिट्रिक एसिड 10 ग्राम, चीनी 400 ग्राम, पानी 3 से 5 लीटर।

आम की गुठली

पक्के तथा कच्चे आम की गुठली को तोड़कर उसके अंदर की गिरी को सुखाकर पाउडर बना लें और छलनी से छानकर आटे के साथ मिला ले। इससे बनी रोटी का सेवन करने से पेट के रोगों से मुक्ति मिलती है।

पत्तीवाली एवं कम प्रचलित सब्जियों का गुणवत्तायुक्त उत्पादन

सुधीर कुमार मिश्र, सपना राय, अमित कुमार शर्मा
नेशनल पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बढ़हलगंज, गोरखपुर
सैम हिग्गिनबाटॅम कृषि एवं प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कम प्रचलित सब्जियों से हमारा तात्पर्य उन सब्जियों से होता है जिनकी खेती हमारे यहॉ पहले नही की जाती थी अथवा बहुत ही सीमित पैमाने पर उगाई जाती थी। विगत कुछ वर्षों में देश के विभिन्न भागों में पर्यटक रेस्तरा और पंचसितारा होटलों में कुछ विशेष सब्जियों जैसे ब्रोकली, सिलेरी, पार्सले, लेट्स, चायनीज कैबेज, रेड कैबेज, आदि की मात्रा काफी बढ़ी है। इन सब्जियों को पहले हमारे यहॉ विस्तृत पैमाने पर नहीं उगाया जाता था और पंचसितारा होटलों और पर्यटक रेस्तरां में आपूर्ति के लिए इन्हें बाहर के देशों से मंगाया जाता था। ये सब्जियॉ मूल रुप से ठंडी जलवायु की सब्जियॉ हैं, लेकिन हमारे देश में विभिन्न प्रकार मौसम होने के कारण इन सब्जियों को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में जाड़े के दिनों में इन सब्जियों की खेती बड़ी सुगमतापूर्वक की जा सकती है। हिमाचल प्रदेश , उत्तरांचल और जम्मू कश्मीर में इनके बीज भी बनाए जा सकते है। विभिन्न प्रकार की अपरिचित सब्जियों को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1 जीनस ब्रैसीका के अन्तर्गत आने वाली अपरिचित सब्जियॉ

ब्रैसिका के अन्तर्गत फूलगोभी , पत्तागोभी तथा गॉठगोभी की खेती हमारे यहॉ विस्तृत पैमाने पर की जाती है। इसके अन्तर्गत बहुत सी अन्य सब्जियॉ हैं जिनकी खेती हमारे यहॉ बहुत सीमित पैमाने पर की जाती है। इन सब्जियों का वानस्पतिक नाम एवं खाने वाले भाग को सारिणी 1 में दिया गया है।

सारिणी – 1 में जीनस ब्रैसीका के अन्तर्गत आने वाली अपरिचित सब्जियाँ

सामान्य नाम	वानस्पतिक नाम	खाने वाला भाग
ब्रोकली	ब्रैसिका ओलीरैसिया ग्रुप इटैलिका	शीर्ष
चाइनीज ब्रोकली	ब्रैसिका ओलीरैसिया वार0 एल्बोग्लैब्रा	पुष्प प्ररोह

ब्रुसेल्स स्प्राउड	ब्रैसिका ओलीरैसिया ग्रुप गेमीफेरा	ब्रुसेल्स (गॉठें)
कैलब्रेस	ब्रैसिका ओलीरैसिया ग्रुप इटैलिका	शीर्ष
चाइनीज कैबेज	ब्रैसिका रैपा ग्रुप पेकिनेंसिस	शीर्ष
केल	ब्रैसिका ओलीरैसिया ग्रुप एसीफेला	पत्तियाँ
पाकचोई	ब्रैसिका रैपा ग्रुप चाइनेंसिस	पत्तियाँ
कामतसुना	ब्रैसिका रैपा ग्रुप परविडिस	पत्तियाँ
मिजुना ग्रीन	ब्रैसिका रैपा वार0 निपोसोनिका	पत्तियाँ
मस्टर्ड ग्रीन	ब्रैसिका जुंसिया	पत्तियाँ
टैक्सल ग्रीन	ब्रैसिका कारनियटा	पत्तियाँ

सारिणी – 2 जीनस ब्रैसिका के अन्तर्गत आने वाली अपरिचित सब्जियों की सस्य तकनीकी

सब्जियाँ	किस्में	लगाने का ढंग
ब्रोकली	मुक्त परागित–नाइन स्टार पेरिनियल, इटेलियन ग्रीन, बाथम, 29, ग्रीन हेड तथा के0टी0एस01, संकर किस्म पाइरेट पैकमेन, प्रिमियम क्राप क्लिपर	उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर–नवंबर के महीने में गोभी की फसल जैसी नर्सरी करके तैयार करके रोपण जाए।
चाइनीज ब्रोकली	ग्रीन लांस (संकर किस्म)	उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर–नवंबर के महीने में गोभी की फसल जैसी नर्सरी तैयार करके रोपण किया जाए।
गोभी की फसल जैसी नर्सरी करके रोपण किया जाए	लम्बी– कैंब्रीज 1,3 और 5 मध्यम बढ़वार वाली किस्में– लॉग आइसलैण्ड तथा हाफ ड्वार्फ	गोभी की फसल जैसी नर्सरी तैयार करके रोपण किया जाए।
रेड कैबेज	रेड रॉक तथा रेड ड्रम हेड	उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर–नवंबर के महीने में गोभी की फसल जैसी नर्सरी तैयार करके रोपण किया जाए।

चीनी पत्ता गोभी	शीर्ष वाली प्रजातियॉ चिहली मिचहली और बागबाक्स	उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर–नवंबर के महीने में गोभी की फसल जैसी नर्सरी तैयार करके रोपण किया जाए।

अपरिचित जड़ वाली सब्जियॉ

सामान्तया हमारे यहॉ जड़ वाली सब्जियों में मूली, गाजर, शलजम एवं चुकन्दर की खेती की जाती है। इनके अतिरिक्त बहुत से अपरिचित जड़ वाली सब्जियॉ हैं जिनकी खेती हमारे यहॉ नहीं की जाती है या बहुत सीमित स्तर पर की जाती है। इन अपरिचित जड़ वाली सब्जियों की निर्यात तथा होटलों में बहुत अधिक मांग है। सारिणी – 3 में कुछ प्रमुख अपरिचित जड़ वाली सब्जियों का नाम वानस्पतिक नाम, कुल तथा गुणसूत्र संख्या दी गयी है।

सारिण – 3 अपरिचित जड़ वाली सब्जियॉ

सामान्य नाम	वानस्पतिक नाम	कुल	गुणसूत्र संख्या
पार्सनिप	पैस्टिनाका सटाईवा	अम्बेलीफेरी	22
हार्स रैडिस	आर्मोरैसिया रस्टिकाना	क्रुसीफेरी	32
चेरविल	ऐन्थ्रिस्कस सेरिफोलियम	अम्बेलीफेरी	32
सेलरिएक	एपियम ग्रेविओलेन्स किस्म रैपेसियम	अम्बेलीफेरी	22
स्किरेट	सियम सिरेम	अम्बेलीफेरी	12
स्वेड्स	ब्रैसिका नैपस वार0 नैपोब्रैसिका	क्रुसीफेरी	–

पार्सनिप

पार्सनिप की खेती इसकी सुगंधित जड़ों के लिए करते हैं। जड़ें 13 से 20 सेमी0 सम्बी होती हैं। इसे उगाने के लिए बीज को सीधे खेत में बो दिया जाता है। बोआई के तीन महीने बाद जड़ें तैयार हो जाती हैं। एवन रजिस्टर, काबहैम इम्प्रूव्ड मैरो, ग्लैडियएटर तथा व्हाइट जीम इसकी कुछ उन्नत किस्में हैं।

हार्स रैडिस

इसकी खेती उत्तर भारत में कम लेकिन दक्षिण भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में बहुतायत से की जाती है। इसकी जड़ों को खानें के लिए प्रयोग में लाते हैं।

चेरविल

चेरविल को सामान्तया सलाद के रुप में उगाते हैं इसमें पार्सले की तरह जड़ विकसित हाकती है। चेरविल को सीधे खेत में बोया जाता है।

स्वेड्स

यह शलजम की तरह होता है इसकी कुछ किस्मों के गूदे पीले रंग के होते हैं और कुछ किस्मों का सफेद रंग होता है। इसकी शलजम जैसे बीज की बोआई करके फसल को उगाया जाता है।

अपरिचित पत्ती वाली सब्जियॉ

हरी पत्ती वाली सब्जियॉ हमारे भोजन का प्रमुख घटक हैं। हमारे देश के प्रत्येक प्रान्त में तरह–तरह की पत्ती वाली सब्जियॉ खाने के प्रयोग में लाई जाती हैं। इनमें कुछ बहुत प्रचलित हैं जैसे– पालक, चौलाई, करी पत्ती, अगाथी, पोई, सहिजन आदि को उगाया जाता है, जबकि बहुत सी ऐसी वनस्पतियॉ हैं जो खरपतवार के रुप में उगती हैं जैसे– कुल्फ, बथुआ, चकवड़। कुछ पौधौं की मुलायम पत्तियॉ खाने के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं, जैसे करी पेड़ की पत्तियॉ, अगाथी की पत्तियॉ और सहिजन की पत्तियॉ। हरी पत्ती वाली सब्जियॉ कैल्शियम, आयरन, कैरोटीन, विटामिन ए, सी, रिबाफ्लेविन और फोलिक अम्ल की अच्छी स्त्रोत हैं। इन सब्जियों को उगाने में ज्यादा लागत भी नहीं आती है। यदि स्कूली बच्चों के प्रतिदिन के भोजन में 37.5 ग्राम हरी पत्ते की सब्जियॉ हों तो उनके रक्त में हिमाग्लोबीन की मात्रा बढ़ जाती है। कुछ अपरिचित पत्ती वाली सब्जियों को सारिणी – 4 में दिया गया है।

सारिणी – 4 अपरिचित पत्ती वाली सब्जियाँ

सामान्य नाम	वानस्पतिक नाम	कुल
पोई	बसेला प्रजाति	बैसेलेसी
अगाथी	सेसबैनिया ग्रेंडीफ्लोरा	लेग्यूमिनोसी
कलमी साग	आइपोमिया एक्वाटिका	कानवालवुलेसी
करी पत्ती	कुरैया कोइनिगी	रुटेसी
स्विस चार्ड	बीटा वुल्गेरिस किस्म सिक्ला	चिनोपोडिएसी
नीवजीलैण्ड स्पिनाच	टेट्रागोनिया एण्क्सपेंसा	एजोएसी
कुल्फा	पारचुलाका ओलेरेसिया	पारचुलेकेसी
खट्टी पालक	रुमेक्स वेसिकैरियस	पालीगोनेसी
सहिजन	मोरिंगा ओलेईफेरा	मोरिंगेसी

स्विस चार्ड

इसकी पत्तियॉ पालक के पतें से काफी बड़ी होती है और पत्तियों के डंठल तथा शिराऍं सफेद या लाल रंग की होती है। इसकी खेती पालक जैसे बीज की बुआई द्वारा की जाती है। बुआई के 50 से 60 दिन बाद पत्तियॉ खाने योग्य तैयार हो जाती हैं।

न्यूजीलैण्ड स्पिनाच

इसकी पत्तियॉ स्पिनाच जैसी होती है लंकिन कस्पनाच की तुलना में थोड़ी छोटी होती है। इसको बीज के द्वारा उगाया जाता है। बुआई के 40 से 50 दिन बाद इसके डंठल एवं पत्तियॉ खाने योग्य तैयार हो जाती हैं।

कुल्फा

कुल्फा ग्रीष्म ऋतु में खरपतवार के रुप में उगता है। कुछ स्थानों पर इसकी हरी सब्जी के लिए खेती भी करते हैं। बुआई के एक महीने बाद इसके पौधे कटाई के योग्य हो जाते हैं। इसके रसीली शाखाओं और पत्तियों को हरी सब्जी के रुप में उपयोग में लाया जाता है।

खट्टी पालक

इसका खेती इसके खट्टे, स्वादिश्ट पत्तों के कतए की जाती है। इसके पौधे में जब फूल आता है तब वे शोभाकारी लगते हैं। अतः इसको शोभाकारी पौधें के रुप में भी उगाया जाता है।

पोई

पत्ती वाली सब्जियों में पोई का प्रमुख स्थान है। इसे पुर्वी भारत तथा दक्षिणी भारत में बहुतायत से उगाया जाता है। इसके पौधे लतानुमा होते हैं। जिनका किसी सहारे पर चढ़ा दिया जाता है। इसका प्रसारण बीज तथा कटिंग द्वारा सुगमतापूर्वक किया जाता है। कटिंग लगाने के कलए 45 से 60 दिन इाद पत्तियॉ सब्जी के लिए निकलने लगती हैं। इसके मुलायम तने तथा पत्तिायॉ दोनों सब्जी, सूप, पकौड़े आदि बनाने के काम में आते हैं। इसकी पत्तियों का रस पेट के अपच को दूर करने में सहायक होता है।

सहिजन

इसे देश के लगभग हर भाग में उगाया जाता है। इससका प्रसारण आसानी से किया जा सकता है। इसके 1.0 से 1.5 मीटर लम्बे व 3–4 सेमी0 मोटे तने के टुकड़े को मई जून के महीने में लगा देते हैं जिससे बरसात में नये कल्ले निकल आते हैं। इसके फलों की अच्छी सब्जी बनती हैं। इसकी पत्तियों की भी सब्जी बनायी जाता है। इसकी पत्तियों में कैल्शियम, आयरन, कैराटीन और विटामिन सी काफी मात्रा होती है। उत्तरी भारत में बहुवर्शीय किस्म के सहिजन पाये जाते हैं।

जबकि दक्षिण भारत में इसकी एक वर्शीय किस्में भी हैं, जिनका प्रसारण बीज द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। दक्षिण भारत में इसकी अहुत सारी स्थानीय किस्में हैं।

अगाथी

अगाथी का पौधा 10–12 मीटर ऊॅचा होता है। इसे दक्षिण भारत में काली मिर्च व पान के पौधे को सहारा देने के लिए इन फसलों के साथ उगाया जाता है। इसमें काफी शाखायें और पत्तियॉ निकलती हैं जिससे अच्छी छाया मिलती है। इसके पौधें को तमिलनाडु और केरल में नारियल के पौधों की नर्सरी के छाया के लिए जथा केले के उद्यानों के चारो तरफ हवा को रोकने के लिए विन्डब्रेक के रुप में उगाया जाता है। इसके पत्तियों और फूलों को खाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसकी पत्तियों में कैल्शियम, प्रोटीन और आयरन की काफी मात्रा पाई जाती है। इसो पत्तियॉ आयोडीन का भी अच्छा स्त्रोत हैं और इसके प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग से 2 मिग्रा0 आयोडीन पाया जाता है। इसके पौधें का प्रसारण पहले बीज को नर्सरी में उगाकर और फिर मुख्य खेत में रोपड़ करके किया जाता है। इसके पौधों में सितम्बर–दिसम्बर के महीने में फूल आता है तथा गर्मी में फलत आती है।

वैज्ञानिक विधि से बटन मशरुम की खेती

हिमांशु शेखर सिंह[1], आर0 एस0 नेगी[1], अखिलेश जागर[1] एवं मुकेश कुमार[2]

[1]दीनदयाल शोध संस्थान कृषि विज्ञान केन्द्र, मझगवां, सतना (म0 प्र0)

[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, मोतीपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)

परिचय :

भारत में मशरूम की खेती का प्रचलन दिन प्रतिदिन काफी बढ़ता जा रहा है जैसे–जैसे मनुष्य आधुनिक युग की तरफ अग्रसर हो रहे है, अपने शरीर के लिये पोषक तत्व युक्त, गुणकारी, पाचनशील एवं स्वादिष्ट सब्जी भी अपने भोजन में लेना पसंद कर रहे हैं। सदियों से खुम्ब (मशरुम) ने मनुष्य को आकर्षित किया है। इनके सुन्दर फलनकाय सहज ही हमारा ध्यान खींच लेते हैं। मशरुम एक प्रकार का मांशल कवक है जो अत्यंत स्वादिष्ट एवं पौष्टिक युक्त शाकाहारी भोजन है। प्रकृति में पाये जाने वाले सभी खुम्ब खाने योग्य नहीं हैं, उनमें से कुछ विषैले भी होते हैं। अभी तक विश्व भर में 1600 से अधिक खुम्ब की

किस्में मिल चुकी हैं जिनमें से लगभग 100 प्रकार के मशरुम हमारे भोजन में सम्मिलित भी हो चुके हैं। भारतवर्ष एवं अन्य सभी खुम्ब उत्पादक देशों में व्यावसायिक रुप से उगाए जाने वाले खुम्बों में बटन मशरुम (अगेरिकस बाइस्पोरस) ही सबसे अधिक उगाया जाता है। अगेरिकस की एक अन्य प्रजाति ”अगेरिकस बिटोरक्वीस“ भी व्यावसायिक रुप से उगायी जाती है परन्तु उत्तर भारत में बटन मशरुम की खेती के लिए ”अगेरिकस बाइस्पोरस“ की ही सिफारिश की जाती है क्योंकि यह प्रजाति अधिक लोकप्रिय है।

मशरूम की पौष्टिकता एवं औषधीय गुणः–

मशरूम एक पूर्ण स्वास्थ्यवर्धक है जो सभी लोगों, बच्चों से लेकर वृद्ध तक के लिए आवश्यक है। इसमे प्रोटीन, रेशा, विटामिन तथा खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। ताजे मशरूम में 80–90 प्रतिशत पानी, 12–35 प्रतिशत प्रोटीन, 26–82 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट एवं 8–10

प्रतिशत रेशा होता है। मशरूम शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढाता है जिससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। यह कैंसर की सम्भावना को कम करता है तथा कोलेस्ट्राल को भी कम करता है एवं रक्त शर्करा को सन्तुलित रखता है।

बटन मशरूम उगाने का समयः—

कृत्रिम रुप से विभिन्न वातावरण में इसे पूरे साल उगाया जा सकता है और इसकी चार फसलें ले सकते हैं। वैसे आमतौर पर बटन मशरुम (अगेरिकस बाइस्पोरस) को अक्तूबर से मार्च के बीच उगाया जाता है और तीन—तीन महीने की अवधि की दो फसलें ली जाती हैं। बटन मशरुम के कवक जाल की वृद्धि के लिए 22—25 डिग्री से. तापमान सबसे अनुकूल होता है जबकि फलनकाय बनने के लिए अनुकूलतम तापमान 14—18 डिग्री से. होता है तथा 14 डिग्री से. के नीचे तापमान पहुँचने पर कवक जाल और फलनकाय दोनों का बनना कम हो जाता है। 80—85 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता मशरुम वृद्धि के लिए आवश्यक है।

कम्पोस्ट बनाने की विधिः—

बटन मशरूम की खेती एक विशेष प्रकार की खाद पर ही की जाती है जिसे कम्पोस्ट कहते हैं। मशरूम कम्पोस्ट तैयार करने के लिए किसी विशेष मशीनरी या यन्त्र की आवश्यकता नही पड़ती है। कम्पोस्ट बनाने में निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता होती है—

गेहूं का भूसा 1000 किलोग्राम, अमोनियम सल्फेट, कैल्सियम अमोनियम नाईट्रेट— 27 किलोग्राम, सुपर फास्फेट— 10 किलोग्राम, यूरिया— 17 किलोग्राम, गेहूं का चोकर— 100 किलोग्राम एवं जिप्सम— 36 किलोग्राम. कम्पोस्ट तैयार होने में करीब 28—30 दिन का समय लगता है। सबसे पहले समतल एवं साफ फर्श पर भूसे को 2 दिन तक पानी डाल कर गीला किया जाता है, इस अवस्था में भूसे में नमी 75 प्रतिशत होनी चाहिए और भूसा अधिक गीला नहीं होना चाहिए। 2 दिन तक पानी गिराने के बाद फिर भूसे को तोड़ कर देखें, भूसा अन्दर से सुखा न हो तो ठीक है अन्यथा सुखा हो तो फिर से पानी मिलाएं। इस गीले भूसे में जिप्सम के अलावा सभी सामग्री को मिला कर उसे थोड़ा और गिला करें। इस बात का ध्यान रखें की पानी उसमें से बाहर न निकले फिर भूसे से एक मीटर चौड़ा एवं तीन मीटर तक लम्बा (कम्पोस्ट की मात्रा के अनुसार) और करीब डेढ़ मीटर ऊंचा चौकोर ढ़ेर बना लें। ढ़ेर को 2—3 दिन तक ऐसे ही पड़ा रहने दें। 3 दिन बाद ढ़ेर की पलटाई शुरू करें एवं ध्यान रखें की ढ़ेर के अन्दर का हिस्सा बाहर और बाहर का हिस्सा अन्दर आ जाए। पलटाई करने का विवरण निम्नलिखित है—

दिवस पलटाई विवरणः–

शुरू से दो दिन– भूसे को गीला करना, जिप्सम को छोड़कर सारी सामग्री मिलाकर पानी छिड़क कर उसका ढ़ेर बना लें।

तीसरा दिन– पहली पलटाईः ढेर को इस तरह पलटें कि ऊपर का हिस्सा निचे और निचे का हिस्सा ऊपर हो जाए, इस पर 0.1 प्रतिशत की दर से डेल्टामेथ्रिन दवा का छिड़काव करना चाहिए जिससे मक्खियां न बैठे और आसपास फोर्मलिन 6 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

छठे दिन– दूसरी पलटाईः ढेर की दूसरी बार पलटाई करें।

नौवां दिन– तीसरी पलटाईः जिप्सम को मिलकर पलटाई करें एवं पुनः ढ़ेर बना दें।

बारहवां दिन– चौथी पलटाईः पलटाई करके फोर्मलिन 6 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

पन्द्रहवां दिन– पांचवी पलटाई।

अठारवां दिन– छटी पलटाईः आस पास फोर्मलिन 4 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

इक्कीसवां दिन– सातवीं पलटाई करें और साथ ही कम्पोस्ट को सूंघ कर देखें यदि अमोनिया की गंध आ रही हो तो पलटाई ठीक से करें।

चौबीसवां दिन– आठवीं पलटाईः इस पलटाई में अमोनिया की गंध बिल्कुल नहीं होनी चाहिए और यदि है तो एक बार और एक दिन बाद फिर से पलटाई करें नहीं तो पैदावार कम और प्रभावित होती है। कम्पोस्ट में नमी की मात्रा देखने के लिए उसे मुट्ठी में ले कर दबाएं, यदि थोड़ा पानी उंगलियों के बीच नजर आये तो उपयुक्त है. यदि अधिक पानी रह गया है तो कम्पोस्ट को थोड़ा फैला दें जिससे अतिरिक्त नमीं उड़ जाए।

सत्ताईसवां दिन– कम्पोस्ट खाद बीज मिलाने (स्पानिंग) के लिए तैयार है।

अच्छे कम्पोस्ट के गुणः–

(1) कम्पोस्ट तैयार करने के लिए एक साल से अधिक पुराना भूसा प्रयोग नहीं करना चाहिए और प्रयोग में लाया जाने वाला भूसा बारिश में भीगा नहीं होना चाहिए। 8–10 सें. मी. लम्बाई का कटा भूसा ही सही रहता है।

(2) सही ढंग से तैयार कम्पोस्ट गहरे भूरे रंग की होती है और उसमें अमोनिया की दुर्गन्ध नहीं आती।

(3) कम्पोस्ट का पी. एच. मान लगभग उदासीन रहना चाहिए अर्थात 7 और 7.5 के बीच होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में यह 8.0 से अधिक नहीं रहना चाहिए अन्यथा कवक

जाल की वृद्धि के लिए हानिकारक होगा।

(4) कम्पोस्ट में जल की मात्रा 67–70 प्रतिशत की सीमा के भीतर रहनी चाहिए। मशरूम की वृद्धि के लिए 68 प्रतिशत जल की मात्रा सर्वथा उपयुक्त रहती है।

बीजाई (स्पानिंग):–

मशरूम का बीज ताजा, पूरी बढ़वार लिए एवं अन्य फफूंद से मुक्त होना चाहिए। बीज की मात्रा एक क्विंटल कम्पोस्ट में 0.75 से 1 किलोग्राम होनी चाहिए। इस बीज को कम्पोस्ट में अच्छी तरह मिलाकर या तो पोलीथिन शीट (6–8 इंच) या पोलीथिन की थैलियों (12 इंच) में भर दें। पोलीथिन की थैलियों को ऊपर से मोड़ कर बंद कर देना चहिए। थैलियां 8 किलोग्राम कम्पोस्ट खाद भरने के लिए उपयूक्त हों।

अच्छे स्पान के गुण:–

एक अच्छे स्पान में सफेद रंग का कवक जाल अच्छी तरह फैला होना चाहिए। एक महीने से अधिक पुराना स्पान प्रयोग नहीं करना चाहिए और यदि आवश्यकता हो तो इसका भण्डारण 5 डिग्री से. तापमान पर करना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का संदूषक नहीं होना चाहिए अर्थात दूसरे सूक्ष्मजीवों से मुक्त होना चाहिए और क्षेत्र विशेष के लिए जिसकी संस्तुति की गई हो।

कवक जाल का बनना:–

बीजाई के पश्चात थैलियों को खुम्बी कक्ष में रख दें तथा इन पर पुराने अखबार बिछाकर पानी से भिगो दें। कमरे में पर्याप्त नमी बनाने के लिए कमरे के फर्श व दीवारों पर भी पानी छिडकें। इस समय कमरे का तापमान 22–26 डिग्री सेंन्टीग्रेड तथा नमी 80–85 प्रतिशत के बीच होनी चाहिए। अगले 15 से 20 दिनों में खुम्बी का कवक जाल पूरी तरह से कम्पोस्ट में फैल जाएगा और उसके बाद केसिंग की आवश्यकता होती है। इन दिनों खुम्बी को ताजा हवा नही चाहिए, अतः कमरे को बंद रखें।

केसिंग करना:–

केसिंग के लिए उपयुक्त मिश्रण इस प्रकार है:–

(1) एफ वाई एम, दोमट मिट्टी (1:1)

(2) एफ वाई एम (2 साल पुरानी), बटन मशरूम की खाद (1:1)

(3) एफ वाई एम (दो साल पुरानी), दोमट मिट्टी, बटन मशरूम की खाद (1:1:1)

उपरोक्त किसी भी एक मिश्रण को लें परन्तु मिश्रण– 2 सर्वाधिक उपयुक्त एवं अधिक उपज देने वाला है। केसिंग मिट्टी का निर्जीवीकरण फोर्मेलिन 6 प्रतिशत के घोल से करना चाहिए एवं उसे 48 घंटे तक 400 गेज की पारदर्शी पन्नी से ढककर रखना चाहिए, उसके बाद इसे खोलकर 24 घंटे

तक फैलाकर रखें ताकि मिश्रण सूख जाए। स्पान रन कम्पोस्ट पर एक इंच मोटी परत इस केसिंग मिट्टी की लगनी चाहिए एवं पानी इस तरह छिडके की केवल केसिंग ही गीली हो। कमरे का तापमान 20 से कम एवं नमी 70—90 प्रतिशत के बीच होनी चाहिये, साथ ही स्वच्छ हवा का आगमन होना चाहिए। केसिंग करने के लगभग 10—12 दिन के पश्चात इसमें छोटे —छोटे मशरूम के अंकुरण बनने शुरू हो जाते हैं। इस समय से केसिंग पर 0.3 प्रतिशत कैल्सियम क्लोराइड का छिड़काव दिन में दो बार पानी के साथ करना चाहिए जिससे मशरूम अगले 5—7 दिनों में बढ़कर पूरा आकर ले लेते हैं तत्पश्चात इन्हें घुमाकर तोड़ लेना चाहिए। तोड़ने के बाद नीचे की मिट्टी लगे तने को चाकू से काटकर अलग कर दें। केसिंग लगाने के करीब 80 दिनों तक फसल प्राप्त होती रहती है।

फलनकाय का बनना तथा उनकी तुड़ाईः—

खुम्बी की बीजाई के 35—40 दिन बाद या मिट्टी चढ़ाने के 15—20 दिन बाद कम्पोस्ट के ऊपर मशरूम के सफेद फलनकाय दिखाई देने लगते हैं जो अगले चार पांच दिनों में बटन के आकार में बढ़ जाते हैं। जब खुम्बी की टोपी कसी हुई अवस्था में हो तथा उसके नीचे की झिल्ली साबुत हो, तब खुम्बी को हाथ की उंगलियों से हल्का दबाकर और घुमाकर तोड़ लेते हैं। कम्पोस्ट की सतह से खुम्बी को चाकू से काटकर भी निकाला जा सकता है। सामान्यतः एक फसल चक्र (6 से 8 सप्ताह) में खुम्बी के 5—6 फल आते हैं। पॉलीथीन की थैलियों में मशरूम उगाने की विधि से 100 कि.ग्रा. कम्पोस्ट से 16—20 कि.ग्रा. ताजा मशरूम प्राप्त किया जा सकता है।

भंडारण एवं पैकिंगः—

मशरूम तोड़ने के बाद आकार के अनुसार उनकी छटनी कर लें तथा 3 प्रतिशत कैल्शियम क्लोराइड घोल से धोकर फिर उसे साफ पानी से धोएं तत्पश्चात इसे कपड़े पर फैला दें ताकि अतिरिक्त पानी सूख जाए फिर 250—500 ग्राम तक के पैकेट बना कर सील कर दें। इसे रेफ्रीजरेटर में 7—8 दिन तक रख सकते हैं। ताजा मशरूम भी बाजार में आसानी से बिक जाती है। मशरूम के अन्य उत्पाद जैसे— आचार, चिप्स, बिस्कुट, सूप, पाउडर एवं नूडल्स आदि बना कर भी बाजार में बेचा जा सकता है।

सोयाबीन के महत्वपूर्ण कीट, रोग एवं उनकी रोकथाम

नीलम सोनी[1], निकिता देवांगन[1] एवं मुकेश कुमार[2]
[1]जवाहरलाल नेहरु कृशि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म0 प्र0)
[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, मोतीपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सोयाबीन (ग्लायसीन मैक्स) दलहन के बजाय तिलहन की फसल मानी जाती है। शाकाहारी मनुष्यों के लिए इसको मांस भी कहा जाता है क्योंकि इसमें बहुत अधिक प्रोटीन होती है। सोयाबीन एक महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत है, जिसमे मुख्य रूप से प्रोटीन, कार्बोहाइडेंट और वसा होते है। इसमें 22 प्रतिशत तेल, 21 प्रतिशत कार्बोहाइडेंट,38–40 प्रतिशत प्रोटीन,12 प्रतिशत नमी तथा 5 प्रतिशत भस्म होती है। कार्बोहाइडेंट के रूप में आहार रेशा, शर्करा, रैफीनोस एवं स्टाकियोज होता है जो कि पेट में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों के लिए लाभप्रद होता हैं। सोयाबीन तेल में लिनोलिक अम्ल एवं लिनालेनिक अम्ल प्रचुर मात्रा में होते हैं। सोया प्रोटीन मानव रक्त में कोलेस्टेरॉल की मात्रा कम करने में सहायक होता है। विश्व का 60 प्रतिशत सोयाबीन अमेरिका में पैदा होता है। भारत मे सबसे अधिक सोयाबीन का उत्पादन मध्यप्रदेश करता है। मध्यप्रदेश के इंदौर में सोयाबीन रिसर्च सेंटर है। सोयाबीन मे विभिन्न तरह के कीटो एवं रोगो का आपतन होता है जिससे सोयाबीन के बीज, तेल व खरी मे गुणवत्ता एवं उत्पादन का ह्रास होता है। सोयाबीन के मुख्य कीट एवं रोग निम्नलिखित है–

प्रमुख कीट–

1. गर्डल बीटल– इस कीट की मादा पत्ती के पर्णवृन्त या डंठल पर चक्र (रिंग) बनाती है तथा नीचे वाले चक्र के पास तीन छोटे–छोटे छेद बनाकर बीच वाले छेद में अंडा दे देती हैं। जिससे चक्र के ऊपर का भाग सूख जाता है। इल्लियाँ पौधों को भूमि के ऊपर से काट कर गिरा देती है।

रोकथाम– इस कीट के नियंत्रण हेतु क्लोरेन्ट्रानीलीप्रोल 18.5 (एस.सी.) 6 मिली या बीटा–साइफ्लुथ्रिन +. इमिडाक्लोप्रिड 12 मिली. प्रति टंकी (15 ली.) की दर से छिडकाव करें।

गर्डल बीटल

2 हरी अर्द्धकुण्डलाकार इल्ली— इसकी कीट की सूंडियाँ प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों के हरे भाग को खुरच कर खाती रहती है तथा बाद में विभिन्न आकार में पत्तियों में छेदकर खाती हैं जिससे केवल पत्तियों की शिराएं बची रहती हैं। इसकी इल्ली फूलों तथा फलियों को भी खाती हैं, जिससे अफलन की स्थिति निर्मित होती है।

हरी अर्द्धकुण्डलाकार इल्ली

रोकथाम— इस कीट के नियंत्रण के लिये क्लोरेन्ट्रानीलीप्रोल 18.5 (एस.सी.) 6 मिली या इन्डोक्साकार्ब 14.5 (एस.सी.) 15 मिली. प्रति टंकी (15 ली.) की दर से छिडकाव करें।

3. तना मक्खी— सोयाबीन की फसल में यह कीट प्रारंभिक (15–20 दिन बाद) अवस्था में ही आक्रमण करता है। इस कीट की प्रौढ मक्खी पत्तों के निचले शिरे पर अपने अंडे रखती है जिससे कुछ समय बाद सुनहरे पीले रंग की मैगट निकलकर पत्तियों के डंठल या मुलायम तने में छेद कर देती है तथा नीचे की तरफ खाती हुई सुरंग बना देती है जिससे पौधों की पत्तियां मुरझाकर लटक जाती है तथा पौधों की मृत्यु हो जाती है।

तना मक्खी

रोकथाम— इस कीट के नियंत्रण हेतु क्लोरेन्ट्रानीलीप्रोल 18.5 (एस. सी.) 6 मिली या बीटा–साइफ्लुथ्रिन +. इमिडाक्लोप्रिड 12 मिली प्रति टंकी की दर से छिडकाव करें।

4. सफेद मक्खी— यह सोयाबीन की फसल का प्रमुख कीट है। इस कीट का पूरा शरीर मोम जैसे पदार्थ से ढका रहता है इसीलिये इसे सफेद मक्खी कहा जाता है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ दोनो ही पौधों की नयी पत्तियों से रस चूसते है जिससे पत्तियों की शिरायें पीली पड़कर कमजोर हो जाती हैं तथा पत्तियों की मोटाई सामान्य से कुछ अधिक हो जाती है। प्रभावित पौधों पर फूल एवं फल कम लगते है। यह कीट पौधों में विषाणु रोग फैलाते हैं।

सफेद मक्खी

रोकथाम— इस कीट की रोकथाम हेतु फ्लोनीकामिड 50 (डब्ल्यू.जी.) 8 ग्रा. या एफिडोपायरोपेन 50 (जी.एल.) 40 मिली / टंकी की दर से 2–3 छिड़काव करें। एक ही दवा का दोबारा प्रयोग नहीं करना चाहिए।

5. हरा फुदका– इस कीट के प्रौढ़ तथा शिशु दोनों ही पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। ये कीट छोटे, पीले या हल्के हरे रंग के होते हैं जिनके पंखो पर काले धब्बे पाये जाते हैं। पत्तियों से रस चूसने के कारण पत्तियॉ किनारे से पीली पड़कर सिकुड़ जाती हैं तथा कुछ दिनों बाद भूरे रंग की होकर सूख जाती हैं।

रोकथाम– इस कीट की रोकथाम हेतु आवश्यकतानुसार कीटनाशी जैसे– फ्लोनीकामिड 50 (डब्ल्यू.जी.) 8 ग्रा. या थायमेथोक्जाम 25 (डब्ल्यू.जी.) 10 ग्राम. प्रति टंकी की दर से 10–12 दिन के अंतराल पर 2 छिड़काव करें।

प्रमुख रोग–

1. गर्दनी सड़न–

यह बीमारी मृदा जनित है एवं प्रायः सभी जगह पाई जाती है। तने का निचला हिस्सा जो जमीन से लगा होता है वहां यह फफूंद हल्के भूरे रंग के धब्बे बनाता है। तने का यह हिस्सा फफूंद के सफेद कवकजाल से ढक जाता है व इस पर लाल–भूरे रंग के सरसों के बीज जैसी आकार के गोल स्केलेरोशिया बनते हैं जो कि इस रोग का प्रमुख लक्षण है।

रोकथाम– 1. बीज को बुवाई से पहले पाइरेक्लोस्ट्रोबीन + थायोफेनेट मेथाइल 2 मिली प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

2. रोग का आक्रमण दिखाई देते ही टेबूकोनाजोल 25ण9 (ई.सी.) 25 मिली प्रति टंकी (15 ली.) की दर से ड्रेन्चिंग करें।

गर्दनी सड़न

2. अंगमारी एवं फली झुलसन–

यह बीमारी अधिक तापक्रम व अधिक नमी होने पर पौधों पर दिखाई देती है। रोग का प्रकोप पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है परन्तु लक्षण प्रायः फूल आने के समय तने, पर्णवृत्ति व फली पर दिखाई देते हैं। आरम्भ में लाल से गहरे भूरे रंग के किसी भी आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में यह धब्बे फफूंद की काली संरचनाओं से ढक जाते हैं। इस बीमारी की वजह से फलियां पीली–भूरी हो जाती है, बीज भी प्रभावित होता है परिणाम स्वरुप दाने सिकुड़ जाते हैं व कभी–कभी बन ही नहीं पाते। रोगग्रसित बीज को बोने पर पौधे जमीन से बाहर निकलने से पहले या तुरंत बाद मर जाते है।

रोकथाम– इस रोग के नियंत्रण हेतु रोग के लक्षण दिखाई देते ही कवकनाशी जैसे– टेबूकोनाजोल 25.9 (ई.सी.) 25 मिली या टेबूकोनाजोल + ट्राईफ्लोक्सीस्ट्राबिन 75 (डब्ल्यूण्जी.) 15 ग्राम प्रति टंकी (15 ली.) की दर से 2 छिडकाव करें।

3. जीवाणुजनित झुलसा–

पौधों मे इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम ऊपरी (नयी) पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इस रोग में पत्तियों पर भूरे रंग के कोणीय धब्बे बनते हैं जिनके किनारे पीले रंग के छल्लो से घिरे होते हैं। नम वातावरण में धब्बे आपस में मिल जाते हैं। पत्तियां कटी.फटी एवं पुरानी जैसी दिखाई देती है। इस रोग का आक्रमण शाखाओं तथा फलियों पर भी होता है।

जीवाणुजनित झुलसा

रोकथाम– इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही प्लान्टोमाइसिन 8 ग्राम तथा कॉपर आक्सीक्लोराइड 50 (डब्ल्यूण्पी.) 40 ग्राम प्रति पम्प की दर से मिलाकर 10–12 दिन के अंतराल पर 2 छिड़काव करें।

4. पीला मोजैक वायरस–

यह विषाणु रोग जनित बीमारी मुख्यतया सोयाबीन उत्पादन करने वाले सभी क्षेत्रों में पाई जाती है। पत्तियों के हरे भाग में पीले पीले धब्बे बन जाते है जो या तो पूरी पत्ती में फैले होते है या फिर अनियमित धारियों के रुप में पत्ती की मुख्य शिरा के साथ बनते है। पत्ती ज्यों ज्यों पुरानी होती जाती है, पीले धब्बों के बीच में भूरे रंग के मुर्चे जैसे धब्बे बनने लगते है। रोग ग्रसित पौधों में फूल और फलियां कम निकलती है। ग्रसित पौधे से उत्पन्न बीज में तेल की मात्रा कम हो जाती है परन्तु प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है। इस रोग के विषाणु सफेद मक्खी द्वारा फैलाये जाते हैं।

पीला मोजैक वायरस

रोकथाम– 1. रोग रोधी किस्में जैसे– एन0आर0सी0 37, जे0एस0 9560, जे0एस0 9305 इत्यादि उगायें।

2. इस कीट के नियंत्रण हेतु फ्लोनीकामिड 50 (डब्ल्यू. जी.) 8 ग्रा. या एफिडोपायरोपेन 50 (जी.एल.) 40 मिली / टंकी की दर से 2–3 छिड़काव करें। एक ही दवा का दोबारा प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नील हरित शैवाल एक जैविक खाद

[1]सुहाना पुरी गोस्वामी, [1]अजय बाबू ,[1]अखिला नंद दुबे और [2]संजीत कुमार सिंह

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग

कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस, उत्तरप्रदेश, 221005

[2]कृषि कीट विज्ञान, श्री मुरली मनोहर टॉउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, उत्तर प्रदेश

नील हरित शैवाल प्रकाश संश्लेषण से ऊर्जा उत्पादन करते हैं। यह जीवाणु के नीले रंग के कारण इसका नाम सायनो (अर्थात नीला) से पड़ा है। नील हरित काई वायुमंडलीय नाइट्रोजन यौगिकीकरण कर, धान के फसल को आंशिक मात्रा में की नाइट्रोजन पूर्ति करता है। यह जैविक खाद नत्रजनधारी रासायनिक उर्वरक का सस्ता व सुलभ विकल्प है जो धान के फसल को, न सिर्फ 25–30 किलो ग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर की पूर्ति करता है, बल्कि उस धान के खेत में नील हरित काई के अवशेष से बने सेन्द्रीय खाद के द्वारा उसकी गुणवत्ता व उर्वरता कायम रखने में मददगार साबित होती है।

नील हरित काई के उपयोग से लाभ

1. नील हरित काई एक जैविक खाद है जिसे धान उत्पादक किसान अपने स्तर पर आसानी से तैयार कर सकते हैं।
2. नील हरित काई सामान्य रूप से धान के फसल को करीब 25 से 30 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर नत्रजन की पूर्ति करता है।
3. यह काई उपचार के पश्चात् प्रत्येक सीजन में अपने अवशेषों के द्वारा करीब 800 से 1200 किलो ग्राम तक सेन्द्रीय खाद प्रति हैक्टर की पूर्ति करता है जिसकी वजह से उसे खेत के मिट्टी की गुणवत्ता और उपजाऊ क्षमता कायम रहती है।
4. नील हरित काई के द्वारा कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ स्त्रावित होता है जिससे बीजों का अंकुरण और फसलों में सामान रूप से वृद्धि होती है।
5. लगातार 3–4 वर्षों तक यदि धान के उसी खेत में नील हरित काई का उपयोग किया जाये तो आने वाले कई सीजन तक पुनः उपचार करने की आवश्यकता नहीं होता साथ में इस काई के उपयोग का लाभ आगामी उन्हारी फसल पर भी देखा गया है।

6. जैविक खाद के रूप में नील हरित काई के उपयोग के फलस्वरूप अतिरिक्त उपज मिलने से करीब 400 से 500 रू. प्रति हैक्टर तक शुद्ध आमदनी होती है।

धान के खेत में नील हरित काई का उपचार

1. ब्यासी करने के बाद अथवा रोपा लगाने के 6 से 10 दिन के भीतर ही नील हरित काई का उपचार किया जाना आवश्यक है। इस काई के उपचार के पहले ध्यान रहे, धान के खेत में 8 से 10 से.मी. से ज्यादा पानी न हो। खेत सूखने न पाये इसके लिये खेत के मेड़ों में से चूहे के बिल आदि छेदों को तथा मुही को बंद कर दिया जाय।
2. ब्यासी के समय अथवा रोपा के लिये खेत तैयार करने के समय ही स्फुर (फास्फोरस) की पूरी मात्रा डाल दें। स्फुर की उपस्थिति, नील हरित काई की वृद्धि के लिये आवश्यक होता है।
3. धान के खड़े फसल में नील हरित काई की सिर्फ 10 किलो ग्राम सुखे पाउडर प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है जिसे पूरे खेत में छिड़क कर बिखेर देना चाहिए।
4. खेत में जलीय कीड़े लगने पर आवश्यक कीटनाशक दवाईयों का उपयोग किया जा सकता है। इन कीट नाशक दवाईयों का प्रतिकुल प्रभाव नील हरित काई के वृद्धि में नहीं होता।
5. यदि धान के खेत में गहरे रंग के हरे रेशेदार स्थानीय काई दिखे जो कि धान के फसल के लिये नुकसान दायक होता है, उसे नष्ट करने के लिये नीला थोथा (कापर सल्फेट) का 0. 05 प्रतिशत घोल (1 ग्राम एक लिटर पानी में) का छिड़काव किया जाय। इसे हर तीन चार दिन में दुबारा छिड़कें इससे हरा काई समूल नष्ट हो जायेगा।
6. इस जैविक खाद के साथ ही नत्रजन धारी रासायनिक उर्वरक का भी सीमित मात्रा में उपयोग किया जा सकता है। यदि ऐसे रासायनिक उर्वरक का उपयोग करना चाहें तो कंसा निकलने के समय या सिफारिश के मुताबिक एक तिहाई यूरिया की मात्रा को बचाकर, बाकी यूरिया के उपयोग से ज्यादा उत्पादन लिया जा सकता है।
7. एक बार जिस खेत में नील हरित काई जैविक खाद का प्रयोग किया गया हो वहां यही कोशिश रहे कि उस खेत में लगातार 3 से 4 वर्षों तक इस जैविक खाद का उपयोग होता रहे। इससे आने वाले वर्षों में इस काई के पुर्नउपचार की आवश्यकता नहीं होती। साथ ही

उस भूमि की उर्वरता बनी रहती है।

8. जिस खेत में नील हरित काई का उपचार किया गया हो अगले उन्हारी सीजन में कोई भी फसल (विशेषकर चना) लेना अत्यंत लाभप्रद पाया गया है।

नील हरित काई के उत्पादन की विधि

इस जैव उर्वरक के उत्पादन लेने के पहले कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना आवश्यक है जो निम्नलिखित है अन्यथा उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

1. छाया से दूर, खुला स्थान
2. मातृ कल्चर
3. सिंगल सुपरफास्फेट
4. कीटनाशक दवाई जैसे मेलाथियान
5. आवश्यकतानुसार चूना
6. पास ही पानी का खेत

यद्यपि नील हरित काई का उत्पादन कई प्रकार से लिया जाता है, जैसे लोहे की ट्रे, पालीथीन चादरों से ढके कच्चे गड्ढों में, ईटों व सीमेंट से बने पक्के गड्ढों में किन्तु आर्थिक रूप से पिछड़े छोटे व सीमांत किसानों के लिये ये उपरोक्त सभी तरीके खर्चीले होते हैं।

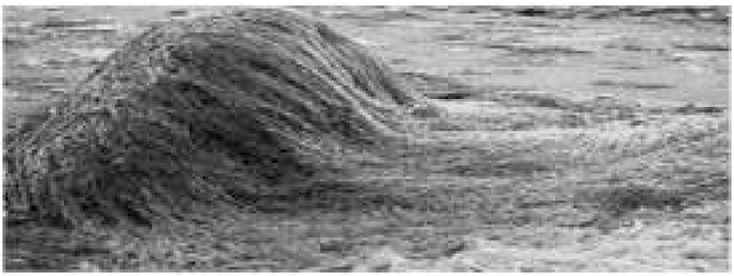

नील हरित काई कल्चर के उत्पादन की ग्रामीण तकनीक

निम्नलिखित विभिन्न चरणों में उपरोक्त विधि से सरलतापूर्वक अच्छा गुणकारी उत्पादन लिया जा सकता है।

1. छाया से दूर किसी भी खुले स्थान पर जहां पानी का स्रोत नजदीक हो वहां 5 से 10 मीटर अपनी आवश्यकतानुसार लम्बा 1 से 1.5 मीटर चौड़ा तथा करीब 15 सें.मी. गहरा गड्ढा तैयार करें। उस गड्ढे से निकाली गई मिट्टी को गड्ढे के चारों ओर पाल पर जमाकर रख दें ताकि गड्ढे की गहराई करीब 5 सें.मी. और बढ़ जाये। इस प्रकार के दो गड्ढों के बीच करीब 60 सें.मी. जगह छोड़ दें जिससे अवलोकन और दूसरे कार्यों के लिये आने जाने की सुविधा बन सकें।

2. इस गड्ढे में लगातार 2–3 दिनों तक पानी भरते रहें। एक समय ऐसा आयेगा जब पानी का रिसना कम हो जायेगा। ऐसी स्थिति में उस गड्ढे में पानी भरकर खूब मचा ले इससे रिसने वाले मिट्टी के छोटे छोटे छिद्र बंद हो जायेंगे।

3. ऐसी स्थिति आने पर खाली गड्ढे में 100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से पूरे गड्ढे में नापकर सुपरफास्फेट या रॉक फास्फेट छिड़ककर उसे मिट्टी में हाथ से मिला दें। यदि काली मिट्टी वाली जगह हो तो करीब 25 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से चूना भी मिला दें।

4. तत्पश्चात उक्त गड्ढे में 15 सें.मी. तक पानी भर दें।

5. गड्ढे में भरा पानी जब स्वच्छ लगे तो उसमें 100 ग्राम नील हरित काई का मातृ कल्चर प्रतिवर्ग मीटर के हिसाब से मापकर पूरे गड्ढे में छिड़क दें साथ ही इस मौसम में उत्पन्न होने वाले कीड़ों को नष्ट करने के लिये 1 मिली लीटर मेलाथियान या कार्बोफ्यूरान 3 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से डाल देना चाहिये।

6. नील हरित काई से उपचारित इस गड्ढे पर इतना ध्यान रखें कि गड्ढा कभी भी सुखने न पाये। पानी की कमी होने के स्थिति में उसमें सुबह या शाम के समय पानी भरकर 10–15 सें.मी. तक जलस्तर रखें।

7. ध्यान से देखने पर इस गड्ढे पर 3–4 दिनों के भीतर ही उसके सतह का रंग बदलने लगता है और पतली तह के रूप में नील हरित काई का बनना प्रारंभ हो जाता है जो धीरे–धीरे 10–15 दिनों में मोटी तह के रूप में यह कल्चर उभरने लगता है।

8. यही मोटी तह पूरी जमीन की सतह में उभर जाती है अथवा उसका कुछ भाग गर्मी के दिनों में पानी के ऊपर तैरने लगता है। इस तैरते हुये कल्चर को इकट्ठा कर जिसमें मिट्टी का अंश नहीं के बराबर होता है, इसे पुनः मातृकल्चर के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

9. गड्ढे में उत्पादित इस कल्चर को दो प्रकार से निकाला जा सकता है। या तो इस गड्ढे को दो दिन तक पूरी तरह सूखने दीजिये और वहां की सूखे पपड़ी को इकट्ठा कर स्वच्छ थैलियों में रखते जाईये। दूसरे प्रकार में गीली अवस्था में ही मोटी तह को बड़े झारे से निकाल कर पूरी तरह सूखाकर इसे इकट्ठा करते जाइये। यही सूखा कल्चर नील हरित काई जैव उर्वरक है।

उत्पादन में ध्यान रखने योग्य बातें

1. पानी का स्रोत ज्यादा दूर न हो।
2. गड्ढा कभी सुखने न पाये। हमेशा गड्ढा में कम से कम 10–15 से.मी. पानी बना रहना चाहिये।
3. किसी भी गड्ढे से तीन बार उत्पादन लेने के पश्चात् पुनः रॉक फास्फेट का आधा भाग याने 100 ग्राम रॉक फास्फेट प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से दुबारा डाले। इससे आशातीत उत्पादन लिया जा सकता है।

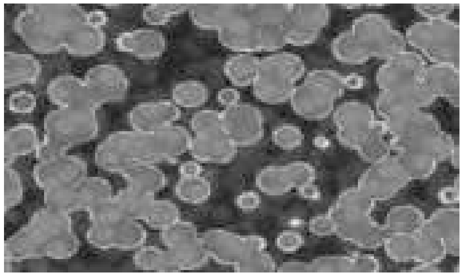

4. किसी भी गड्ढे में कीड़े दिखने की अवस्था में ऊपर बताये कोई भी कीटनाशक का अवश्य छिड़काव करें अन्यथा उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
5. किसान अपने खेत में जो काई देखते हैं वह श्नील हरित काईश न होकर श्हरी काईश होता है। गहरे रंग की रेशेदार यह काई पानी के ऊपर ही फैलती है जो धान के पौधे के लिये नुकसानदायक होता है। इसे नष्ट कर देना ही हितकर होता है। इसे नष्ट करने का भी सुलभ सरल और कम लागत वाला तरीका ईजाद किया गया है। जहां भी हरी काई दिखें वहीं 1 ग्राम नीलाथोथा को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़क दें। इससे हरी काई 3–4 दिनों में नष्ट हो जाती है। चूँकि यह हरी काई कुछ दिनों बाद फिर से दिखने लग जाती है इसलिये नीलाथोथा का छिड़काव समयानुसार करते रहना चाहिए। ध्यान रहे किसी भी हालत में नीला थोथा की मात्रा ज्यादा न हो अन्यथा यह धान फसल पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है।
6. नील हरित काई के उत्पादन के लिये कम से कम 30 सेल्सियस तापमान का होना आवश्यक होता है साथ ही खुला सूर्य का प्रकाश भी उस पर पड़ना चाहिये। 45 सें.ग्रे. से ऊपर के तापमान में इसका उत्पादन प्रभावित होता है इसीलिये बदली वाले खरीफ, ठंड के दिनों तथा छायायुक्त जगह में इसका उत्पादन नहीं होता।
7. मिट्टी का स्वभाव भी उत्पादन को प्रभावित करता है। अम्लीय मिट्टी नील हरित काई के उत्पादन के लिये उपयुक्त नहीं पायी गई है। उदासीन अथवा थोड़ी क्षारीय भूमि में इस कल्चर की अच्छी वृद्धि होने की संभावना रहती है ।

सूत्रकृमि से फसलों में नुकसान एवं प्रबन्धन

डा. अर्चना उदय सिंह
सूत्रकृमि विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

सूत्रकृमि विज्ञान के अन्तर्गत सूत्रकृमियों का जीवन चक्र, पोषण, व्यवहार, दिखने वाले लक्षण एवं इनके द्वारा फसलों में क्षति तथा इस नुकसान को रोकने का नियंत्रण आता है। सूत्रकृमि . सूक्ष्म जीव फाइलम नेमेटोडा में वर्गीकृत किये गये है। ये छोटे, पतले, खण्ड रहित एवं धागे की तरह के आकार के होते हैं। ये द्विलिंगी तथा इनके शरीर में कूटगुहा होती है। सूत्रकृमि का वितरण हमारे देश के सभी राज्यों में है। हमारे देश में सर्वप्रथम दास गुप्ता (1962) ने दिल्ली में विभिन्न सब्जियों में 60% के नुकसान का आकलन किया। भट्टी तथा जैन ने (1971) में भिण्डी 91%, टमाटर 46% तथा बैगन 27% की वार्षिक हानि बताई। डा. गौड ने (1973) में बहुत सी फसलों में भारी क्षति का अनुमान लगाया हैं। डा. डी. प्रसाद ने मुगँफली एवं सोयावीन की फसलों पर 35% का अनुमान लगाया और 1993 से इसका वैज्ञानिक प्रकाशन शुरू किया गया। सूत्रकृमि उपांग रहित तथा पौधों की कोशिकाओं से अपना पोषण मुख में उपस्थित शुक्रिका अथवा शूलनाशक संरचना के द्वारा करते है। ये सूक्ष्मदर्शी जीव हर प्रकार के वातावरण में पाये जाते हैं। सभी ऋतुओं में विभिन्न प्रकार की मिट्टी में सूत्रकृमि पाया गया है। इसकी लगभग 1,00,000 प्रजातियाँ विश्व में मिलती हैं।एक पौधे पर कई प्रकार के सूत्रकृमियों का संक्रमण हो सकता है। प्रायः परजीवी सूत्रकृमि की लम्बाई 2 मि० मी० तथा व्यास 0.05 मि० मी० से कम होती है। इनको नंगी आँखों से देखना संम्भव नहीं है। ये पोशण के लिए जीवाणु, फफूँदी, विषाणु अथवा अन्य सूक्ष्म जीवों पर निर्भर रहते हैं। इसकी बहुत सारी प्रजातियाँ पौधों, कीट, जन्तुओं तथा पक्षियों पर एक परजीवी के रूप में पाये गये हैं।

सूत्रकृमि का रूप

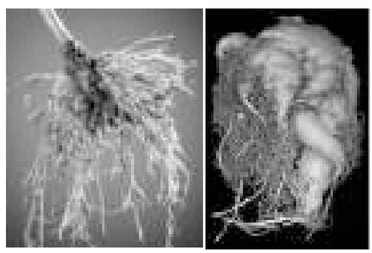

जड़गाँठ रोग

ये पौधों की जड़ों एवं बाहर से भी पोषण लेते हैं। इनको जड़ों में प्रवेश करने के आधार पर अर्ध अंतर्जीवी एंव पूर्ण अंतर्जीवी भी कहते है। इनको दो भागों में वाँटा गया है।

(I) भूमिगत परजीवी

(II) भूमि के ऊपर के परजीवी

(I) भूमिगत परजीवी

जड़गाँठ सूत्रकृमि – मेलोइडोगाइनी – ये प्रायः हर प्रकार की फसल में पाये जाते हैं। ये सूत्रकृमि विस्तृत परपोषी क्षेत्र में आने वाले प्राणियों में आते हैं। ये फल, सब्जियाँ, तिलहन, अनाज, दलहन, औषधि तथा फूलों वाली फसलें में वहुतायत में मिलते हैं। ये 15°–$30^\circ C$ पर बालु तथा हल्की मिट्टी में अधिक विकसित होते हैं। विभिन्न प्रकार की प्रजातियों द्वारा विभिन्न प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं। जड़गाँठ सूत्रकृमि की विभिन्न प्रजातियों द्वारा अलग अलग तरह की गाँठें बनती हैं। गाँठों का आकार पौधों की किस्मों पर भी निर्भर करता है। ग्रसित पौधों की जड़ों के दरार पड़ने से फफूँदी, विषाणु एवं अन्य जीवाणुओं के आक्रमण से जड़े सड़ जाती हैं। अंत में पौधा मर जाता है। आलू और रतालू के कन्द सड़ जाते हैं। खेतों में पीले, बौने तथा छितराये पौधों के पेवन्द दिखाई देते हैं।

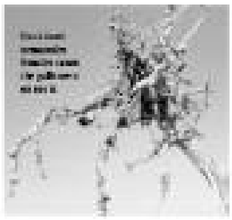

गुर्दाकार सूत्रकृमि – रोटाइलेंकुलस

इसमें नर और मादा अलग अलग होते हैं। मादा का जड़ के बाहर फूल कर गुर्दे का आकार लेने की वजह से इसे गुर्दाकार सूत्रकृमि कहते हैं। ये सब्जियों, फल और दालवाली फसलों में अर्ध अंतर्जीवी की तरह पाये जाते हैं। ये पौधों की जड़ों से पोषण लेते हैं। इनका जीवन चक्र 20–25 दिन में पूर्ण हो जाता है। एक फसल में कई पीढ़ी बन जाती हैं। अगर इनकी सख्या 2 सूत्रकृमि / ग्राम मिट्टी पाई जाय ता, ये सूत्रकृमि फसल को बहुत नुकसान पहुँचाते है। सूत्रकृमि द्वारा बनाये गये जगहों पर जीवाणु एवं विषाणु का आक्रमण अधिक होता है। ये दलहनों में नाइट्रोजन स्थरीकरण को भी प्रभावित करते हैं।

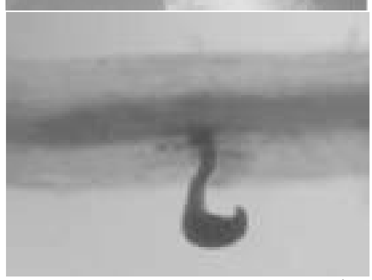

अनाजपुट्टी सूत्रकृमि – हेटेरोडेरा एवेनी – इसके नर और मादा में भिन्नता पाई जाती है। हमारे देश में सबसे पहले राजस्थान में पाया गया था। परन्तु यह पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार में अधिक मिलता है। नर का आकार इल्लीनुमा होता है। विकास के बाद मादा जड़ से बाहर निकल आती है। मरते समय अपने ऊपर अण्डों को घेरते हुये गोलाकार नीबू के आकार में पुट्टी बना लेती है। एक ऋतु में एक पीढ़ी पूरी हो जाती है। ये पुट्टी के रूप में बहुत दिन तक जीवित रहते हैं। मिट्टी में 2 अण्डे / ग्राम ही नकुसान के लिए काफी हैं। पौधों का पीलापन, वोनापन तथा शाखायें कम होना ही इसका लक्षण है। वालियाँ कम तथा असमय निकलना भी इसी के कारण होता है। ऐसी वालियों में बहुत कम दाने पड़ते हैं।

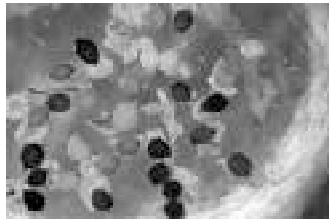

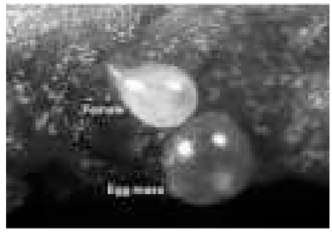

अरहर पुट्टी सूत्रकृमि – हेटेरोडैरा केजेनी –

सह सूत्रकृमि दलहनी फसलों का मुख्य परजीवी है। यह सूत्रकृमि तिलहन फसल को भी संक्रमित करते हैं। द्वितीय स्तर के शिशु पौधों में प्रवेश करते हैं। विकसित होकर मादा थोड़ी बाहर आ जाती है तथा एक जिलेटिन के कवच में अण्डे देती है। मरते समय अण्डे अन्दर रहते हुये एक पुट्टी बन जाती है। इस सूत्रकृमि का 3–4 हफ्ते में जीवन चक्र पूरा हो जाता है। एक फसल में कई पीढ़ी बन जाती हैं। फसल में फलियों का विकास रूक जाता है। दलहन की फसल में भारी मात्रा मे नुकसान होता है। मध्य प्रदेश में सोयावीन बहुतायत में होता है। फसल में इस सूत्रकृमि की वजह से बहुत क्षति उठानी पड़ती है।

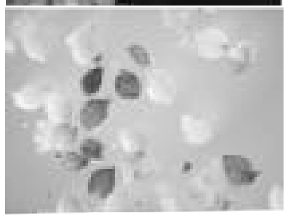

आलू का पुट्टी सूत्रकृमि – ग्लोबोडैरा –

यह सूत्रकृमि आलू कुल की प्रजातियों में विशेष रूप से एक परजीवी की भूमिका निभाता है। यह हमारे देश के दक्षिण भागों में विशेषतः नीलगिरी और कोडईकैनाल की पहाड़ियों में मिलता है। द्वितीय स्तर का शिशु पौधों की जड़ो में प्रवेश करता है तथा विकास के बाद मादा पुट्टी के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ये पुट्टियाँ आलू की फसल की जड़ो में भी चिपक जाती है तथा बिना कुछ खाये कई वर्षो तक जिन्दी रहती है। पौधे पीले, छोटे तथा अविकसित रह जाते हैं। फसल पैवन्दनुमा दिखाई देती है। बाद में ये पुट्टियाँ मिट्टी में गिर जाती हैं। अगली फसल से पहले ये पुट्टियाँ फट जाती

हैं तथा द्वितीय स्तर के शिशु निकल कर जड़ों का संक्रमित करते हैं। इनमें ग्लोवोडैरा रोस्टोकाइनैन्सिस तथा ग्लोवोडेरा पैलीडा मुख्य हैं।

नीबू कुल के सूत्रकृमि – टाईलैन्कुलस –

इस कुल के लिए टाइलैन्कुल्स सैमीपैनीट्रान्स मुख्यतः प्रधान भूमिका निभाता है। नीबू में स्लौडिक्लाइन रोग का मुख्य कारण यही सूत्रकृमि है। द्वितीय स्तर का शिशु जड़ों पर आक्रमण करते हैं तथा विकास के बाद थोड़ी बाहर निकाल कर अण्डे देती है। जो मिट्टी से चिपक कर जड़ो के रूप को बिगाड़ देते है। इसके लक्षण ऐसे दिखाई देते हैं जैसे कि पोषण की कमी से पौधे पीले व बौने दिखाई देते हैं। इनकी वजह से फल कम होते हैं तथा पत्तियाँ गिरती रहती हैं। फफूँद, विषाणु तथा अन्य जीवाणु नुकसान को बढ़ा देते हैं।

धान जड़ सूत्रकृमि – हिर्शमिनैला –

यह सूत्रकृमि मुख्यतः धान उगाने वाले क्षेत्रों, मैदानी भागों तथा सिंचित इलाके में अधिक मिलता है। मुख्यतः एच० ओरइजी, एच० म्यूक्रोनैटा तथा एच० ग्रेसलिस प्रजातियाँ अधिक क्षेत्रों में मिलती हैं। जिस स्थान से द्वितीय स्तर का शिशु या वयस्क प्रवेश करता है उस स्थान पर धब्बे दिखाई देते हैं। कार्टेक्स की कोशिकायें नष्ट हो जाती हैं तथा उस जगह पर गद्दा बन जाता है। फिर सूत्रकृमि नयी कोशिकाओं पर आक्रमण करते हैं। अन्य जीवाणु भी सूत्रकृमि के प्रवेश स्थल पर संक्रमित करतें हैं। कोई लक्षण स्पष्टतः न भी मौजूद हो तब भी फसल को भारी नुकसान होता है। पौधो का विकास अच्छा नहीं होता।

मेदक सूत्रकृमि – रेडोफेलिस –

प्रायः यह सूत्रकृमि नम और तोष्ण वातावरण में अधिक मिलता है। इसको लगभग 375 प्रजातियाँ विशेषकर उष्ण एवं कटिवधीय क्षेत्रों में मिलती हैं। यह सूत्रकृमि रोपाई वाली फसलों एवं मसाले वाली फसलों जैसे नारियल, केला, पान, पाम, हल्दी, अदरक, सुपारी तथा काली मिर्च आदि में बहुत नुकसान पहुँचाता है। इनमें लिगींय भिन्नता होती है तथा 0.4–0.9 मि. मी. तक लम्बे होते हैं। कालीमिर्च की फसल में यह स्लौविल्ट नामक बीमारी फैलाता है। केरल और कर्नाटक इसके अधिक प्रभाव वाले क्षेत्र हैं। यह सूत्रकृमि विभिन्न पौधों की प्रजातियों पर फल फूलता है तथा अधिक गहराई में मिलता है।

जड़ विक्षत सूत्रकृमि – प्रेटीलेन्कस –

इस सूत्रकृमि की बहुत सारी प्रजातियाँ गेहूँ, बाजरा, मक्का, काफी, जौ, जई, कपास, आलू, धान, सोयावीन, गन्ना, सब्जियाँ, सजावट के पौधे तथा बागवानी की फसलों में मिलती हैं। पौधों के

ऊपरी भागों में इसके संक्रमण के लक्ष्ण साफ नहीं दिखाई देते, परन्तु पौधों की वृद्धि रुकने के साथ पीलापन आ जाता है। प्राथमिक जड़ों का छोटा होना, फूल छोटा तथा सिकुडना आदि इसके मुख्य लक्ष्ण है। इसका प्रभाव पौधों की प्रजातियाँ तथा सूत्रकृमि की संख्या पर भी निर्भर करता है। जड़ों पर छोटे–छोटे पानी भरे धब्बे दिखाई देते है। इस सूत्रकृमि की प्रजामियों प्रैटिलैन्कस थार्नी, पी. जी., पी. इन्डिका, पी. लूसी, पी. काफी, तथा पी. वल्लस क्रमशु गेहूँ, गन्ना, धान, चाय, काफी तथा फलों में काफी नुकसान पहुँचाते हैं।

(II) भूमि के ऊपर के परजीवी

बीज पुट्टी का सूत्रकृमि – एन्ग्यूना ट्रिटिकई –

यह सूत्रकृमि मुख्यतः भारतवर्ष में गेहूँ उगाने वाले क्षेत्रों में मिलता है। गेहूँ में सेहन, तना या सेंहूँ रोग को फैलाने में इसकी मुख्य भूमिका है। बुवाई के समय बीज के साथ बो दिया जाता है। भूमि से नमी सोखकर सेहूँ फट जाता है। बड़ी संख्या में द्वितीय स्तर के शिशु बाहर निकल कर पौधों की जड़ों पर आक्रमण करते हैं तथा पत्तियों में अतकों में घुस जाते हैं। फूल आने के समय बलियों में घुस जाते हैं। इनके प्रवेश के 20–25 दिन बाद

Uninfected wheat grain | Wheat seed galls (low infection) with *Anguina tritici* | Wheat seed galls (highly infection) with *Anguina tritici*

तने का निचला भाग फूल जाता है। इनके द्वारा संक्रमित पौधें में शाखाओं की संख्या अन्य पौधों से अधिक होती है। पत्तियाँ टेड़ी होकर मुड़ जाती हैं तथा उन पर धब्बे बन जाते है। संक्रमित वालियाँ मोटी और छोटी हो जाती है। दाने फूल कर तिरछे हो जाते है। सभी वर्तिकायें सेहूँ में बदल जाती है। एक मादा हर वर्तिका में 20–25 हजार अण्डे देती हैं। दाना कड़ा हो जाता है तथा इसके अन्दर सूत्रकृमि 20–25 साल तक जिन्दा रह सकता हैं।

अगर जीवाणु का संक्रमण हो जाये तो यह रोग टुन्डू बिमारी कहलाता है। पीला सा

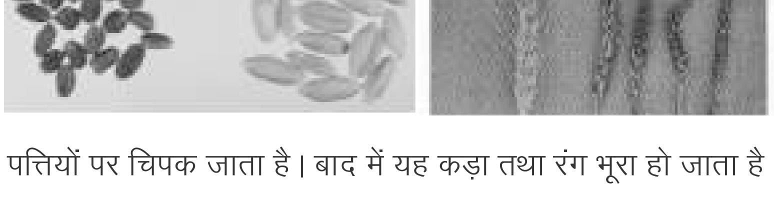

गोंद पौधों की वालियों तथा पत्तियों पर चिपक जाता है। बाद में यह कड़ा तथा रंग भूरा हो जाता है। पौधे में अधिक शाखायें निकलती है तथा लम्बाई में बौना हो जाता है। अन्त में वालियों में दाने नहीं

बनते। जीवाणु बिना सूत्रकृमि के संक्रमण नहीं करते है। यह सूत्रकृमि गेहूँ के सेंहन या टुन्डू रोग का मुख्य जनक है।

सूत्रकृमि प्रबन्धन –

– अनाज, सब्जी, तिलहन और दलहनी फसलों में जड़ गाँठ रोग व पुट्टी सूत्रकृमियों का नीम आधारित पदार्थो के उपयोग द्वारा।

– सूत्रकृमियों की प्रजातियों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने पर पौधों की विकसित सूत्रकृमि प्रतिरोधक प्रजातियाँ के उपयोग द्वारा।

– सूत्रकृमि द्वारा नुकसान का आकलन करके सूत्रकृमियों के स्तर का प्रबन्धन।

– सूत्रकृमि के व्यवहार और मौसम के सहयोग से उचित फसल चक्र अपना कर।

– पौध तैयार करते समय सूत्रकृमि रहित नर्सरी तैयार करना।

– गेहूँ में सेंहन एवं तना रोग की वजह से बीज की सफाई तथा उचित बीज उपचार द्वारा।

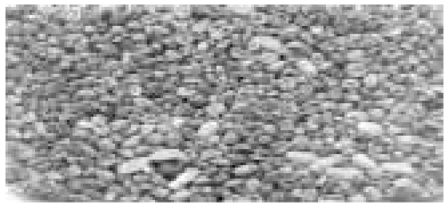

– रसायन एवं अन्य तरीकों को साथ साथ उपयोग करके।

– देश में पाई जाने वाली एसपर्जीलस नाईजर एवं पेसिलोंमाईसस लीलेसिनस फफूँद की प्रजातियों द्वारा जड़गाँठ रोग का प्रबन्धन। सूत्रकृमि रोधक किस्मों का उत्पादन करकें प्रयोग में लाना।

– पाश्चूरिया पेनीट्रांस के सूत्रकृमि पर चिपकने की वजह से इस जीवाणु द्वारा सूत्रकृमि का प्रबन्धन।

– नीलहरित शैकाल तथा कीट जनक सूत्रकृमि द्वारा उचित प्रबन्धन।

– स्टरनीमा थर्मोफिलम तथा हेटरोरेविटिडिस द्वारा हानिकारक कीटों का प्रबन्धन।

– हेटरोरेविटिडिस इन्डीकास द्वारा मिली बग तथा सफेद तितली का प्रबन्धन।

अगर सूत्रकृमि को फफूँद जीवाणु तथा विषाणु का साथ मिल जाये, तो नुकसान की दर बढ़जाती है। इसके लिए समेकित सूत्रकृमि प्रबन्धन अति आवश्यक है। वातावरण सुरक्षी कीटनाशक रसायन, रोग प्रतिरोधी किस्में, शक्तिशाली जैवनियेत्रक एवं किसानों में जागरूकता की कमी होना सूत्रकृमि विशेषगों के लिए परेशानी बढा़ देता है। अभी आने वाले लम्बे समय तक प्रचलित विधियाँ का ही प्रयोग करना पड़ेगा और सूत्रकृमि विशेषगों को रोग प्रतिरोधक किस्में तथा जैव नियंत्रकों का विकास करना होगा।

नीम एक और गुण अनेक

मुकेश कुमार, विन्नी जॉन और अमित कुमार मौर्य

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, मोतीपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सैम हिग्गिनबॉटम कृषि, प्रोद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211 007 (उ.प्र.)

1. भूमिका

नीम (अजैडिरैक्टा इंडिका) भारत का एक अद्‌भुत वृक्ष है। भारत मे नीम को लिम्बा, लिम्बो, निम, निम्ब, निम्बा, वेम्बू, वेपा, वेपम, बेवारूकू, कादूनिम्ब, वेम्पू, नीमू, इत्यादि नामो से जाना जाता है। नीम को भारत के विभिन्न राज्यो मे और भी नामो से जाना जाता है। नीम शब्द संस्कृत के निम्बा से लिया गया है जिसका अर्थ है 'अच्छे स्वास्थ्य के लिए सबसे अच्छा'। इसे रवि सम्भा के रूप मे भी जाना जाता है– सूर्य किरण स्वास्थ्य प्रदान करने मे प्रभाव की तरह। वेदो मे नीम को 'सर्व रोग निवारिणी' कहा गया है जिसका अर्थ है कि जो सभी बीमारियो को ठीक करता है। इसके साथ ही नीम को देवी– देवताओ की पूजा मे भी उपयोग किया जाता है।

नीम भारत का पौराणिक औषधीय वृक्ष है जो कि पूरे देश मे मानव बस्ती के साथ विकसित हुआ है और सदियो से भारतीय जीवन पद्धति का अभिन्न अंग रहा है। नीम का पेड़ लंबे समय से भारतीय ग्रामीणो का मित्र और रक्षक रहा है। नीम का आयुर्वेद मे प्रयोग करीब 4000 साल से भी पहले से हो रहा है। सदियों से मनुष्यों के अतिरिक्त पशुओ एवं पौधो के रोगों को भी ठीक करता रहा है। प्राचीन भारतीयो ने पेड़ के विभिन्न भागो से कई चिकित्सयी उपयोग को पाया और यह भी देखा कि पेड़ तब तक जीवित और विकसित हो सकता है जब तक वह गर्म और शुष्क था। गुजरते समय के कारण प्रवासी भारतीयो ने विदेशों मे जैसे– संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, मैकिसको, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, थायलैंड, इत्यादि मे ले जाकर वृक्षारोपण किया है।

नीम के विभिन्न भागों के द्वारा तैयार किए गए उत्पादो से कई तरह की बीमारियो का उपचार किया जाता है। नागपुर मे नीम अनुसंधान और प्रधौगिकी विकास केंद्र है जिसके द्वारा नीम पर शोध कार्य किया जा रहा है। नीम के पेड़ का प्रत्येक भाग उपयोगी है एवं इसको मुख्यता चार भागों मे विभाजित किया गया है– जड़, तना, टहनी और पत्ती।

2. नीम के महत्वपूर्ण गुण–

- नीम की छाल में मलेरिया और त्वचा संबंधी रोगो को ठीक करने की क्षमता होती है।
- नीम के पत्ते के रस मे जीवाणु, फफूंद और विषाणु से लड़ने की क्षमता होती है।

- नीम की पत्ती से मुह के छाले, मुहाँसे, हृदय रोग, एलर्गी और पीलिया इत्यादि रोगो को ठीक करने मे प्रयोग किया जाता है।
- नीम की पत्ती को नियमित सेवन करने से पेट की पथरी से बचाव होता है।
- नीम की प्रतिदिन सुबह दातुन करने से मुह से दुर्गंध, दाँतो का दर्द, मसूड़ो मे सूजन, दाँतो के कीड़ो एवं पायरिया रोग नहीं होता है।
- मधुमेह रोगी को प्रतिदिन पत्ते का रस पीने से लाभ मिलता है एवं इंसुलिन पैदा होने के कार्य मे तेजी लाता है।
- बिच्छू या कीड़े के काटे गए स्थान पत्ती का रस लगाने से जलन कम होता है एवं त्वचा मे सूजन नहीं होती है।
- नीम मे एक खास गुण यह भी है कि कैंसर कि कोशिकाओ को नष्ट करता है।
- यह पशुओ के कीटो एवं रोगो के निवारण मे भी प्रयोग किया जाता है।
- नीम को मनुष्यो, पशुओ के साथ– साथ कृषि में भी विभिन्न तरह के कीटों और रोगों की रोकथाम के लिए प्रयोग किया जाता है।

3. नीम के उत्पाद एवं उनका उपयोग–

(१) **छाल–** नीम की छाल को एंटीट्यूमर, एंटीएलर्जेनिक, एंटीप्रोटोज़ोअल, डियोडोरेंट, एंटीफ़ंगल एवं एंटीडर्मेटिक के रूप मे प्रयोग की जाती है।

(२) **दातुन–** मुंह की सफाई, मुह की दुर्गंध, दांत का दर्द, पेट की गैस और कीड़ो को नष्ट करने के लिए प्रयोग करते है।

(३) **पत्ती–** पत्तियों को सौंदर्य प्रसाधन, एंटीसेप्टिक, एंटीट्यूबरकुलोसिस, एंटीट्यूमर, एंटीहेल्मेंथिक, एंटीक्लाटिंग एजेंट, एंटीडर्मेटिक, गर्भनिरोधक, उर्वरक, कीटनाशक, सूत्रकृमिनाशक, कीट विकर्षक एवं रोगनाशक के रूप मे उपयोग करते हैं।

(४) **फूल–** नीम के फूल को सजावट, पीड़ानाशक, करी, उत्तेजक पदार्थ, साबुन और नेक्टरीस बनाने मे प्रयोग किया जाता है।

(५) **बीज–** नीम के बीजो से तेल एवं केक (खली) को निकाला जाता है। तेल को विभिन्न तरह की दवाओ में उपयोग किया जाता है।

(६) **नीम का तेल–** नीम के तेल को औषधि जैसे– एंटीकोलिनर्जिक, एंटीप्रोटोज़ोअल,

एनाल्जेसिक, एंटीहेल्मेंथिक, एंटीहिस्टामिनिक, एंटीपायरेटिक, एंटीवाइरल, जीवाणुनाशक, कवकनाशी, कीटप्रतिकारक, कीटनाशक, पशुचिकित्सा दवाओ में एवं दैनिक उपयोग मे जैसे– साबुन, शैम्पू, स्नेहक, बालों का तेल, मंजन, प्रणोदक, इत्यादि मे प्रयोग किया जाता है।

(७) **नीम की खली (केक)**– केक को पशु चारा, उर्वरक, मृदा सरंक्षक, मृदा न्यूट्रालाइजर एवं कीटो से बचाव के लिए प्रयोग किया जाता है।

(८) **लकड़ी**– नीम की लकड़ी का विभिन्न तरह के घरेलू और कृषि में उपयोग होने वाले औज़ारो को बनाया जाता है।

(६) **अन्य**– नीम को अन्य रूपों मे भी जैसे– ईंधन, शहद, गोंद, पल्प, बायोगैस, राल, टैनिन, इत्यादि मे उपयोग किया जाता है।

नीम के पत्तों में उपस्थित पोषक तत्वक खतरनाक विषाणु को नष्टब करने में सहायक होते हैं। विषाणु संक्रमण को दूर करने के लिए नीम की पत्तियों का पेस्टु बना कर प्रभावित क्षेत्र में लगाना चाहिए हैं। इसकी पत्तीए से बना पेस्ट मस्सान और छोटी चेचक आदि के इलाज में लाभकारी होता है। क्योंकि नीम विषाणु को अवशोषित करती है, और इन्हें फैलने से रोकती है। नीम की पत्ती का रस विषाणु के उपचार को भी तेज करने में मदद करते हैं। इसके अलावा नीम की पत्तियों का उपयोग कर फोड़े, फुंसी और घावों का उपचार भी किया जा सकता है। अतः आप नीम के पत्तों का उपयोग कर विषाणु संक्रमण से बच सकते हैं।

पेट का अल्स्र आज कल एक आम समस्याव बन चुकी है। जिसका इलाज करने के लिए मंहगी मंहगी दवाओं व उपकरण (प्रोटॉन पंप इनहिबिटर) आदि का उपयोग किया जाता है। परंतु ये प्राकृतिक उपचार नहीं है और इसके हानिकारक दुष्प्ररभाव भी हो सकते हैं। पेट के अल्स र का प्राकृतिक उपचार करने के लिए आप नीम की पत्तीकयों का उपयोग कर सकते हैं। यह पेट के अल्सर के लिए बहुत ही प्रभावी और पूर्णतः सुरक्षित है। इसके अलावा आप नीम की छाल का भी उपयोग कर सकते हैं। पत्तियों और छाल से निकाले गए रस में शक्तिशाली गुण होते हैं। नीम का सेवन करने से गैस्ट्रिक श्लेछष्म की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। नीम हमारे शरीर में अच्छो पीएच मान को बनाये रखने के लिए जाना जाता है। दस सप्ता ह तक नीम का नियमित रूप से दोनो समय सेवन करने पर यह पेट के अल्सार को पूरी तरह से ठीक कर सकता है। इतना ही नहीं नीम की पत्तीयों में फाइबर प्रचुर मात्रा में होती है जोकि पाचन क्षमता को सुधारने में करता है। प्रतिदिन नीम के पत्ता के प्रयोग से पाचन संबंधी विकारों को ठीक करने में मदद मिल सकती है।

नीम के नुकसान

- नीम का उपयोग मानव स्वामस्व्ती के लिए बहुत ही फायदेमंद होता है। लेकिन यदि अधिक मात्रा में या गलत तरीके से इसका उपयोग किया जाए तो इसके कुछ दुष्प्रएभाव भी हो सकते हैं।
- नीम की पत्तियों का सेवन छोटे बच्चों को नहीं करना चाहिए। क्यों कि यह शिशुओं में रेई सिंड्रोम का कारण बन सकता है।
- अधिक मात्रा में इसका सेवन करने से एलर्जी, उल्टी, चक्कर आना जैसी समस्याहो सकती हैं।
- महिलाओं को बहुत ही कम मात्रा में नीम की पत्तियों का सेवन करना चाहिए। यह उनमें पेट की जलन और गर्भपात का कारण बन सकता है।
- जो लोग निम्नक रक्तपचाप से ग्रसित हैं उन्हेंक नीम की पत्तियों का सेवन करने से बचना चाहिए।
- आयुर्वेद के अनुसार नीम हल्का, कटु–तिक्त, कषाय शीतल होता है जो तीन प्रकार के दोषों अर्थात पात, पित्त और कफ संबंधी विकारों का नाश करता है। यह कब्ज मलेरिया, पीलिया, कुष्ठ प्रदर, सिर दर्द, दांत संबंधी रोगों और त्वचा रोगों में गुणकारी होता है। यह बहुत ही अच्छा रक्तशोधक तथा कीटाणुनाशक होता है।
- नीम का वृक्ष अनेक औषधीय गुणों की खान है। हल्का, कटु–तिक्त, कषाय शीतल होता है जो तीन प्रकार के दोषों अर्थात पात, पित्त और कफ संबंधी विकारों का नाश करता है। यह कब्ज मलेरिया, पीलिया, कुष्ठ प्रदर, सिर दर्द, दांत संबंधी रोगों और त्वचा रोगों में गुणकारी होता है। यह बहुत ही अच्छा रक्तशोधक तथा कीटाणुनाशक होता है।

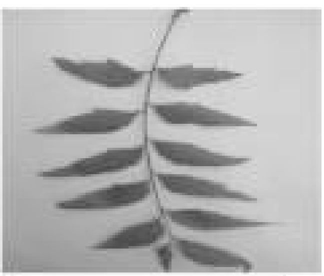

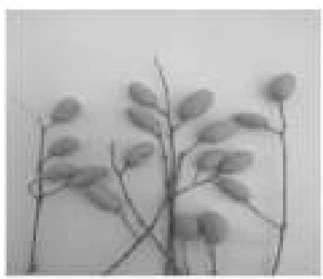

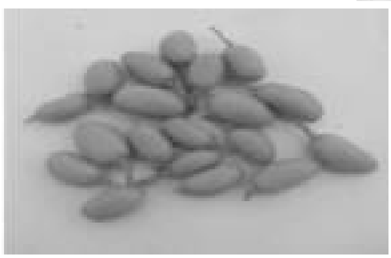
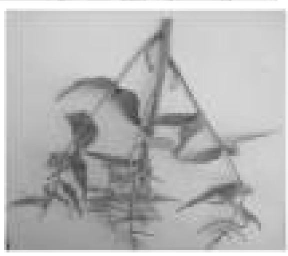

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

विकास गुप्ता[1], ए.पी. सिंह[1] एवम् मीनाक्षी गुप्ता[2]

[1]एडवांस सैंटर फॉर रेनफेड एग्रीकल्चर, रख ध्यानसर, बाड़ी ब्राह्मणा, स्कास्ट–जम्मू–181133

[2]सस्य विज्ञान विभाग, स्कास्ट–जम्मू, चट्ठा–180009

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग वातावरणीय संकट, कम उपज, बढ़ती हुई उत्पादन लागत, इत्यादि अपेक्षित फसल उत्पादन में बाधायें उत्पन्न कर रही हैं। उपज में कमी के मुख्य कारण हैं :

- मृदा में कार्बनिक पद्धार्थों की कमी,
- पोशक तत्वों की कमी,
- अत्यधिक रसायनों (कीटनाशक, फफूंदीनाशक, इत्यादि) के उपयोग के कारण मृदा पर विपरीत प्रभाव इत्यादि।

मुख्यता, भारतीय किसानों के पास संसाधनों की कमी है, इसलिए कार्बनिक, अकार्बनिक, देसी खाद, जैव, उर्वरक, इत्यादि सामग्रीयों को समन्वित रूप में अपनाकर भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के कार्यक्रम बनाने चाहिए।

उर्वरकों का समय और चुनाव : 8

- नत्रजन को हमेशा 2–3 या 4 भागों में फसल को देना चाहिए, जिसमें से 1 मात्रा पर्णीय (2–3 प्रतिशत) छिड़काव के रूप में देनी चाहिए, जिसका तुरन्त परिणाम (24–48 घंटे) में मिलता है। तिलहन और दलहन फसलों में नत्रजन की पूर्ण मात्रा बोने के समय देनी चाहिए। उर्वरकों को बीज से 3–4 से.मी. नीचे रखना चाहिए। दलहनी और तिलहनी फसलों को फास्फोरस सिंगल सुपर फास्फेट (एस.एस.पी.) के रूप में देना चाहिए। क्योंकि इससे फसलों को गंधक (सल्फर) की मात्रा भी बिना किसी अतिरिक्त खर्च के मिल जाती है।
- यूरिया को जब नीम केक, सल्फर, रॉक फॉस्फेट इत्यादि से उपचारित किया जाता है, तो नत्रजन की उपयोग क्षमता बढ़ जाती है और उसकी क्षति कम हो जाती है। 40 कि.ग्रा. यूरिया (नीम केक या जिंक से उपचारित) लगभग 50 कि.ग्रा. साधारण यूरिया के बराबर प्रभावशाली होती है।

- जटिल/यौगिक उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि इससे एक से अधिक पोशक तत्वों की आपूर्ति एक ही समय में (एक साथ) हो सकती है।
- भारी कार्बनिक खादें, गोबर की सड़ी खाद, हरी खाद, मानव विश्ठा, कम्पोस्ट खरपतवार एवम् फसल के अवशेश इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए, भले ही इनमें पोशक तत्वों का प्रतिशत कम रहता है, परन्तु ये मृदा की रासायनिक संरचना को प्रभावी बनाती हैं। साथ ही इनमें सूक्ष्म तत्व भी पाये जाते हैं। केंचुओं की सहायता से सड़ने वाले इन पद्धार्थों को अतिउपयोगी, वर्मीकम्पोस्ट का रूप दिया जा सकता है।

हल्की कार्बनिक खादें

- तिलहन से तेल निकालने के बाद जो खली बचती है, उसमें पोशक तत्वों की अच्छी मात्रा होती है और इसके प्रयोग से मृदा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं पड़ता है। जो खली पशु आहार न हो एवम् सड़ी/खराब खली को सड़ा करके खाद के रूप में उपयोग कर सकते हैं। ढैंचा, सनई एवम् दलहनी फसलों को हरी खाद के लिये उगा सकते हैं। इनको उचित समय (35–40 दिन) पर काटकर वहीं खेत में मिट्टी में मिला देते हैं। ढैंचा 120–160 कि. ग्राम. नत्रजन प्रति हेक्टेयर संचित कर लेती है।

जैव उर्वरक :

- भूमि में डाले गये नत्रजन का 30–40 प्रतिशत मात्रा का ही सही उपयोग हो पाता है शेश भाग पानी से साथ बह जाता है या ज़मीन की निचली परतों में चला जाता है। ऐसी स्थिति में जैव–उर्वरकों का प्रयोग कृशि उत्पादन के लिये वरदान साबित हुआ है और ये सस्ते भी होते हैं।

राइजोबियम कल्चर :

- इसका प्रयोग प्रायः सभी दलहनी फसलों में किया जाता है। इसमें उपस्थित राइजोनियम जीवाणु वायुमण्डल से नत्रजन लेकर भोज के रूप में पौधों को देते हैं। राइजोबियम कल्चर दलहनी फसलों के अनुसार अलग–अलग होते हैं, एवम् इनका प्रयोग बीज उपचार, मृदा उपचार एवम् रोपित फसलों में जड़ उपचार के लिये किया जाता है।

एजोटोबैक्टर :

- हमारे चारों और वायुमण्डल में नत्रजन (78 प्रतिशत) मौजूद रहती है, जिसे पौधे प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। एजोटोबैक्टर ऐसे जीवाणु हैं जो पौधों के साथ असहजीवी रूप में

रहकर वायुमण्डलीय नत्रजन को अमोनिया के रूप में उपलब्ध करवाते हैं। एजोटोबैक्टर में नत्रजन यौगिकीकरण के अलावा बीजों के अंकुरण में वृद्धि की क्षमता भी पायी जाती है। परिणामस्वरूप प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौधों की संख्या में वृद्धि भी हो जाती है।

एजोस्पिरिलम :

- इसका और एजोटोबैक्टर का प्रयोग धान, गेहूँ, ज्वार इत्यादि फसलों में कर सकते हैं। प्रायः 20–30 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर इससे संचित हो जाती है।

नील हरित भौवाल :

- इसको जलमग्नता की दशा में उगाया जाता है। मुख्यतः धान का खेत इसके लिये उपयुक्त रहता है। धान में इससे औसतन 30 कि.ग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर का यौगिकीकरण होता है। इसके प्रयोग से मृदा में जीवाँश पद्धार्थ की भी वृद्धि होती है।

वैम :

- यह एक किस्म का फफूंद है जो फॉस्फोरस, कॉपर, जिंक इत्यादि पोशक तत्वों का समुचित उपयोग करवाता है। विशेश तौर पर यह फॉसफोरस उपलब्ध करवाता है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि एकीकृत पोशक तत्व प्रबन्ध का ध्येय रासायनिक उर्वरकों की कार्य क्षमता को बढ़ाना एवम् उनपर कम आश्रित रहना, जिससे आने वाले समय के लिए भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखकर और साथ में प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करके सम्पूर्ण मानव जाति का उत्थान करना है।

दलहनी फसलों के प्रमुख रोग एवं प्रबन्धन

[1]Mk- vpZuk mn; flag [2]Mk0 jes'k pUn ,oa [3]Mk0 lqHkk"k pUn
[1]l=Ñfe foKku lHkkx] Hkkjrh; Ñf"k vuqla/kku laLFkku] ubZ fnYyh&110012
[2]l=d`fe foKku foHkkx] [3]ikni jksx foKku foHkkx] ujsUnz no d`f"k ,oa izkS|ksfxd
fo'ofo|ky;] dqekjxat] v;ks/;k ¼m0iz0½A

भारतवर्ष में प्रमुख रुप से अरहर, चना, मटर और मसूर आदि दलहनी फसलों का उत्पादन किया जाता है जिसका अच्छा उत्पादन लेने के लिए कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से एक समस्या, बीमारियों से फसलो को बचाना है। दलहनी फसलो में लगने वाली बीमारियां जैसे उखठा, झुलसा, रतुआ, सफेद विगलन, तुलासिता, बीज विगलन एंव बुकनी आदि हैं।

1. उकठा

यह रोग अरहर मटर चना और मसूर में अत्यधिक लगता है। इस रोग की शुरुआत बुवाई के बीस से पच्चीस दिन बाद होने लगती है तथा फसल के पकने तक भारी नुकसान पहुॅचाता है। पौधे की पत्तियॉ क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर पीली पड जाती हैं तथा धीरे धीरे पौधा या उसकी कुछ शाखाये सूख जाती हैं। रोगी पौधे को उखाड़कर उसकी जड़ को चीर कर देखा जाय तो उसका रंग भूरा या काला दिखाई देता है खेत में रोगी पौधे जगह जगह कुछ क्षेत्रों में छितरे रुप में पाये जाते हैं।

नियंत्रण–

1. रोगी पौधे को जड़ से उखाड़कर जला दें।
2. इसकी रोकथाम के लिए दीर्घकालीन फसल चक्र अपनायें।
3. अलसी के साथ सह फसली खेती करने से इस रोग की उग्रता को कम किया जा सकता है।
4. ज्वार के साथ अरहर की सह फसली खेती करनी चाहिए।
5. बीज शोधन हेतु ट्राइकोडर्मा चार ग्राम मात्रा एक किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बायें।
6. मटर को बोने से पूर्व बीज को 2.5 ग्राम कारबेन्डाजिम अथवा बेनोमिल प्रति किलोग्राम बीज की दर से शोधित करके बोयें।
7. रोग अवरोधी प्रजातियॉ बोयें –

(1) अरहर : नरेन्द्र अरहर–1, मुक्ता, मारुती

(2) मसूर : मसूर–1

(3) चना : पूसा–224, पूसा–212, जे0जी0–315, जी–542 अवरोधी, गुजरात चना–4, के0 डब्लू आर–108, बी0जी0–372

2. बांझ रोग

रोग ग्रसित पौधे में पत्तियॉ अधिक लगती हैं। पत्तियॉ छोटी तथा हल्के पीले रंग की हो जाती हैं। पौधों का आकार छोटा रह जाता है जिससे पौधा झाड़ीनुमा दिखाई देता है। पौधे की शाखाएं घनी हो जाती है। इस रोग से ग्रसित पौधे पर फूल और फलियॉ नही बनती हैं। यह रोग एक विशाणु जनित है तथा माइट द्वारा रोगी पौधे से स्वस्थ पौधों में फैलता है।

प्रबन्धन– रोगी पौधे को उखाड़कर जला दे या दबा दें। इस रोग से बचाव के लिए रोग अवरोधी प्रजातियो को उगाएं जैसे– बहार, नरेन्द्र अरहर–1 एंव अमर।

3.झुलसा

इस रोग के लक्षण फूल निकले से पूर्व पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे के रुप में दिखाई देते हैं तथा रोग की अधिकता होने पर यह धब्बे फूलों पर भी देखे जा सकते हैं जिससे पत्तियॉ व फूल धीरे धीरे सूख जाते हैं।

नियंत्रण–

इस रोग की रोकथाम हेतु जिंक मैगनीज कार्बामेट 2.0 किलोग्राम अथवा जीरम 80 प्रतिशत 2 किलोग्राम प्रति हे0 अथवा जीरम 27 प्रतिशत 3.5 लीटर फूल आने के पूर्व प्रथम छिड़काव तथा दस से बारह दिन के अन्तराल पर दूसरा छिड़काव कर देना चाहिए।

4.चूर्णी कवक

यह रोग मटर की फसल में लगता है। जिसमें पत्तियां, तने तथा फलियों पर सफेद चूर्ण सा फैला हुआ दिखाई देता है। इस रोग से ग्रसित पत्तियॉ भूरी तथा बाद में काली होकर मर जाती हैं। पौधों के ग्रसित भागों पर सफेद रंग की फॅफूदी उग जाती है और बाद में ग्रसित भागो के ऊपर तथा अन्दर काले रंग के गोल दाने बन जाते हैं।

नियंत्रण–

1. इस रोग की रोकथाम हेतु फसल की बुआई नवम्बर के प्रथम सप्ताह के बाद करनी चाहिए।
2. जिस खेत में रोग का प्रकोप पिछले सालो में अधिक देखने को मिला हो उस खेत में कम से कम पाच वर्श तक मटर व अन्य दलहनी फसलें न बोये।
3. बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 0.05 प्रतिशत या घुलनशील गन्धक 0.3 प्रतिशत दवा का 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करे।
4. रोगरोधी प्रजातियां बोये जैसे रचना एच0यू0पी0–2 तथा एच0एल0पी0––4।

5. तुलासिता रोग

इस रोग से ग्रसित पत्तियों के ऊपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं तथा निचली सतह पर भीगी रुई के समान फॅफूदी की वृद्धि दिखाई देती है।

नियंत्रण–

मटर की फसल की समय से बुआई करें तथा इसके नियंत्रण के लिए मैंकोजेब (इण्डोफिल एम–45) 2.0 किलोग्राम अथवा ट्राईडोमार्फ 500 मिली लीटर पानी में घोलकर प्रति हे0 की दर से छिड़काव करें।

6. बुकनी रोग

रोग ग्रसित पौधों की पत्तियों पर सर्वप्रथम सफेद चूर्ण जैसे धब्बे बनते हैं। जो बाद में तने व फलियों पर भी फैल जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियॉ काली पड़कर सूख जाती हैं। यह रोग फफूद से होता है।

प्रबन्धन–

1. अवरोधी प्रजातियों की बुआई करें।
2. इसकी रोकथाम के लिए खड़ी फसल में घुलनशील गंधक 3 किलोग्राम या कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम या डाइनोकेप 48 ई सी 600 मिली या ट्राईडोमार्फ 80 ई सी 500 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से दो बार 10–15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

7. रतुआ

यह रोग मटर व मसूर की फसल पर लगता है। इस रोग से ग्रसित पौधो की पत्तियों व तनो

पर पीले तथा हल्के भूरे रंग के फफोले पाये जाते है। रोग की उग्र अवस्था में यह फफोले फूलों व फलियों पर भी पाये जाते हैं जिससे पत्तियां धीरे–धीरे सूख जाती हैं।

नियंत्रण– समय पर बुआई करें। प्रथम बार रोग दिखाई देने पर जिंक मैगनीज कार्बोमेट दो किलोग्राम अथवा ट्राईडोमार्फ पांच सौ मिलीटर प्रति हे0 की दर से छिड़काव करें तथा दूसरा छिड़काव पन्द्रह दिन के अन्तराल पर करें।

8. बीज बिगलन रोग

यह रोग मटर के बीज के अंकुरण से पहले या अंकुरण के समय आरम्भ हो जाता है जिससे खेत में बीजो का अंकुरण भली प्रकार न होने के कारण पौधों की संख्या काफी कम रह जाती है साथ ही साथ उत्पादकता पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण– इस रोग की रोकथाम हेतु बीजो को बोने से पूर्व थीरम 2.5 ग्राम अथवा कैप्टान 2.0 ग्राम या बेनलेट तथा थीरम 2.5 ग्राम या बैनलेट तथा कैप्टान का 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार लाभदायक रहता है।

9. ग्रे मोल्ड

इस रोग से ग्रसित चने के पौधों की शाखायें पत्तियां तथा पुशपक्रमों पर भूरे रंग अथवा गहरे भूरे रंग के विछत दिखाई देते है। इन छत स्थलो पर सीधे बाली के समान कवक के जीवाणु उत्पन्न करने वाले स्पोरोफोर से विछत तने को चारो ओर से घेर लेती हैं तथा कोमल शाखायें उस स्थान से टूट जाती हैं।

नियंत्रण– इस रोग के रोकथाम के लिए डाइथेम एम–45 एक किलोग्राम प्रति हे0 की दर से बीमारी का लक्षण दिखते ही छिड़काव करें तथा दूसरा छिड़काव 12 से 15 दिन के अन्तराल पर करें।

10. पीला चित्रवर्ण रोग

इसे पीला चितेरी रोग भी कहा जाता है जो किएक विशाणु द्वारा होता है। सबसे पहले रोगी पौधे की कोमल पत्तियों पर पीले व सुनहरे चकत्ते पड़ते है तथा रोग की उग्र अवस्था में पूरी पत्ती पीली पड़ जाती है। पत्तियों के विकास में भी अन्तर पड़ जाता है। रोगी पौधों में पुश्प एंव फलियॉ स्वस्थ पौधों की अपेक्षा कम लगती हैं। रोग की अधिकता होने पर फलियॉ या तो नही बनती हैं या बहुत छोटी बनती हैं तथा दाने सीकुड़कर छोटे रह जाते हैं। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा बीमार पौधे से स्वस्थ पौधे में फैलता है।

प्रबन्धन–

1. **मूंग की रोग अवरोधी प्रजातियॉ** जैसे– नरेन्द्र मूंग–1, पन्त मूंग–2,5 पी डी एम–54 तथा एम एल–5, सम्राट, पूसा विशाल
2. **उर्द की रोग अवरोधी प्रजातियॉ**– पन्त उर्द–35, उत्तरा, नरेन्द्र उर्द–1 ही बोये।
3. रोगी पौधो को उखाड़कर मिट्‌टी में दबा दें।
4. सफेद मक्खी को मारने के लिए डायमेथोएट (30ई0सी0) या मिथाइल–ओ–डियेटान (25ई0सी0) एक लीटर को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से 2–3 छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर करें।

11. पर्णदाग

इसे पत्तियों का धब्बा रोग भी कहा जाता है जो कि एक फफूँद जनित रोग है। पत्तियों पर हल्के भूरे रंग के गोलाई लिए हुए कोणीय धब्बे बनते हैं। जिसमें बीच का भाग हल्के राख के रंग के या हल्का भूरा तथा किनारा लाल बैगनी रंग का हो जाता है। ये धब्बे तने तथा फलियों पर भी पाये जाते हैं। रोग की अधिकता होने पर रोगी पौधे की पत्तियां व फूल लगने के समय ही गिर जाती हैं अथवा कम व सिकुड़ कर हल्के बनते हैं।

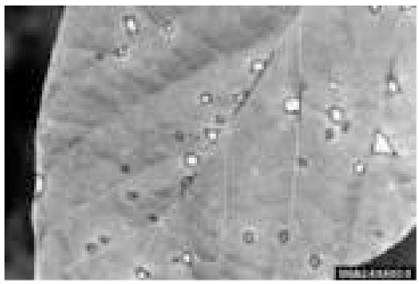

प्रबन्धन–

इसकी रोकथाम के लिए 3 किग्रा0 कॉपर आक्सीक्लोराइड 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे0 की दर से 10 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें या कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम अथवा थायोफिनेट मिथाइल 500 ग्राम को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से रोग खत्म हो जाता है।

12. लीजन सूत्रकृमि रोग

यह सूत्रकृमि रोग प्रेटाइलेन्कस प्राति सूत्रकृमि द्वारा पैदा उत्पन्न होता है। इस रोग को मिडो सूत्रकृमि रोग के नाम से भी जाना जाता है।

पोशक फसलें : आलू, मूंगफली, धान, चाच, तम्बाखू, दाल वाली फसलें, सभी चारे वाली फसलें, सभी फूल वाली फसलें, गेंहूँ, जौ, चना, मक्का, गन्ना, अंगूर आदि इस सूत्रकृमि की पोशक फसलें हैं।

रोग का फैलाव : इस रोग का जनक सूत्रकृमि सभी प्रकार के वातावरण मे उगाई जाने वाली फसलों को रोग ग्रसित करने में सक्षम है इसलिए फैलाव की चर्चा करना व्यर्थ है।

रोग से हानि : भारत के कर्नाटक राज्य मे कॉफी की फसल मे इत्र सूत्रकृमि की गम्भीर समस्या है। वर्श 1971 में वान बरकम व सेसादरी नें इस रोग से सिर्फ कर्नाटक राज्य में 200 करोड रू. के आर्थिक नुकसान का खुलासा किया था।

रोग की उत्पत्ति : द्वितीय अवस्था का डिम्बक अपनी पोशक जड़ को पाकर उसके अग्रभाग में प्रवेश कर जाता है। यह सूत्रकृमि, जडों की कोशिकाओं को मारता हुआ जड़ के अन्दर पतली–पतली नलिाकाएं बना लेता है जो पहले भूरे व बाद में गहरे भूरे व काले रंग की हो जाती हैं। इस प्रकार बनी नलिकाओं में ही सूत्रकृमि अपना जीवन चक्र पूरा करता है जिससे जडों में काले व भूरे लम्बे–2 धब्बे पड जाते हैं। इन्हें ही लीजन कहते हैं। सूत्रकृमि जड़ मे प्रवेश करने के बाद वहीं पर अण्डे देता है।

रोग के लक्षण : फसल में अन्य सूत्रकृमियों द्वारा पैदा किए जाले वाले सामान्य लक्षण जैसे– पौधों का बौना रह जाना, फसल कमजोर होना, फसल में धब्बों के रूप में पोषक तत्वों की कमी का महसूस होना आदि।

रोग की रोकथाम

- फसल की नर्सरी सूत्रकृमि रहित भूमि में उगायें।
- खेत में पौधों को नश्ट करें दें।

हल्दी की उन्नत खेती एवं प्रसंस्करण विधि

डॉ0 प्रदीप कुमार मिश्र एवं डॉ0 विनय कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र मनकापुर गोण्डा, कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बेडकरनगर

हल्दी मसालों की मल्लिका है, क्योंकि इसका रंग सोने के समान होता है। सम्पूर्ण उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग में ही होता है।

मृदा किस्म

बुलई दोमट भूमि उपयुक्त होती है।

प्रजातियां

नरेन्द्र हल्दी 1]नरेन्द्र हल्दी 3] 0 नरेन्द्र हल्दी 5, राजेन्द्र सोनिया, प्रभा, स्वर्णा, सुगुना, सुरोभा, सुर्दशन प्रतिभा आदि उन्नतशील प्रजातियां है।

बुआई का समय

इसकी बुआई 15 मई से 15 जून (मानसून की वर्षा प्रारम्भ होने से पूर्व) माह में करना उपयुक्त रहता है।

बीजदर

एक हैक्टर क्षेत्रफल के लिए 20 कुन्तल बीज पर्याप्त होता है। राइजोम का वनज 25 ग्राम होना चाहिए।

भूमि शोधन

2 कि.ग्रा. क्लोरीपाइरीफॉस + 20 कि.ग्रा. बालू 2 लीटर पानी में अच्छी तरह मिलाकर खेत में बिखेरना चाहिए।

बीज शोधन

बीज शोधन के लिए 2 ग्राम डाइथेन एम–45+2 मिली. मोनोक्रोटोफॉस प्रति लीटर पानी के घोल में 30 मिनट तक डुबोकर राइजोम का उपचार करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

हल्दी की अच्छी पैदावार के लिए 250 कुन्टल गोबर की खाद प्रति हैक्टेर की दर से खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह मिला लेना चाहिए। उर्वरकों में यूरिया कि.ग्रा., सिंगल सुपर फास्फेट 325 कि.ग्रा. तथा म्यूरेट आफ पोटाश की 200 कि.ग्रा. मात्रा की प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है।

सिंगल सुपर फास्फेट, एम.ओ.पी. की पूरी मात्रा बेसल ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए तथा यूरिया की 109 कि.ग्रा. मात्रा अंकुरण के एक माह बाद, दूसरी मात्रा 109 कि.ग्रा. यूरिया, 60 दिन बाद

तथा 90 दिन पश्चात यूरिया की 109 कि.ग्रा. मात्रा अन्तिम टॉपड्रेसिंग के समय डालकर पौधों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

कटाई

जनवरी–फरवरी माह में पौधे जब 75 प्रतिशत पीले पड़ जाये उस समय कटाई करनी चाहिए।

उपज

हल्दी की औसत उपज प्रति हेक्टर लगभग 100 से 150 कुन्टल है।

प्रमुख रोग एवं कीट

1. **प्रकन्द विगलन** – इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती है तथा तने का ऊपरी भाग गल जाता है। इसके नियंत्रण के लिए खेत में जल निकास का उचित प्रबंध रखना चाहिए तथा चेस्टनट कम्पाउन्ड के 3 प्रतिशत घोल से मिट्टी को भिगो देना चाहिए।

2. **धब्बा रोग** – पौधे की पत्तियों पर धब्बे बन जाते हैं जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसके नियंत्रण हेतु डायथेन एम–45 का 0.25 प्रतिशत घोल का छिडकाव करना चाहिए अथवा रोग प्रतिरोधी किस्म राजेन्द्र सोनिया की खेती करनी चाहिए।

1. **तनाछेदक कीट** – यह कीट तनों में घुस कर खाता है, जिससे पौधा खोखला हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए कारबेरिल 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।

2. **गांठो को उबालना** – गोल एवं लम्बी गांठो को अलग–अलग छांट कर टीन या मिट्टी के बर्तन में पानी के साथ उबालते हैं। गोल गांठे 4 घंटे में तथा लम्बी गांठे 2 घंटे में उबल जाती है। जब बर्तन के मुंह से पीले रंग का झाग या हल्दी की गंध आने लगे तब समझना चाहिए कि हल्दी पक गई है।

3. **गांठो को सुखाना** – पकने के बाद गांठो को 15 दिनों तक धूप में सुखाते हैं। सूखी गांठो में नमी प्रतिशत 8 होना चाहिए।

4. **पॉलिशिंग करना** – पॉलिश करने के पहले टाट या खुरदरे जगह पर सूखी गांठो को रगडकर चमका लिया जाता है। चमकाने के बाद एक कुन्टल सूखी गांठो को रंगने के लिए 2 कि.ग्रा. पिसी हल्दी + 50 ग्राम सोडियम बाईकार्बोनेट + 50 एम.एल हाइड्रोक्लोरिक एसिड के घोल में गांठो की पॉलिश करनी चाहिए। तत्पश्चात अच्छे प्रकार से सुखाकर गांठो का भण्डारण करना चाहिए।

मौसम आधारित कृषि परामर्श सेवा एक वरदान

सचिन कुमार शुक्ला[1], सर्वेश बरनवाल[2], डा० देवेन्द्र स्वरुप[3]

कृषि विज्ञान केन्द्र, थरियाँव, फतेहपुर, उ.प्र.

हमारे देश की मूल अर्थव्यवस्था और यहाँ की अधिकांश आबादी कृषि पर टिकी हुई है। कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र का विकास और उन्नति किसी भी राष्ट्र या समाज की प्रगति का सूचक हैद्य हाल ही मे ंभारत ने फ्रांस को पीछे छोड़ते हुए दुनिया की सबसे बड़ी छठी अर्थव्यवस्था का दर्जा हासिल किया है ,भारत के पास दुनिया में १०वां सबसे बड़ा कृषि योग्य भूमि संसाधन है। वर्ष 2018 में उत्तर भारत में आंधी तूफ़ान बेमौसम वर्षा होने और ओले पड़ने से रबी फसलो की कटाई के समय जैसे गेहूं, सरसों, चना, मटर और आम की उपज को नुकसान पंहुचा था। इससे पहले ही परेशानियों का सामना कर रहे किसानो की मुश्किलें और बढ़ जाती है।मौसम की इस चाल से रबी फसलो को काफी नुकसान हुआ था। पहले भी कभी सूखा और कभी बेमौसम वर्षा से फसलो को बड़े पैमाने पर नुकसान होता रहता है ,इन समस्याओ के समाधान हेतु भारत मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी) सन 2020 तक देश के 660 जिलो में सभी 6500 ब्लाको में स्थानीय मौसम पूर्वानुमान जारी करने के लिए तेजगति से काम कर रहा है। ऐसा होने से देश के 10 करोड़ किसानो को लाभ मिलेगा। इसके अलावा मौसम पूर्वानुमानो की सटीकता को बढ़ाना और कृषि सलाहकार सेवाएं (एएएस) को अधिक उपयोगी बनाना है। यहाँ ये बताना उचित होगा की वर्तमान में आईएमडी जिलास्तरीय मौसम पूर्वानुमान जारी करता है। आईएमडी के पास मौसम आधारित सलाह के लिए जिलास्तरपर 130 एग्रोमेट फील्ड इकाईयों का नेटवर्क है। देश के 530 जिलो के कृषि विज्ञान केद्र में ग्रामीण कृषि मौसम सेवा केंद्र के तहत ऐसी इकाईयो ंको स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है तथा कुछ जगहों पर स्थापित हो भी चुकी है। अब तक लगभग ४ करोड़ किसान एसएमएस और एम किसानपोर्टल के माध्यम से जिलास्तरीय मौसम पूर्वानुमान प्राप्त कर रहे है, जबकि 2020 तक 95 करोड़ किसानो को ब्लाक स्तर पर सेवाएं प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। मौसम पूर्वानुमान से किसान भविष्य में आने वाले जोखिम को कम कर सकता है और इस जोखिम को कम करने में कुछ कृषि विज्ञान केंद्र पर स्थापित

जिला कृषि इकाई अपना अहम योगदान दे रही है।

मौसम पूर्वानुमानः मौसम कृषि पूर्वानुमान परामर्श सेवा भारत सरकार (विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग एवं राष्ट्रीय मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान केंद्र नोएडा उत्तर प्रदेश) की एक महत्वाकांक्षी परियोजना है।जिसमें किसानों को आगामी पाच दिनों में मौसम में होने वाले बदलाव तथा इसके अनुकूल विभिन्न कृषि कार्यों को करने की सलाह दी जाती है। इस समय यह परियोजना भारत के विभिन्न राज्यों में 130 केंद्रों पर कार्यरत थी।लेकिन अब यह भारत मौसम विज्ञान विभाग तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के बीच हुए ज्ञापन समझौते की अगुवाई में 200 अतिरिक्त जनपदों में संचालित हो गया है।जो जिला कृषि मौसम इकाई के रुप में प्रत्येक जनपद के कृषि विज्ञान केंन्द्र में इसकी स्थापना ग्रामीण कृषि मौसम सेवा परियोजना के आधार पर की गई है।इसके पहले यह सेवा जिन 130 केंद्रों पर कार्यरत थी।वह किसी विश्वविद्यालय या संस्थान के अंतर्गत कार्यरत थी हमारे उत्तर प्रदेश की यदि हम बात करते हैं तो यह उत्तर प्रदेश के चार राज्य कृषि विश्वविद्यालयों,बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, गैर सरकारी संस्थानों व भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान वाराणसी से प्रसारित की जातीहै।

इस परियोजना की कार्य प्रणाली, उद्देश्य एवं विशेषताएं इस प्रकारहैं—

- ❖ कृषि विश्वविद्यालय में मौसम आधारित कृषि परामर्श सेवाई—मौसम से एस.एम.एस के द्वारा सप्ताह में दों दिन मंगलवार और शुक्रार को प्रसारित की जाती है।
- ❖ प्रत्येक मंगलवार तथा शुक्रवार को आगामी 5 दिनों का मौसम पूर्वानुमान राष्ट्रीय मघ्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान केन्द्र नोएडा, उत्तर प्रदेश से प्राप्त होता है।
- ❖ प्राप्त मौसम पूर्वानुमान एवं कृषि की स्थिति को घ्यान में रखकर अनुभवी कृषि मौसम वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोध व अनुभव के आधार पर कृषि मौसम परामर्श बुलेटिन तैयार किया जाता है व विभिन्न माध्यमों द्वारा किसानों तक उसी दिन प्रसाारित किया जाता है।
- ❖ समय—समय पर किसानों से मिलकर इस सेवा द्वारा मिलने वाली आर्थिाक लाभ व हानि का आकलन किया जाता है।
- ❖ ग्राम स्तर पर किसान जागरूकता के माध्यम से किसानो को इस सेवा की जानकारी मौसम विशेषज्ञ के द्वारा दी जाती है ,तथ किसानो को फोन नंबर देकर फोन से जानकारी लेने के लिए भी प्रेरित किया जाता है ।

उद्देश्य

❖ किसानों के लिए मौसम का मध्य अवधि आगामी 5 दिनों के लिए पूर्वानुमान करना।

❖ मौसम आधारित फसल प्रबंधन द्वारा पैदावार में बढ़ोतरी लाना।

❖ फसल को मौसम के प्रतिकूल प्रभाव से बचाना एवं अनुकूल स्थिति का लाभ दिलाना।

❖ मौसम खेती परामर्श बुलेटिन द्वारा किसानों को नई–नई कृषि तकनीकों के विषय में अवगत कराना एवं मौसम के अनुसार कृषि कार्यों को सुनिश्चित करने की सलाह देना।

❖ किसानो की आय बढ़ाना तथा लागत कम करना ।

परामर्श बुलेटिन की विशेषताएं

❖ आगामी 5 दिनों के लिए मौसम पूर्वानुमान उपलब्ध कराना जो 90 प्रतिशत से अधिक सही होता है।

❖ खेतों की तैयारी एवं विभिन्न फसलों को लगाने के समय एवं विधि से संबंधित सलाह।

❖ फसल की कटाई बुनाई एवं भंडारण से संबंधित सलाह।

❖ सूखा की स्थिति में वैकल्पिक फसल योजना किसानों को उपलब्ध कराना।

❖ पशुधन में होने वाले प्रमुख रोगों एवं उनके उपचार की जानकारी किसानों को उपलब्ध कराना।

❖ फसल में मौसम की विपरीत दशा में लगने वाले रोगों की पहचान करना तथा समय पर रोगों का निदानहोना ।

❖ महिला कृषक तथा घरेलु महिलाओ के लिए गृहविज्ञान के माध्यम से उनके लिए उपयोगी जानकरी देकर उनमे आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना तथा महिला कृषक तथा घरेलु महिलाओं को नई जानकारी से अवगत कराना ।

❖ पर्यावरण अनुकूल खेती से होने वाले फायदे से किसानो को जागरूक करना तथा कार्बनिक खेती करने के लिए प्रेरित करना जिससे मृदा स्वास्थ्य बना रहे ।

❖ किसानो को मौसम आधारित खेती के लाभों से अवगत कराना ।

❖ किसानो को आने जाने में लगने वाले खर्च तथा समय को बचाते हुए खेती से सम्बंधित अधिकतर जानकारी उन्हें उनके आवास तक सोसल मिडिया के माध्यम से पहुँचना ।

❖ कुछ किसान लाभान्वित होकर अपना फीडबैक भी दिए है,और अन्य किसानो को भी जानकारी से अवगत कराने के लिए जागरूक कर रहे है ।

बेबीकार्न का उत्पादन

सुधीर कुमार मिश्र, सपना राय, रजत कुमार सिंह
नेशनल पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर (उ0प्र0)
सैम हिग्गिनबाटॅम कृषि एवं प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज, (उ0प्र0)

बेबी कार्न मक्के की के भुट्टे की प्रारम्भिक अवस्था है जिसमें भुट्टे को परागण होने से पहले ही कोमल अवस्था में तोड़ लिया जाता है, जिसे बेबी कार्न कहते हैं। आजकल बेबी कार्न की खेती लोकप्रिय हो रही है जिसका उपयोग सब्जी के रुप में या सलाद के रुप में किया जाता है। इसका उपयोग थाईलैण्ड, ताइवान, हॉगकॉग आदि देशों में काफी पहले से किया जा रहा है परन्तु अब हमारे देश में भी इसकी मांग बढ़ती जा रही है। इसका प्रयोग सब्जी, सलाद के साथ साथ सूप, अचार, पकौड़ा तथा अन्य चायनीज पकवानों को तैयार करने में किया जाता है। यह बहुत ही पौश्टिक होता है जिसमें कैल्शियम फास्फोरस की अधिक मात्रा के साथ प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट व विटामिन्स प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। इसके साथ साथ इसके हरे पौधों से पशुओं के लिए चारा मिलता है तथा साइलेज तैयार किया जाता है। साइलेज में 132 प्रतिशत प्रोटीन, 4.4 प्रतिशत वसा, 34.8 प्रतिशत रेशा तथा 6.5 प्रतिशत शंख पायी जाती है। जो पशुओं के लिए संतुलित आहार होती है। बेबी कार्न की मॉग बढ़ने की मुख्य धारणा यह भी है कि इसमें कीट रसायनों के हानिकारक प्रभाव से कम या बिल्कुल प्रभावित नही होती है क्योंकि भुट्टा उपर से कई परतों में हस्क से ढ़का रहता है।

भारत में बेबी कार्न की खेती शुरु में महानगरों के आसपास तक सीमित रही क्योंकि इन महानगरों में विभिन्न सितारा होटल है जो इसके विक्रय के लिए बाजार तय करते हैं। लेकिन अब इसकी खेती का प्रचलन हरियाणा के सोनीपत व पानीपत जिले, उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा और अलीगढ़, महाराश्ट्र के पुणे एवं नासिक, बिहार के पटना तथा नार्थ स्टेट के कई जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ रही है। दिल्ली में इसका विपणन राश्ट्रीय डेयरी विकास परिशद् द्वारा किया जा रहा है। विभिन्न निजी संस्थानों द्वारा इसे किसानों के खेत में पैदा किया जाता है तथा केनिंग के यूरोपियन देशों में निर्यात किया जाता है।

उन्नतशील प्रजातियॉ

सामान्यतः बेबीकार्न की फसल लेने के लिए मक्के की कोई भी शंकुल या संकर प्रजाति

उगायी जा सकती है। लेकिन व्यापारिक स्तर पर इसकी खेती करने के लिए मक्के की ऐसी प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए जिनमें निम्नलिखित गुण पाये जाते हों–

अगेती परिपक्वता

बेबी कार्न के लिए मक्के की प्रजातियों का मुख्य गुण उसकी अगेती परिपक्वता होनी चाहिए। अगेती फसल होने से उत्पादक इसें कम समय में तैयार कर सकते हैं। अगेतापन न केवल बेबीकार्न को नकदी फसल लेने के लिए लाभप्रद है बल्कि इससे फसल की फूल आने के बाद के विभिन्न जैविक व अजैविक व्याधियों से स्वतः बचाव हो सकता है।

भुट्टे की अधिक मात्रा में निकलना

आमतौर पर मक्के की विभिन्न प्रजातियों में दो भुट्टे प्रति पौधा लगाते हैं जो कि अधिकतम दानों से भरे होते हैं परन्तु बेबी कार्न के उत्पादन के लिए ऐसी प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए जिसमें कम से कम तीन भुट्टे प्रति पौधा मिले। अधिे भुट्टे प्रति पौध निकलने के साथ साथ प्रजाति को अधिक पादप सघनता के प्रति सहिश्णु होना चाहिए।

एक समय भुट्टे का निकलना

बेबी कार्न के उपज लेने तथा कम से कम तुड़ाई करने के लिए इसकी प्रजाति में एक साथ भुट्टे के निकलने का गुण होना चाहिए। इसके लिए एकल संकरण संकर प्रजाति का प्रयोग करना चाहिए।

पीला दाना

पीले अपरिपक्व बीज (करनल) जो कि एक समान लाइनों में व्यवस्थित होते हैं वह अन्तर्राश्टीय्र बाजारें के लिए मानक होते हैं। अतः पीले बीजों वाली मक्के की प्रजाति का चुनाव करना चाहिए।

पौधे की ऊँचाई

पौधे की ऊँचाई, भुट्टे की तुड़ाई की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। बेबी कार्न की फसल के लिए 2.25 मीटर पौधे की ऊँचाई अच्छी होती है। जिस पर 45 सेमी0 से 1.80 मीटर तक भुट्टे लगने चाहिए। भुट्टे की ऊँचाई उचित होने से तुड़ाई पर लागत कम आती है।

उपयुक्त किस्में

बेबी कार्न के लिए बी.एल.42 एक मुक्त परागित मक्के की किस्म है जो विवेकानन्द अनुसंधान संस्थान, अलमोड़ा से विकसित की गयी है। भारतीय अनुसंधान संस्थान तथा महाराश्ट्र हाइब्रिड सीड कम्पनी द्वारा विकसित संकर प्रजातियॉ प्रकाश (जी.एच.3189) तथा एम.ई.एच. 114 को मक्का अनुसंधान निदेशालय द्वारा भारतीय जलवायु में उगाने के लिए संस्तुति की गयी है।

इसके अलावा सी.ओ.वी.सी. 1 किस्में जो कोयम्बटूर मे विकसित की गयी है को भी बेबी कार्न के लिए दक्षिण भारत में लगाया जा सकता है।

जलवायु

मक्के की तरह ही बेबी कार्न की फसल भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वर्श भर उगाया जा सकता है। मगर सभी अवस्थाओं में तापमान लगभग 25^{0}से.ग्रे. के आस पास होना चाहिए। उत्तर भारत में अधिक गर्मी के समय तापमान बढ़ने से भुट्टे का विकास तेजी से होता है, जिसके कारण कोमल अवस्था में ही भुट्टे की गुणवत्ता में गिरावट आने लगती है।

भूमि

मक्के की खेती की भॉति इसकी खेती बलुई से लेकर भारी मृदा तक सभी प्रकार की भूमियों में की जाती है। अधिकतम पैदावार के लिए अधिक उपजाऊ दोमट मिट्टी जिसमें जिवांश की पर्याप्त मात्रा हो तथा जिसका पी.एच. मान 6–7 हो उपयुक्त होता है। जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

भूमि की तैयारी

गर्मी के दिनों में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करनी चाहिए। बुआई से पहले एक गहरी जुताई करके 2–3 बार हैरो या कल्टीवेटर से जुताई करना चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिए जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाय तथा भूमि में नमी बनी रहे।

बीजदार

बीज की मात्रा मृदा में नमी, फसल बोने का उद्देश्य, बोने का समय तथा विधि आदि कारको पर निर्भर करती है। मक्के की तुलना में बेबी कार्न के लिए थोड़ी अधिक मात्रा में बीज की आवश्यक्ता होती है। इसके लिए औसतन 25–30 किलो ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बुआई करने से पहले बीज को थिरम या कैप्टान आदि रसायन से (2.5 ग्राम/किलो ग्राम बीज) उपचारित कर लेना चाहिए।

पादप सघनता

अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए बेबी कार्न के 1,10,000–1,15,000 पौध प्रति हेक्टेयर रखे जाते है। बीज की बुआई के पंक्ति से पंक्ति की दूरी 40–60 से.मी. तथा बीज से बीज की दूरी 10–15 से.मी. रखनी चाहिए।

बुआई

बेबी कार्न के लिए मक्के की फसल जल्दी तैयार हो जाती है इसलिए इसकी बुआई वर्श में दो–तीन बार की जा सकती है। वर्शा ऋतु प्रारम्भ होने के करीब 15 दिन पहले इसकी बुआई शुरु

करनी चाहिए। बसन्त ऋतु में इसकी बुआई फरवरी के प्रथम सप्ताह में करते हैं। बेबी कार्न को पंक्ति से बोना चाहिए। मक्का बोने वाली मशीन से या हल के पीछे कूड़ में बुआई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

बेबी कार्न की अच्छी फसल लेने के लिए 130–150 किलो ग्राम नाइट्रोजन, 40–60 किलोग्राम फास्फोरस तथा 40–50 किलोग्राम पोटाश की प्रति हेक्टेयर आवश्यक्ता होती है। मक्का की तरह ही फास्फोरस पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा बुआई के समय खेत में बराबर रुप में मिला देते हैं। तथा नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा बुआई के 25–30 दिन बाद तथा शेश मात्रा नर मंजरी निकालते समय देना चाहिए।

सिंचाई

बसंत ऋतु में उगायी गयी फसल में 8–10 दिन के अन्तर पर लगातार वर्याा होने तक करते रहना चाहिए। खरीफ मौसम में वर्शा न होने पर आवश्यक्तानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

नर मंजरी को तोड़ना

मक्के की फसल से बेबी कार्न की उपज लेने के लिए इसमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य नर मंजरी को तोड़ना होता है। पौधों में फूल आने से पहले ही नर मंजरी को तोड़ देना चाहिए। नर मंजरी तोड़ने से अधि भुट्टों का निर्माण होता है तथा परागण न होने से भुट्टे की गुणवत्ता भी खराब नहीं होती है।

तुड़ाई

बेबी कार्न की फसल पर तुड़ाई के समय का बीुत प्रभाव पड़ता है कयोंकि तुड़ाई में एक दिन की देरी होने से कोमलता खत्म होने लगती है जिससे गुणवत्ता में कमी आ जाती है। ताजे बाजार के लिए कोमल भुट्टे की तुड़ाई प्रत्येक दिन सुबह के समय भुट्टे से झुआ निकलने से पहले करना चाहिए। प्रसंस्करण के लिए भुट्टे की तुड़ाई झुआ निकलने के दो–तीन दिन बाद करनी चाहिए।

फसल की अवधि

सामान्यतः अच्छी प्रजातियों में 6–7 तुड़ाई 45–55 दिन के फसल अवधि में हो जाती है। फसल की अवधि रबी मौसम में 10–15 दिन बढ़ सकती है।

उपज एवं शुद्ध लाभ

सिंचित दशाओं में संकर प्रजातियों से 60–80 कु./हे. तक बिना छिली हुये भुट्टे प्राप्त होते हैं जिसमें 15–20 प्रतिशत तक छिले हुए भुट्टे मिलते हैं। भुट्टे के अलावा 250–300 कु./हे. हरे पौधें की भी उपज प्राप्त होती है जिसे पशुओं के चारे, साइलेज बनाने या हरी खाद के रुप में उपयोग किया जा सकता है।

भारतीय बाजारों में छिले भुट्टे की कीमत 50—90 रुपये प्रति कि.ग्रा. तक मिलती है। बेबी कार्न की खेती में 30000 से 55000 तक लागत खर्च आती है जिससे बहुत ही कम समय में लगभग (दो महीने में) 45—50000 रुपये प्रति हेक्टेयर तक शुद्ध लाभ मिल सकता है।

हिन्दुस्तान 04

प्रयागराज • शुक्रवार • 27 दिसंबर 2019

विज्ञान परिषद के सभागार में आयोजित सात दिवसीय कार्यशाला के समापन कार्यक्रम को संबोधित करते मुख्य अतिथि पूर्वांचल विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. राजाराम यादव। • हिन्दुस्तान

पर्यावरण सुरक्षा को आगे आएं शिक्षक

प्रयागराज | निज संवाददाता

सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट और भारतीय गो विज्ञान सेवा समिति की ओर से विज्ञान परिषद में गुरुवार को सात दिनी कार्यशाला का समापन हुआ। मुख्य अतिथि पूर्वांचल विवि के कुलपति प्रो. राजाराम यादव ने कहा कि कृषि एवं पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जन्तु, रसायन, भौतिक विज्ञान विभाग के शिक्षकों को एकजुट होकर आगे आना होगा। इसके साथ प्रयोगशाला के कार्यों को खेतों में ले जाने की जरूरत है।

प्रो. अनीता गोपेश ने कहा कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जागरूकता जरूरी है। प्रो. के.पी. सिंह ने कहा कि आधुनिक तकनीकों का प्रयोग विकास के लिए जरूर करना चाहिए। डॉ. हेमलता पंत ने कार्यक्रम की रूपरेखा बताई। संचालन डॉ. दिनेश स्वरूप और धन्यवाद ज्ञापन पीयूष रंजन पांडेय ने किया।

इस अवसर पर डॉ. मनोज सिंह, डॉ. ज्योति वर्मा, डॉ. रणविजय सिंह, डॉ. अर्चना पांडेय, डॉ. अर्चना त्रिपाठी, डॉ. नीरजा कपूर, डॉ. उमारानी अग्रवाल, डॉ. तनया राव, डॉ. [illegible], डॉ. कल्पना, डॉ. जितेंद्र आदि मौजूद रहे।

हरियाली का लगाना और देखभाल

सपना राय, सुधीर कुमार, मिश्र रजत कुमार सिंह
नेशनल पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर
सैम हिग्गिनबाटॅम कृषि एवं प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

आधुनिक गृह वाटिका में हरियाली या घास के मैदान ;लॉनद्ध का एक विशिश्ट स्थान एवं महत्व है। एक उत्तम नियोजित हरियाली, स्थान विशेश की शोभा बढ़ाने के साथ—साथ अन्य शोभाकार वृक्षों, झाड़ियों, अलंकृत बाड़ और फूलों की क्यारियों की शोभा में अभिवृद्धि करती हैं। बागवानी के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि हरियाली ;लॉनद्ध का महत्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। सभ्यता के के विकास के साथ—साथ इसके निर्माण की गति में भी निश्चित रुप से वृद्धि हुई है। यही कारण है के आज गृह वाटिकाओं, सामुदायिक स्थानों, बंगलों, पार्को आदि में हरियाली को विशेश महत्व प्रदान किया जा रहा है। पाश्चात्य देशों में हरियाली को प्रधानता दी जाती है और बड़े—बड़े उत्सवों के मौकों पर बड़ी—बड़ी मशीनों द्वारा हरियाली को एक स्थान से खुरचकर उस स्थान विशेश की शोभा बढ़ाने के लिये बिछावन के रुप में उपयोग किया जाता है। यही कसाण है कि वहॉ पर हरियाली को एक व्यवसाय के रुप में उगाया जाता है।

भवन की शोभा वाटिका से है और वाटिका की शोभा लॉन से है। वास्तव में यह हरा भरा लॉन ही होता है जो किसी बाग, बगीचे, ऐतिहासिक वस्तु, शिल्प और निजि व सार्वजनिक भवनों की शोभा को निखार कर उन्हे नयनभिराम रुप प्रदान रिता हैं।

सामान्यतया हरियाली (लॉन) का अभिप्रायः ऐसे चौरस मैदान या भूखण्ड से है, जिस पर कोई घास उगायी गयी हो। एक अच्छी हरियाली तापमान को कम करती है और धूल को दूर रखती है। विदेशों में हरियाली के एक कोने में बल्ब पादपों को लगाण जाता है, जिससे हरियाली की शोभा में और वृद्धि हो जाती है। साथ ही हरियाली में घास काटने वाली मशीन चलाने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

हरियाली (लॉन) का आकार गृह वाटिका के आकार के अनुसार छोटा—बड़ा हो सकता है। साधारणतया गृह वाटिका में लगाई गयी हरियाली का आकार छोटा होता है क्योंकि अधिकांशतया वहॉ कम स्थान उपलब्ध होता है। साथ ही गृह वाटिका में हरियाली का उपयोग सीमित व्यक्तियों

द्वारा ही किया जाता है।

अच्छा लॉन तैयार करने के लिए प्रारम्भ से ही पुर्व योजनाबद्ध विधि से कार्य करना आवश्यक है।

प्रमुख उद्देश्य– हरियाली (लॉन) के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. सुन्दरता में वृद्धि के लिये।
2. मनोरंजन के लिये।
3. खेल के मैदान बनाने के लिए।
4. वानस्पतिक उद्यानों/पार्कां के लिये।

प्रमुख विशेषतायें– उत्तम नियोजित हरियाली (लॉन) की निम्न प्रमुख विशेष्ताएँ हैं–

1. हरियाली में सर्दी–गर्मी दोनों मौसमों को सहन करने की क्षमता हो।
2. हरियाली पूरे वर्श कोमलता, रंग और सघनता को बनाये रखने में सक्षम हो।
3. यह केवल समीप से ही देखने में सुन्दर न लगे बल्कि दूर से देखने में भी सुन्दर लगे।
4. हरियाली से किसी प्रकार की दुर्गन्ध नहीं आनी चाहिए।
5. हरियाली, खरपतवारों, कीट व रोगों से प्रभावित न हो।
6. हरियाली पा इमारतों एवं वृक्षों का प्रतिबिम्ब न पड़े।
7. एक प्रकार की ही घास होनी चाहिए।
8. हरियाली वाली घास पैरों में चुभने वाली न हो।

स्थान का चयन और उसकी तैयारी

साधारणतः हरियाली (लॉन) किसी भी प्रकार की भूमि में बनाई जा सकती है, किन्तु स्थाप का चयन बड़ी सावधानी और सूझ–बूझ के साथ करना चाहिए। इसके लिए ऐसे स्थान का चयन करें, जहॉ पर बंगले की छाया कम से कम पड़े और घर का पानी ठकट्ठा न होता हो, क्योंकि पानी ठकट्ठा होने से घास की वृद्धि रुक जाती है और तरह–तरह के रोगों एवं कीटों का आक्रमण हो जाता है।

खाद और उर्वक

मई जून के महीने में हरियाली ;लॉनद्ध के लिए निर्धारित स्थान पर 40 से 60 सेमी0 गहरी खुदाई करे।खुदाई के उपरान्त मिट्टी को दो सप्ताह तक खुला छोड़ दें ताकि मिट्टी सूर्य की किरणें से पूरी तरह तप जाए। साथ ही जमीन के कीट व रोग फैलाने वाली फफूँदी मर जाए। खुदाई

का कार्य तीन बार किया जाताहै और प्रत्येक खुदाई के समय ढेलों को तोड़कर बारीक बनाएॅ और खरपतवारों की जड़ों का निकाल दें। इसके अनावा कंकड़–पत्थरों को भी निकाल देना चाहिए। बाद में भूमि को हल्क गार्डन रोलर की सहायता से समतल कर दें। समतल करने के बाद पानी देना चाहिए, ताकि समतल होने का पता चल जाए और खरपतवार भी उग आते हैं, उन्हें नश्ट कर देना चाहिए।

घास की अच्छी वृद्धि के लिए भूमि में पर्याप्त मात्रा में गोबर की खाद और उर्वक डालना नितान्त आवश्यक है। इनकी उचित मात्रा हरियाली के लिए चुनी गयी भूमि, घास की जाति एवं सिंचाई के साधन पर निर्भर करती है। आमतौर पर 500 क्विंटल गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि की खुदाई के उरान्त जमीन में मिलाई जाती है। घास की अच्छी वृद्धि के लिए 500 से 700 किलोग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में 8 से 12 सेमी0 गहराई तक मिला देना चाहिए। भूमि में चूना उस समय तक नहीं मिलाना चाहिए जब तक उसका पी–एच0 मान 5.5 से कम न हो, क्योंकि अधिकांश घासों की वृद्धि कुछ अम्लीय भूमि में अच्छी होती है।

घास का चयन

हरियाली (लॉन) का निर्माण करने में घास का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः घास का चयन बड़ी सावधानी एवं सूझ–बूझ से करना चाहिए। उद्यानविदों के अनुसार हरियाली वाली घास में निम्न गुण अनिवार्य हैं–

1. जल्दी अंकुरित होने वाली हो।
2. तीव्र गति से बढ़ने वाली हो।
3. फैलकर कालीन के समान हो जाए।
4. नियमित कटाई सहन कर सके।
5. सूखे व ठण्ड को सहन करने की क्षमता रखती हो।
6. कीट व रोगों के लिए प्रतिरोधी हो।7. पूरे साल हरी व सघनी बनी रहे।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाने वाली कुछ खास घासों का विवरण नीचे दिया गया है:–

1. साइनोडान डेक्टाइलॉन–

इसे ''बरमूदा घास'' की संज्ञा भी दी जाती है। देशी भाशा में इसे ''दूब घास'' कहते हैं। इसमें अधिकांशतः वे सभी गुण हैं, जो लॉन के पास की घास में होने चाहिए। यह भारत की सर्वाधिक लोकप्रिय घास है। अपने स्थापित होने व पूरे स्थान को ढकने में लगभग 40 दिन का समय लेती है।

यह घास भारतीय मैदानों के लिए बहुत उपयुक्त है।

2. जोईसिआ जेपानिका–

इसे ''जापान या कोरियन घास'' की संज्ञा भी दी जाती है। यह घास काफी नर्म होती है लेकिन इनकी वृद्धि मंद गति से होती है। जिन स्थानों पर दूब घास अच्छा परिणाम नहीं दे पाती, वहॉ पर यह घास सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है। इस घास को कमजोर व रेतीली भूमि में भी सुगमता से उगाया जा सकता है।

3. स्टेनोपहर्म सिकण्डेटम–

इसे ''गूज घास'' की संज्ञा भी दी जाती है। यह घास काफी कठोर होती है। यह घास बड़े वृक्षों के नींचे, वर्शा की भारी बूँदो को सहन करने में भी समर्थ होती है।

4. डिकोहोण्ड्रा रीपेन्स–

यह घास बिल्कुल ''ब्रह्मी'' ;सेण्टीला एशियाटिकाद्ध की तरह होती है। यह घास भूमि पर एक विशेश प्रकार की आवरण तैयार करती हैं। इसकी पत्तियॉ छोटी, गोल और गहरे हरे रंग की होती है। इसे अधिक धूप और अधिक छाया दोनों से सुगमता से उगाया जा सकता है। इस घास की कटाई नहीं की जाती।

5. पोआ प्रेटेन्सिस–

इसे ''केंटुकी ब्लू'' की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि यह घास नीले–हरे रंग वाली होती है। यह घास ठण्डी जलवायु को अधिक पसंद करती है। यह अधिक मात्रा में कार्बनिक खाद, कम जल चाहती है। यह घास अधिक अच्छी नहीं रहती।

घास लगाना– हरियाली (लॉन) की घास निम्न विधियों से लगाई जाती है–

1. बीज द्वारा–

इस विधि का उपयोग उन क्षेत्रों में किया जाता है जहॉ पर रोपने के लिए घास उपलब्ध न हो। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 12 से 15 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। आमतौर पर 200 वर्गमीटर क्षेत्र में 500 ग्राम बीज की आवश्यक्ता होती है। बीज बोने का सर्वोत्तम समय वर्शा का प्रारम्भिक काल माना जाता है। भूमि में पर्याप्त नमी का होना इस विधि में नितान्त आवश्यक है। बीज द्वारा हरियाली ;लॉनद्ध तैयार करने में समय अधिक लगता है और खरपतवारों का प्रकोप भी अधिक होता है।

2. घास के टुकड़ों को चिपकाना–

इस विधि में घास के तनों को जड़ सहित 5–6 सेमी0 लम्बाई के टुकड़ों में काट लिया जाता

है। दो भाग घास के टुकड़े, एक भाग गोबर की खाद, एक भाग ताजा गोबर व एक भाग बालू रेत मिलाकर लुगदी बना ली जाती है। दस तैयार लुगदी को जमीन की समतल सतह पर समान रुप से इस प्रकार फैलाया जाता है कि कोई भी जगह खाली न रहे। इसे नम बनाने के लिए हल्की सिंचाई की जाती है।

3. घास की पट्टियाॅ लगाना–

उष्ण क्षेत्रों में हरियाली ;लॉनद्ध निर्माण के लिए एक उत्तम विधि है। इसमें छोटी–छोटी हरी घास सघन एवं खरपतवार रहित स्थान से चुनी जानी चाहिए। इसको पट्टियों के रुप में निकाला जाता है। ये पट्टियाॅ तैयार समतल जमीन पर बिछा दी जाती है और रोलर चलाकर पानी दे दिया जाता है। ऐसा करने से घास जल्दी स्थापित हो जाती है। 3 महीने में घास मशीन द्वारा कटाई के लिए तैयार हो जाती है।

हरियाली की देख–भाल

हरियाली की स्थापना के उपरान्त सबसे महत्वपूर्ण कार्य उसकी देख–भाल है। आमतौर पर इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है जिसके कारण वे अभद्र दृश्य प्रस्तुत करते है। कहने का अभिप्राय यह है कि आपकी सारी मेहनत पर पानी फिर जाता है। हरियाली की उचित देख–भाल करके मनभावन दृश्य प्रस्तुत किया जा सकता है। हरियाली की देखभाल में निम्न बातों का विशिष्टि एवं महत्वपूर्ण योगदान है।

1. नियमित सिंचाई–

हरियाली की सिंचाई भूमि की किस्म, जलवायु, घास कि किस्म आदि पर निर्भर करती है। हरियाली की घास की उत्तम वृद्धि और वांछित रंग के लिए हल्की सिंचाई आवश्यक है। गर्मियों में 4–5 दिन के अन्तर से और सर्दियों में 15–20 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। सर्दियों में प्रातःकाल की ओस बहुत हद तक हरियाली की पानी की आवश्यक्ता को पूरी करने में सहायता करजी है।

2. कटाई और बेलन चलाना–

घास को सुन्दर एवं समतल बनाने के लिए उसकी कटाई उस समय की जानी चाहिए जब घास 15 सेमी0 लम्बी हो जायें। घास की कटाई से अगल–बगल की शाखाओं की वृद्धि होती है और हरियाली पूर्ण गलीचे का रुप धारण कर लेती हैं। एक कटाई से दूसरी कटाई का अन्तर मौसम और घास की किस्म पर निर्भर करता है। साधारणतया ग्रीश्म और वर्शा ऋतु में 8–10 दिन के अन्तर पर कटाई करनी चाहिए। जबकि शरद ऋतु में 20–25 दिन के अन्तर पर कटाई करनी चाहिए। कटाई

के उपरान्त हल्का बेलन चलाना चाहिए। ऐसा करने से हरियाली की सुन्दरता में वृद्धि हो जाती है। घास को भूमि की सतह से 4 सेमी0 की ऊॅचाई से काटना चाहिए। ध्यान रहे कि घास पर फूल नहीं निकले।

3. उर्वरक डालना–

हरियाली की घास की उचित बढ़वार एवं विकास के लिए भूमि में पर्याप्त मात्रा में पोशक तत्वों की आवश्यक्ता होती है। यदि आवश्यक्ता पूरी न की जाएगी तो घास का रंग फीका पड़ जायेगा साथ ही वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगाा। हरियाली में उर्वरक डालने के लिए यूरिया, सिंगल सुपर फास्फेट और म्यूरिएट आफ पोटाश का 5 : 3 : 1 के अनुपात में मिश्रण तैयार करके 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से फरवरी, अप्रैल, जून व अक्टूबर के महीनों में समान रुप से डालना चाहिए। ध्यान रहे कि उर्वरक डालने के समय भूमि में पर्याप्त नमीं न हो।

4. पलवार (मल्चिन) –

शीतोष्ण क्षेत्रों में जहॉ पाला पड़ने की आशंका होती है, अहॉ घास को पाले से बचाने के लिए सूखी पत्तियों या सूखी घास–फूस से ढक कर रखा जाता है। जबकि उश्ण क्षेत्रों में पलवार करने की हानि होती है। जैसे ही पाला समाप्त होने का भय समाप्त हो जाए तब पलवार को हटा देना चाहिए।

5. खरपतवार नियंत्रण–

उच्चकोटि की हरियाली के लिए घास के साथ उगे खरपतवारों और दूसरी किस्म की घासों को निकालना नितान्त आवश्यक है। यदि इन्हे समय पर नहीं निकाला गया, तो वह उत्तम किस्म की हरियाली के निर्माण में बाधा उत्पन्न करेंगे। पतले मुॅह वाली खुर्पी से खरपतवार निकालने का कार्य किया जाता है। साल में 3–4 बार खरपतवार निकालने की आवश्सक्ता होती है।

नीबू का मंद गलन रोग एवं प्रबन्धन

अर्चना उदय सिंह और इम्तियाज अहमद
सूत्रकृमि विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

फसलों में लगने वाले प्रमुख रोग एवं परजीवियों में सूत्रकृमियों का स्थान प्रमुख है। सूत्रकृमि नंगी ऑखों से न दिखने वाले धागे के आकार के कृमि होते हैं। ये मृदा में बहुता पाये जाते हैं और करीब–करीब सभी फसलों को संक्रमित करते हैं। अंग्रेजी भाषा में इन्हें निमेटोड के नाम से जाना जाता है जो कि कैचुओं से काफी भिन्नता लिये होते हैं। संसार में लगभग एक लाख सूत्रकृमि की प्रजातियाँ हैं, जिनमें से अभी तक 20,000 की ही पहचान हो पायी है। पृथ्वी पर कोई भी पेड़–पौधा ऐसा नहीं है जिससे सूत्रकृमि किसी न किसी रूप में अपना भोजन न प्राप्त करते हों अर्थात् उसे संक्रमित न करते हों। पौधों के परजीवी सूत्रकृमि की लम्बाई लगभग 02 मिलीमीटर तथा व्यास 0.05 मि.मी. अथवा इससे भी कम होती है। सूत्रकृमियों की अधिकतर प्रजातियां जड़ों व पौधों के भूमिगत भागों से अपना भोजन ग्रहण करती हैं परन्तु कुछ ऐसी भी प्रजातियां हैं जो पौधों के ऊपर भागों पर भी आक्रमण करती हैं। सूत्रकृमि जड़ों से भोजन बाहर रह कर अथवा आधा शरीर जड़ों में प्रवेश कर या पूर्णरूप से जड़ के अन्दर प्रवेश कर प्राप्त करते हैं। पौध परजीवी सूत्रकृमियों के अन्दर एक खोखली सूई के आकार की रचना होती है जिसे अपनी शारीरिक ताकत के द्वारा पौधों की कोशिकाओं में प्रवेश करा कर कोशिकाओं में लार डालकर उसके अन्दर के तत्त्वों को घुलाकर वापिस अपने शरीर में सोख लेते हैं। इस तरह की प्रक्रिया द्वारा पौधों की कोशिकायें बहुनाभिकीय विशाल कोशिकाओं में परिवर्तित हो जाती है। जबकि कुछ सूत्रकृमि की जातियों की लार से कोशिका फूलकर गॉठ के रूप में हो जाती है साथ ही भोजन के अभाव में कमजोर हो जाता है जिससे दूसरे परजीवी व रोग कारक भी पौधों पर आक्रमण कर उन्हें संक्रमित कर देते हैं।

इन सबके अलावा ये सूत्रकृमि परोक्ष रूप में भी पौधें को विषाणुओं का संवहन करके व राइजोबियम जीवाणु द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण की मात्रा में कमी करके नुकसान पहॅुचाते हैं एवं गम्भीर रोग उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार सूत्रकृमि हर तरह से फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं साथ

ही इन्हें छोटे आकार एंव मिट्टी में रहने के कारण विशेष विधि द्वारा मिट्टी से निकालकर केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्र के द्वारा ही देखा जा सकता है। यही वह कारण है जिसके लिये इन्हें फसलों का छुपा हुआ शत्रु भी कहा जाता है। निम्नलिखित सूत्रकृमि रोग पाये जाते हैः गेहूॅ व जो का मोल्या रोग, गेहूॅ का सेहूॅ व टुण्डू रोग, सब्जियों का जड़गॉठ या मूलग्रंथी रोग, दलहन एंव तिलहनों का गुर्दाकार सूत्रकृमि रोग, फलीदार फसलों का अरहर पुटी सूत्रकृमि रोग, मक्का का पुटी सूत्रकृमि रोग, नींबू का मंद गलन रोग और जड़ विक्षत सूत्रकृमि रोग। ये पौधों की जड़ों की ऊपरी सतह से अपना भोजन प्राप्त करते हैं जिसके कारण पौधे कमजोर हो जाते हैं एवं इनके द्वारा जड़ों में किये गये छेदों से दूसरे परजीवी प्रवेश कर पौधों को रोगी बना देते है।

नीबू का मंद गलन रोग :

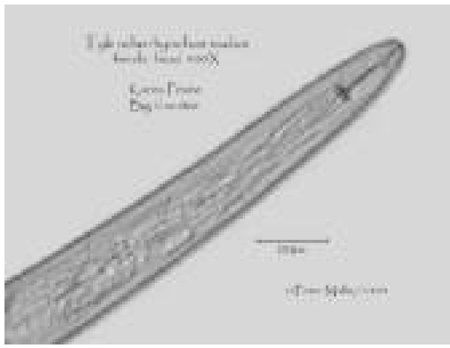

नीबू कुल की समस्त प्रजातियों में लगने वाला यह सूत्रकृमि भारतवर्ष के उन सब क्षेत्रों में पाया जाता है जहॉ नीबू कुल के बाग या पौधे लगाये जाते हैं। देखने में यह कृमि रेनीफोर्म सूत्रकृमि से मिलता–जुलता है जिसका पिछला पूँछ की तरफ वाला भाग मादा की उम्र के साथ साथ फूलता जाता है जिसमें से जैली नुमा द्रव्य का स्त्राव होता है और उसी में मादा अपने अण्डे देती है।

सूत्रकृमि जड़ों में अर्ध अतंर्जीवी की तरह से रहते हैं। द्वितीय अवस्था के शिशु कृमि जड़ों पर आक्रमण करते हैं और दो तीन बार कैचुली में बदलने के बाद पूर्ण वयस्क मादा बनती है। इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी यह सिलसिला चलता रहता है और कृमि की संख्या में बढ़ोतरी होती रहती है। नीबू कुल के पौधों में नर्सरी अवस्था में इस रोग की भयानकता इस हद तक होती है कि अधिकांश नवांकुर नर्सरी में ही मर जाते हैं जो बच जाते हैं वह इतने कमजोर और क्षीण होते हैं कि उन पर

दूसरे रोगाणु आक्रमण कर देते हैं जिससे कि उनकी बढ़वार रूक जाती है परन्तु बड़े पेड़ों में ऐसा नहीं होता हैं वहॉ पर यह सूत्रकृमि जड़ों में अपना सिर घुसाकर भोजन लेते हैं जिससे कि पौधा शनैः शनैः कमजोर होता है और उसकी टहनियां उपरी सिरे से सूखना शुरू कर देती हैं साथ ही फल की उत्पादकता व आकार में भी

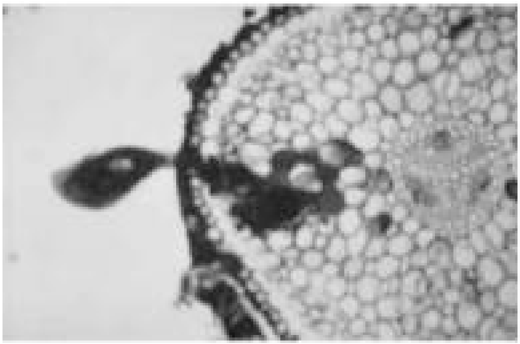

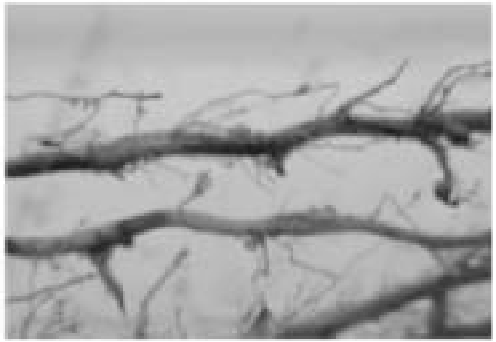

कमी हो जाती है ऐसे पौधों की यदि जड़ों को खोद कर देखा जाये तो जहाँ मादा व अण्डे चिपके रहते हैं वहीं पर मिट्टी भी चिपक जाती है जो कि जड़ों को भद्दा रूप देती है।

नीबू कुल के सूत्रकृमि – टाईलैन्कुलस –

इस कुल के लिए टाइलैन्कुल्स सैमीपैनीट्रान्स मुख्यतः प्रधान भूमिका निभाता है। नीबू में स्लौडिक्लाइन रोग का मुख्य कारण यही सूत्रकृमि है। द्वितीय स्तर का शिशु जड़ों पर आक्रमण करते हैं तथा विकास के बाद थोड़ी बाहर निकाल कर अण्डे देती है। जो मिट्टी से चिपक कर जड़ो के रूप को बिगाड़ देते है। इसके लक्षण ऐसे दिखाई देते हैं जैसे कि पोषण की कमी से पौधे पीले व बौने दिखाई देते हैं। इनकी वजह से फल कम होते हैं तथा पत्तियाँ गिरती रहती हैं। फफूँद, विषाणु तथा अन्य जीवाणु नुकसान को बढ़ा देते हैं।

रोग प्रबन्धन :

चूंकि यह रोग बागों में या नर्सरीयों में लगता है इसलिये इसका उपचार मुश्किल होता है फिर भी यदि कुछ बातों का ध्यान रखा जाये तो काफी हद तक इस रोग का प्रबन्धन किया जा सकता है।

- प्रतिरोधी त्रिपत्तीय जड़ स्टाक को मादा पौधे के रूप में लेकर उस पर उन्नत किस्म के पौधों की ग्राफटिग की जाये तो ऐसे पौधे रोग रोधी तैयार होते हैं।
- नीबू वर्गीय पौधों की नर्सरी ऐसे स्थान पर तैयार की जायें जहॉ पर कृमि न हों या नर्सरी वाले स्थान को पॉलीथीन से ढक कर या रसायनों के द्वारा उपचारित कर लिया जाये तो रोग की तीव्रता में कमी आती है।
- स्वस्थ, स्वच्छ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- उन्नत एवं रोगरोधी किस्में लगायें।
- जैविक नियन्त्रण हेतु ट्राइकोडरमा विरीडी नामक फफूंद से बीजों को 8 ग्राम प्रति किलो की दर से उपचारित की बोयें।
- किसी भी नई बीमारी या लक्षण के दिखने पर कृषि विभाग या विश्वविद्यालय ये सर्म्पक करें।
- जब पौधे में फूल आ रहे हो तब सूडोमोनास फलोरेनस @20g/m^2 का प्रयोग जड़ के चारों तरफ मिट्टी में डालने से, सूत्रकृमि की रोकथाम हो सकती है।
- कार्बोफ्यूरान @7g/m^2 + 1 kg नीम केक पौधे को जड़ के चारों तरफ मिट्टी में मिक्स करने से प्रबन्धन हो जायेगा।
- जहाँ पर सूत्रकृमि की मात्रा ज्यादा हो वहाँ पर रेसिस्टेन्ट रूट जैसे टूईफोलिएट ओरेनज और उसके हायब्रीड का प्रयोग से सूत्रकृमि की रोकथाम हो जायेगी।

गर्मियों में पशुओं की उचित देखभाल से अधिक उत्पादन

डा. सुधीर कुमार रावत व डा. ओ. पी. मौर्या
वैज्ञानिक, पशुपालन, कृषि विज्ञान केन्द्र, हाथरस
आर. एस. एम. पी. जी. कालेज, धामपुर

उच्चतम व लाभकारी पशु उत्पादन में ग्रीष्मकालीन मौसम में एक बड़ी चुनौती है। ग्रीष्मकालीन मौसम अप्रैल से जून तक रहता है। पशुओं के लिए 5 से 25 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान रहता है। दिन का तापमान जैसे जैसे बढ़ता है पशुओं पर तापीय दबाव बढ़ने लगता है। इस दबाव से पशु असहज महसूस करने लगते हैं। इससे पशुओं द्वारा आहार लेना कम कर देता है। जिसका सीधा प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है। यह दबाव और खराब स्थिति में पहुंच जाता है जब तापमान बढ़ने के साथ–साथ आद्रता भी बढ़ जाती है। इसमें हवा का पूर्वी बहाव एवं विकिरण भी स्वास्थ्य खराब करके आहार खपत की कमी में सहयोग देते हैं। सामान्य तौर पर वर्ष में मुख्य रूप से 3 ऋतु होती हैं ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु तथा शरद ऋतु तीनों मौसम में पशुओं की अलग–अलग तरह की देखभाल की जाती है। इस वातावरण का सीधा प्रभाव प्रत्येक जीव एवं वनस्पति की वृद्धि तथा उनकी गुणवत्ता पर पड़ता है जिससे पशुओं की सभी सामान्य क्रियाएं घट जाती हैं व जिसका प्रभाव उसके पाचन, प्रजनन तथा उसके उत्पादन पर पड़ता है। पशु अधिक तापमान में ठंडे तापमान की अपेक्षा कम चारा दाना खाते हैं क्योंकि वह अपने शरीर के तापमान को बनाए रखने में अधिक ऊष्मा लगा देते हैं। गर्मियों में पशु द्वारा सामान्य से कम चारा खाना, गर्मी के कुप्रभाव के दबाव को दर्शाता है। जिससे दूध उत्पादन कम हो जाता है तथा पशु शरीर ढीला होकर सुस्त हो जाता है। इस मौसम में अधिक गर्मी के कारण दुग्ध उत्पादन लगभग 50 % तक कम हो जाता है। हमारा देश गर्म जलवायु वाला देश है। गर्मी का मौसम पशुओं के लिए बहुत ही कष्ट व पीड़ादायक होता है। मई, जून माह में धूल भरी आंधियां, गर्म लू अधिक नुकसान देती हैं। इस मौसम में तापमान ऊंचा होने का सूर्य की किरणें व धूप सीधे रूप में पशुओं पर प्रभाव डालते हैं।

उच्च मौसम से नुकसान

गर्मी के तीव्र होने की स्थिति में जब तापमान 35 से 45 डिग्री सेंटीग्रेड व नमी 60 से 90 % के बीच होती है तो जानवर खुले मुंह से सांस लेना प्रारंभ कर देते हैं। इसके अलावा जानवर आहार कम ग्रहण करते हैं। जिससे दूध उत्पादन काफी कम हो जाता है। शरीर का तापमान बढ़ जाता है।

जिससे पशु बेचैन हो जाता है पशु हांफना शुरू कर देता है। ऐसी दशा में पशु की तेज सांसों के साथ–साथ लार भी गिरने लगती है। पशु छायादार स्थान की तलाश के साथ ज्यादा पानी पीने लगता है। पशु बैठने के स्थान में खड़ा रहना पसंद करता है। दुधारू पशु की पुनरुत्पादन उत्पादन क्षमता अत्यधिक घट जाती है। उस समय जो पशु गाभिन होता है यदि उसके आखिरी के 3 महीने बचे हैं तो उसके बछड़े कमजोर पैदा होते हैं और उसको अनेक प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो जाती है। गर्मी के मौसम में किए गए कृत्रिम गर्भाधान की स्थिति में गर्भ ठहरने की दर काफी कम हो जाती है। हरे चारे की अपर्याप्तता हो जाती है। काफी अधिक गर्मी होने पर गाभिन पशु बच्चा भी फेंक देती है। इस समय यदि गाभिन होते हुए पशु दूध दे रहा है तो अधिक असर पड़ता है। पशु सुस्त रहता है। आंखों से पानी गिरता है तथा वजन गिरना शुरू हो जाता है। विदेशी नस्ल की गाय अधिक गर्मी में हीट में नहीं आती हैं पर यदि आती भी है तो खुलकर नहीं आती हैं अर्थात वह गाभिन नहीं हो सकती हैं। विदेशी नस्ल के पशुओं को अधिक नुकसान होता है। विदेशी पशुओं की अपेक्षा देशी नस्ल के पशुओं ने वातावरण के अनुसार अपने आप को ढाल लिया है देशी नस्ल के पशुओं की वृद्धि दर तथा उत्पादन पर कम प्रभाव पड़ता है। गर्मी के मौसम में आम जनता को भी काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है पशु का दूध उत्पादन कम हो जाता है पर्याप्त दूध मिलता नहीं है और दाम भी अधिक हो जाते हैं। अतः पशुपालक गर्मी के दिनों में अपने पशुओं से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करके लाभ उठाना चाहते हैं तो पशुओं को गर्मी के कुप्रभाव को दूर करने के लिए निम्नलिखित बचाव करने होंगेः–

पशुओं को गर्मी से बचाव

अधिक गर्मी के बचाव हेतु विभिन्न उपायों का प्रबन्धन करना पड़ता है जैसे आवास, आहार, पानी, उचित प्रबन्ध, स्वास्थ्य आदि का विशेष ध्यान रखना पड़ेगा।

पशु आवास का प्रबन्धन

पशु आवास हमेशा उत्तर दक्षिण दिशा में होना चाहिए जिससे हवा और प्रकाश आसानी से आ जा सके। ऊष्मा अवरोधन छतो और दीवारों पर होना चाहिए। यदि ऊष्मा अवरोधन नहीं है तो सौर ऊर्जा छतों व दीवारों के माध्यम से प्रवेश कर जाती है। अधिक गर्म दिनों में छतों व दीवारों का तापमान 50 से 55 डिग्री सेंटीग्रेड तक पहुंच जाता है। जिससे पशुओं पर ऊष्मा का दबाव बढ़ जाता है। भारतीय परिस्थितियों में छप्पर व मिट्टी अधिक सस्ती एवं आसानी से अंदर के वातावरण को ऊष्मा रोधी करता है। आवास के चारों और छायादार वृक्ष पॉपुलर, यूकेलिप्टस, नीम, आम, शीशम, बरगद, अशोक आदि के वृक्ष लगवाने चाहिए। जिससे दोपहर के समय बाड़े से निकालकर पशुओं को बांधा जा सके। अधिक पेड़ होने से तापमान हमेशा ठंडा बना रहेगा। परंतु ध्यान रहे आवास के अंदर हवा आने जाने में बाधा न पहुंचे। घरों की आवृत्ति ऐसी हो कि सूर्य की सीधी व तेज धूप व लू न

आये। आवास की छत टीन या एस्बेस्टस की बनी होनी चाहिए उस पर पुआल या घास फूस या कड़बी आदि डाल देना चाहिए। छतो की परावर्तन क्षमता बढ़ाने के लिए छतों व दीवारों को सफेद चूने की पुताई करनी चाहिए। पशु आवास की छते ऊँची होनी चाहिए। छत जितनी ऊँची होगी नीचे गर्मी उतनी ही कम लगेगी। पशु आवास में खिड़की व रोशनदान पर्याप्त संख्या में सही जगह पर होना चाहिए। पशु आवास की दीवारों खिड़की पर जूट की बोरी बांध देना चाहिए और उन पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। यदि सम्भव हो तो पशु आवास में कूलर, पंखा, फागिंग संयंत्र का प्रयोग करना चाहिए। पशु आवास और पशुओं पर कई बार पानी का छिड़काव कर देना चाहिए। उचित आवास व्यवस्था से वातावरण के उच्च तापमान को 8 से 10 डिग्री सेंटीग्रेड तक कम किया जा सकता है। अतः आवास से संबंधित सभी उपाय अपनाने चाहिए।

पानी का प्रबन्धन

पशुओं के शरीर में गर्मी की मात्रा को कम करने के लिए दिन में कई बार नहलाना आवश्यक है। अगर पानी को फव्वारे के द्वारा पशुओ पर छिड़का जाये तो ये पशुओं के नहलाने से भी अच्छा है क्योंकि इससे लगातार थोड़ा–थोड़ा पानी शरीर पर पड़ता रहता है। यदि कहीं आस–पास तालाब है तो पशुओं को दिन में उसमें छोड़ देना चाहिए। पशु गर्मी के मौसम में शरीर की गर्मी को कम करने के लिए अधिक पानी का ग्रहण करते हैं पशु शरीर के अंदर 65 % तक पानी होता है जिससे सारी प्रक्रियाएं सुचारू रूप से चलती है। गर्मी के मौसम में अक्सर पानी की कमी हो जाती है यदि ज्यादा पानी कम हो गया तो उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। सामान्य दिनों में पशु को पानी पीने के लिए लगभग 35 से 40 लीटर की आवश्यकता होती है जबकि गर्मी के दिनों में यह दोगुनी हो जाती है। कुल जरूरत पानी का लगभग 100 से 120 लीटर होती है। पशु को पानी प्रचुर मात्रा में, ठंडा, स्वच्छ देना चाहिए। पशु के पानी में नमक घोल देना चाहिए जिससे पशु अधिक मात्रा मे पानी पीता रहेगा। कभी कभी पानी में इलेक्ट्रोलाइट मिलाकर देना चाहिए। धूप व लू में बंधे पशुओं को एकदम से ठंडा पानी नहीं पिलाना चाहिए ना नहलाना चाहिए इससे पशु को गर्म सर्द की बीमारी (टाकू) होने की संभावना अधिक हो जाती है जिससे पशु दर्दनाक पेशाब जोर लगाकर करता है जिससे भेली निकलने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए पशु को पहले छायादार स्थान पर ले जाएं व उसके बाद उसे नहलाएं और पानी पिलाये।

आहार प्रबंधन

गर्मी के मौसम में पशुधन से उच्च उत्पादन लेने व स्वास्थ्य बनाए रखने की दृष्टि से पशु आहार का महत्वपूर्ण योगदान है। गर्मी के मौसम में हरे चारे की कमी हो जाती है इसके लिए ऐसे चारे उगाने चाहिए जो वर्ष भर हरा चारा उपलब्ध करा सकें। पशुओं को हमेशा संतुलित आहार ही

देना चाहिए जिसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज तत्व, विटामिन आदि होने चाहिए। इससे पशु को हमेशा शक्ति मिलती रहेगी, पशु में कोई कमी नहीं उत्पन्न होगी। पशुओं के आहार में प्रोटीन की मात्रा यानी खल की मात्रा 25 से 30 % तक बढ़ा देना चाहिए। इस प्रकार हरा चारा व संतुलित आहार तथा प्रोटीन युक्त आहार जैसे मक्का खिलाने से गर्मी से बचाकर दुग्ध उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। गर्मी में हमेशा पशु को भरपेट रसीला हरा चारा देना चाहिए क्योंकि गर्मी के कारण पशुओं को भूख कम लगती है और वह अपनी जरूरत के अनुसार आहार नहीं खा पाता। जिससे दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। गर्मी में हरे चारे की उपलब्धता के लिए फरवरी–मार्च में मक्का, लोबिया, उर्द, मूंग आदि की बुवाई कर दें जिससे उसे समय पर हरा चारा उपलब्ध हो सके। पशुओं को आहार इस मौसम में अच्छी तरह से सानी बना कर देना चाहिए जिससे वे रेशा व अधिक कड़ा चारा भी आसानी से खा सके। इसके लिए उन्हें अधिक पाचन में शक्ति नहीं लगानी पड़ेगी। सानी में पानी की मात्रा बढ़ा देना चाहिए तथा उसमें नमक की मात्रा 25 से 30 ग्राम बढ़ा देना चाहिए। पशुओं को आहार धूप चढ़ने पर ना दें, हमेशा सुबह शाम ही खिलाएं और दाना भिगोकर या उबाल कर ही दें। यदि हरे चारे की कमी हो तो उसको साइलेज तथा हे खिलाए। इसके अलावा यूरिया उपचारित भूसा, यूरिया शीरा खनिज पिंड दे। जिसमें लगभग अधिकतर पोषक तत्व मौजूद रहते हैं। यदि पशुओं को चराने ले जाते हैं तो पशुओं को सुबह शाम ही ले जाएं। गर्मी के मौसम में पशुओं को अधिक पचनीय चारा व दाना देने से ताप की बढ़ोत्तरी कम होती है। गर्मी के दिनों में कभी भी ऐसा दाना नहीं देना चाहिए जो ज्यादा ऊर्जा पैदा करता है जैसे अधिक कार्बोहाइड्रेट युक्त आहार नहीं देना चाहिए। इसके स्थान पर सरसों की खली, गेहूं का चोकर व मक्का का चूरा आदि देना चाहिए।

अन्य देखभाल

इस मौसम में परजीवी अधिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं इसलिए पशुओं को कृमिनाशक दवा अवश्य खिलाना चाहिए। इस मौसम में होने वाले समस्त रोगों के टीकाकरण समय पर करा लेना चाहिए। पशु को इस मौसम में अधिक दौड़ाना नहीं चाहिए अर्थात अधिक दूर तक चराने नहीं ले जाना चाहिए। यदि संभव हो तो पशुओं को रात में ही चराये। पशुओ को दो से तीन बार नहलाना चाहिए। पशुओं को हमेशा छायादार स्थान पर ही बांधे। पशुओं को दूर–दूर ही बांधे एक झुंड में ना रखें।

पशुपालकों को दुग्ध उत्पादन के लिए बहुत सी उपरोक्त बातों का ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि मौसम का बदलाव उत्पादन पर बहुत कुप्रभाव डालता है। ऐसा करने से दुधारू पशुओं के उत्पादन को ना केवल बनाए रखा जा सकता है बल्कि इसको बढ़ाया भी जा सकता है तथा स्वास्थ्य भी हमेशा सही बना रहेगा।

मशरूम के सूत्रकृमि

अर्चना उदय सिंह और इम्तियाज अहमद
सूत्रकृमि विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

व्यापक कृषि योजनाओं के परिणाम स्वारूप प्रति वर्ष नवीनीकृत लिग्नोसैलुलोसिक अवशिष्ट प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हो रहे है तथा भोज्य पदार्थो के साथ इनका सीधे तौर पर उपयोग अत्यधिक हानिकारक है। दूसरी ओर मशरूम न केवल बहुत से अपौष्टिक पदार्थो मे बदलने की क्षमता रखते है बल्कि हानिकारक लिगलिग, सैलुलोज व हेमिसैलुलोज को सूक्ष्म अवयवों में विघटित कर देते है। इसके अतिरिक्त मशरूम गरीब व भूमिहीन श्रमिकों महिलाओं शिक्षित बेरोजगारो आदि को रोजगार के अवसर भी प्रदान करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। पिछले दशक मे भारत मे मशरूम उत्पादन मे लगभग पाँच गुना बृद्धि पायी गयी, जिसके फलस्वरूप वर्तमान मे कुल उत्पादन लगभग 50,000 टन हो गया है। बीज उत्पादन से कटाई उपरान्त के बीच बहुत से हानिकारक कीट, पतंगे, कवक सूत्रकृमि व अन्य रोगकारको से मशरूम की गुणवत्ता प्रभावित होती है। कृषि आधारित उद्योग को ग्रामीण रोजगार के उत्थान हेतु काफी अधिक महत्व दिया जा रहा है ताकि प्राकृतिक व कृषि योग्य भाग आदि श्रोतों का सदुपयोग हो सके।

सूत्रकृमि शब्द की उत्पत्ती ग्रीक शब्द निमाटोडस से हुई है। जिसका अर्थ धागेनुमा है। संसार मे पाये जाने वाले वहुकोशकीय जन्तुओ मे संघ संधिपाद के बाद इनका स्थान दूसरा है। अधिकतम सूत्रकृमि (लगभग 50 प्रतिशत) समुद्री जबकि वाकी अलवणीय जल व मृदा मे पाये जाते है। मृदा मे पाये जाने वाले सूत्रकृमियो मे से लगभग 25 प्रतिशत मुक्तजीवी 15 प्रतिशत जन्तु परजीवी तथा 10 प्रतिशत पादप पर जीवी है। मृदा मे हानिकारक व लाभदायक दानो ही प्रकार के

सूत्रकृमि मिलते है जिनको प्राय: मुक्तजीवी जीवणुभोजी, मृतोपजीवी, परपक्षी पादप परजीवी व कीटरोगजनक सूत्रकृमि इत्यादि भागो में बाँटा जा सकता है। इन सभी मे से मृतोपजीवी परपक्षी एवं पादप परजीवी प्रजातियो के सूत्रकृमि ही केवल मशरूम मे लगभग 100 प्रतिशत तक की हानि पहुँचाते है।

मृतोपजीवी सूत्रकृमि (गण–रैहब्डिटिडा)मे चूसने व चबाने वाले मुक पाये जाते है जिनकी सहायता से जीवाणुओ प्रोटोजोआ कवक स्पोर अन्य कार्बनिक पदार्थो व मशरूम तन्तु (माइसीलियम) पर असनल करते है। मशरूम को हानि पहुँचाने वाले प्रमुख मृतोपजीवी सूत्रकृमि प्रजातियॉ निम्नवत है–

– एकोबिलाइड़िस एप्लिटिकस
– एकोबिलाइड़िस ब्यूटस्ची
– कूजीनीमा लैम्बडाईएन्सिस
– पैनाग्रोलैमस रिजिडस
– पीलोडेरा स्ट्रोंजीलॉइडिस
– रैब्डिटिस (सिफेलोबाइडीज) आक्सीसेरा
– रैब्डिटिस (कोरियोरैब्डिटिस) लोंगिकाडेटस
– रैब्डिटिस टेरिकोला
– रैब्डिटिस (पेलिओडिटिस) पेलिओ
– सिफेलोबस रूपी.
–डिप्लोगैस्टर रूपी.

भारतवर्ष में ये सूत्रकृमि लगभग सभी मशरूम बेड्स में बहुत अधिक मात्रा में पाए जाते है तथा मशरूम के परिपक्व और अपरिपक्व बीज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। प्रायोगिकतौर पर देखा गया है कि प्रतिरक्षित अवस्था में रैब्डिटिस, 30 दिनों के अन्दर लगभाग 500 गुना बृद्धि करके मशरूम तन्तु (माइसीलियम) में 50 प्रतिशत की कमी कर देते है।

पदप परजीवी सूत्रकृमियों में सुई के समान भेदक पाया जाता है जिसकी सहायता से ये मशरूम तन्तु (माइसीलियम) को छिद्रित करके उस पर असन करते है। इस प्रकार ये सूत्रकृमि मशरूम अद्योग में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अत्यधिक हानि पहुँचाते है। भारत में टाइलैकिडी, एफिलैकिडी गणों के पादप परजीवी सूत्रकृमियों की निम्न प्रजातियाँ मशरूम बेड्स को हानि पहँचाते है–

(I) एफीलैंकिडस :

1–एफीलैंकिडस एगेरिसी : यह हिमाचल प्रदेश से रिर्पोट की गयी अत्यधिक रोगजनक प्रजाति है। 28 डिग्री0 से0 पर 10 सूत्रकृमि संपूर्ण माइसीलियम को नश्ट करने कि क्षमता रखते है। यह कम्पोस्ट में 12– 18 डिग्री से0 पर बहुत तीब्रता से (800 गुना) बृद्धि करता है।

2–एफीलैंकाइडस एस्ब्टीरोकाडेटस : यह दिल्ली से रिर्पोट की गई अत्यधिक रोगजनक प्रजाति है। जो कि मशरूम बेड्स को नष्ट करने की क्षमता रखती है।

3–एफीलैंकाइडस कम्पोस्टिकोला : यह प्रजाति संपूर्ण भारत व विश्व में पायी जाती है। 12–25 डिग्री0 से0 पर संपूर्ण माइसीलियम को नष्ट करने की क्षमता रखती है। यह कम्पोस्ट में बहुत तीब्रता से (110 गुना) बृद्धि करता है।

4–एफीलैंकाइडस माइनर : यह श्रीनगर (जम्मू एवम कश्मीर) से रिर्पोट की गयी प्रजाति है। इसकी रोगजनक क्षमता के बारे में जानकारी उपलब्ध नही है।

5–एफीलैंकाइडस माइसीलियोफैगस : यह प्रजाति एफीलैंकाइडस कम्पोस्टिकोला के समान व्यवहार करती है।

6–एफीलैंकाइडस निओकम्पोस्टिकोला : यह प्रजाति भी एफीलैंकाइडस कम्पोस्टिकोला के समान व्यवहार करती है। परन्तु मशरूम के प्रति कम रोगजनक है।

7–एफीलैंकाइडस सैकेरी : यह प्रजाति मशरूम माइसीलियम (सफेद बटन मशरूम) में 50– 100 प्रतिशत तक की हानि पहूँचाती है।

8–एफीलैंकाइडस स्वरूपी : यह अकारिकी में यह एफीलैंकाइडस कम्पोस्टिकोला व एफीलैंकाइडस सैकरी के समान प्रजाति है तथा (हरियाणा) में मशरूम की फसल का पूर्ण रूप से असफलता के लिए उत्तरदायी है।

9–एफीलैंकस एवेनी : यह प्रजाति मशरूम की फसल के लिए काफी अधिक हानिकारक है तथा इसके 8 सूत्रकृमि / 100 ग्राम कम्पोस्ट में 8 सप्ताह के अन्दर मशरूम माइसीलियम को पूरी तरह से नष्ट कर देते है।

(II) टाइलैंकिडस :

डिटीलैंकस माइसीलिओफैगस :इस प्रजाति के सूत्रकृमि भारत में प्रायः लगभग सभी मशरूम बेड्स में अत्यधिक मात्रा में मिलते है तथा 10–100 सूत्रकृमि 60 दिनों में मशरूम माइसीलियम को 15–70 प्रतिशत नश्ट करने की क्षमता रखते है। यह सूत्रकृमि प्रजाति कम्पोस्ट में अत्यधिक तीब्रता से बृद्धि करते है।

परभक्षी सूत्रकृमि : मोनोनकिड प्रजाति के सूत्रकृमि भी अक्सर मशरूम बेड्स में पाए जाते है परन्तु ये मशरूम की फसल के लिये प्रायः हानिकारक नहीं होते है।

सूत्रकृमि श्रोत: कम्पोस्ट तैयार करने में विभिन्न अवयव मिलाते समय तथा कभी–कभी मशरूम के बीज में भी सूत्रकृमि पहले से हो सकते है।

लक्षण : सूत्रकृमियों के आक्रमण व उपस्थिति के निम्न लक्षण होते है–

1– माइसीलियम की बृद्धि व विकास रूक जाता है

2– कम्पोमस्ट सतह का सिकुड़ जाना

3– सफेद स्पान का धीरे–धीरे भूरा हो जाना

4– स्पोरोफोर का अंकुरण धीमा हो जाना।

5– मशरुम का कम उत्पादन

6– स्पोरोफोर के उत्पादन में कमी आ जाने से मशरुम उत्पादन का रुक जाना।

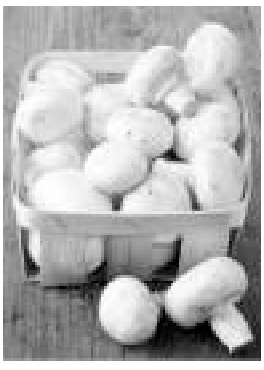

<u>सूत्रकृमि का फसल प्रबन्धन</u>

इस फसल में समेकित फसल प्रबन्धन कर पाना बहुत कठिन कार्य है। इसलिए सफल फसल प्रवन्धक ही उचित प्रकार से करना चाहिये ताकि पीड़कों को भी प्रबन्धित किया जा सकें।

मशरूम की फसल हर साल अच्छी व पीड़क रहित हो, इसके लिए उत्पादक को मशरूम नकली कम्पोस्ट, फसल के अवशेष, प्लास्टिक बैग इत्यादि को नियमानुसार उपचारित करके गड्डे

में दबा देना चाहिये। **फसल के दौरान कुछ निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी आवश्यक है।**

1. मशरूम के धर के खिड़की और दरवाजों पर जाल (14–16 प्रति से.मी.) का प्रयोग कीड़ों को अन्दर आने से रोकता है।
2. मशरूम घर के अंदर और बाहर सफाई रखें, आसपास घास फूस को न उगने दें और कूड़ा–करकट जो हवा चलने से इकठ्ठा होता है उसे साफ करवाते रहें।
3. हरेक स्टेकिंग के समय कम्पोरस्टिंग यार्ड को किसी किटाणुनाशक से अवश्य धुलवायें।
4. मशरूम का बीज/स्पान अच्छी गुणवत्ता का, भली प्रकार से भण्डारित और 1 महीने से अधिक पुराना नहीं होना चाहियें। स्पान को प्राप्त करने के उपरान्त उसे खुले स्थान पर नहीं छोड़ना चाहिये ताकि कोई कीट उस पर अण्डे ने दे दे।
5. मशरूम में जाने वाले हर व्यक्ति को अपने पैर 5 प्रतिशत फार्मोलीन के घोल में धोकर जाए। यह कीटाणुनाशक एक पिछले गड्डे में जोकि खुम्ब के घर के दरवाजे पर बनाया हो उसमें रखा जा सकता है। जिसकी लम्बाई दरवाजे के बराबर, चौड़ाई 18 इंज और गहराई 3–4 इंच रखी जा सकती है। हर व्यक्ति उसमें से दोनों पैर धोकर खुम्ब घर में जाए। उपरोक्त माप की जी.आई. शीट की एक ट्रे बनवाकर भी उसे दरवाजे के सामने दबाय जा सकता है।
6. यदि हो सके तो खुम्ब घर में घुसने के दो दरवाजे बनाये जाने चाहिये। ये दरवाजे एक दूसरे के आमने–सामने नहीं होने चाहिये। कम से कम व्यक्तियों को मशरूम घर में जाना चाहियें।
7. ठीक प्रकार से पास्चयुरीकृत कमपोस्ट व केसिंग मिश्रण उपयोग में लाए।
8. मशरूम की तुड़ाई नये या व्याधिरहित फसल से शुरू करके पुरानी फसल की तरफ करें।
9. कीड़ों की उपस्थित का भान होते ही तुरंत नियन्त्रण करें नही हो फसल को अनेक बिमारियाँ लग जायेंगी, जोकि इन कीटों द्वारा फैलती हैं। ये कीट उड़कर एक जगह से दूसरी जगह जाते है और अपने साथ माइट, सूत्रकृमि वक के स्पोरस् ले जाते है।
10. मशरूम घर की दैनिक सफाई करे और मुड़े को मशुरूम घर से दूर बाहर फेकना आवश्यक है।
11. हवा अन्दर फेंकनें वाले इनलेट्स भी जाली का प्रयोग करें।
12. दरवाजे से अन्दर आकर उसे तुरन्त बंद करें।
13. यदि फसल में या उसके कुछ हिस्से में कीटों का प्रकोप हो जाए तो उन्हे जल्द से जल्द अंतस्थ करें।
14. फलाई ट्रेप द्वारा मक्खियों की उपस्थिति का आंकलन करते रहें और ठीक समय पर नियंत्रण के कारगार उपाय करें।

शरीर में बढ़ाएं रोग प्रतिरोधक क्षमता

डॉ भावना गुप्ता
सहायक प्राध्यापक
श्री तिरूपति बालाजी महाराज डिग्री कॉलेज, इटावा, उ.प्र.

शरीर के आसपास बहुत सारे बैक्टीरिया और वायरस मौजूद रहते हैं जो कई तरह की बीमारियों से ग्रसित कर देते हैं । शरीर को संक्रमण और बीमारियों से बचाकर रखने के लिए शरीर के अंदर एक रक्षा प्रणाली होती है जिसे इम्यूनसिस्टम या रोग प्रतिरोधक शक्ति कहते हैं अगर आपकी इत्यूनिटी मजबूत है तो गंभीर बीमारी तथा संक्रमण बचे रहेंगे दिनचर्या और खानपान में बदलाव लाकर स्वस्थ रह सकते हैं तथा अपनी प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बना सकते हैं यदि आपका इम्यून सिस्टम मजबूत नहीं होगा तो आप अच्छी सेहत के मालिक होंगे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए नियमित व्यायाम करें तथा अपने शरीर को ऐसा आहार प्रदान करें जो रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हो.।

सुबह के नाश्ते को दें प्राथमिकता

रोग प्रतिरोधक्षमता को मजबूत बनाना चाहते हैं तो आप कितनी भी जल्दी में क्यों ना हो सुबह का नाश्ता जरूर करें सुबह के नाश्ते में प्रोटीन की मात्रा भरपूर होनी चाहिए सुबह के नाश्ते में उबले अंडे मौसमी ताजे फल दलिया नट्स अंकुरित अनाज फलों का रसफलों का शेख तथा लस्सी आदि सुबह के नाश्ते में शामिल करें आपकी शरीर और दिमाग को पोषण मिलेगा और साथ हीरोग प्रतिरोधकक्षमता बढ़ेगी।

वजन रखें नियंत्रित

मोटापा बहुत सी बीमारियों की वजह है मोटापे से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। धूम्रपान और शराब से परहेज करें स्वस्थ रहने के लिए बेहद जरूरी है कि धूम्रपान और शराब से परहेज करें यदि आप नियमित तौर पर शराब और धूम्रपान करते हैं तो आपकी रोग प्रतिरोधकक्षमता मजबूत नहीं होगी इम्यूनिटी मजबूत रखने के लिए अपनी आदतों पर नियंत्रण रखना चाहिए.।

यह आहार बढ़ाएंगे इम्यूनिटी पावर

➢ आहार में टमाटर जरूर शामिल करें इससे मौजूद लाइकोपीन नामक एंटी ऑक्सीडेंट सेहत

के लिए जरूरी होते हैं इसके अलावा टमाटर में विटामिन सी विटामिन के बहुत अधिक मात्रा में होता है जो इम्युनिटी पावर बढ़ाने में मददगार होता है।

- संतरा आंवला मौसमी खट्टे फल जिन विटामिन सी भरपूर मात्रा में होती है जो सक्रंमण से लड़ने वाली श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण करती है इन सभी को अपने आहार का नियमित हिस्सा बनाएं।
- हल्दी, सूखे मेवे, अंजीर, दालचीनी, शक्कर, दही, मशरूम, लहसुन, अलसी आदि भोज्य पदार्थ के सेवन से रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत किया जा सकता है।
- लहसुन में एंटी बैक्टीरियल एवं एंटी फंगलगुण होते हैं जो इंफेक्शन से लड़ने में मदद करती हैं इसमे एलिसिन नामक ऐसा तत्व पाया जाता है जो किसी भी प्रकार के संक्रमण और बैक्टीरिया से लड़ने में शक्ति प्रदान करता है और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।
- पालक में फाइबर आयरन तथा फालेट नामक तत्व पाया जाता हैं जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है ।
- 8 – 10 बादाम पानी में भिगो कर खाने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है तथा दिमाग को तनाव से लड़ने की शक्ति भी मिलती है।
- अदरक में जिंजरोलएक्टिवतत्व पाया जाता है जो संक्रमण बढ़ने की आशंका को कम करता है अदरक में एंटीमाइक्रोबियल गुण होते हैं जो ई–कोली ,कैंडिडा और सालमोनेला जैसी कई तरह के बैक्टीरिया की वृद्धि रोकने में सहायक होता है।
- इम्यूनसिस्टम को मजबूत बनाने तथा इम्यूनिटी को बढ़ाने के लिए अपने आहार में मौसमी सब्जियां तथा फलों का सेवन खूब करें तथा साथ ही खूब पानी पिए ।
- तुलसी में एंटीऑक्सीडेंट तत्व अधिक मात्रा में पाया जाता है इसकी 8–10 पत्तियां सुबह खाली पेट खाने से रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है.।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें

- शारीरिक स्वच्छता का विशेष ध्यान दें तथा अपने आस पास का वातावरण स्वच्छ रखें क्योंकि बीमारियों का एक कारण गंदगी भी होता है।
- रोजाना थोड़ी देर धूप में बैठे ताकि आपके शरीर को अल्ट्रावायलेट किरणें मिले धूप विटामिन डी का अच्छा स्रोत होता है जिससे शरीर की हड्डियां मजबूत होती हैं तथा प्रतिरक्षा प्रणाली को भी दुरुस्त करती हैं।

अलसी के औषधीय गुण

कोमल यादव

शोधकर्ता

अलसी में एन्जी आक्सीडेन्ट और एन्टी इनफ्लामेन्टरी गुण पाये जाते है। जो हमारी रोग प्रतिरोधक को बढ़ाते हैं। अलसी फाइबर व ओमेगा–3 फैटी ऐसिड से युक्त होता है जो हमें संक्रमण से बचाता है और स्वस्थ रहने में मदद करता है।

- अलसी पाउडर एक चम्मच सुबह खाली पेट गुनगुने पाने के साथ लेने से शरीर डेस्कटोज हो जाता है। दो सप्ताह तक सेवन करें।
- दही में अलसी मिलाकर खा सकते हैं। अलसी के बीज हलका घोलकर सेवन करना चाहिए तथा अलसी के बीज को भूंजकर मिलाकर पीने से फायदा होता है। इससे सुगर कन्ट्रोल रहती है, तथा अथराइटिस, हाई ब्लडप्रेशर तथा पेट के रोगों में आराम मिलता है।
- दो कफ पानी में दो चम्मच अलसी डालकर उबालें। जब पानी आधा हो जाये तो उसे छान लें और सुबह खाली पेट गुनगुना पियें जिससे हाईपर थाईराइड और हाईपोथाइराइड दोनों प्रकार के थाइराइड रोग में फायदा करता है।
- अलसी के बीज गर्म पानी में उबालकर और इसमें एक तिहाई मुलेठी का चूर्ण मिलाकर काढ़ा बनाकर पीने से खूनी दस्त और मूत्र सम्बन्धित रोगों में आराम मिलता है।
- गले मे खरास होने पर अलसी एक अच्छा घरेलू उपाय है। एक कफ पानी में दो से तीन चम्मच अलसी के बीज का उबाले जब गाढ़ा हो जाये जब इसे छान लें। इसमें थोड़ा सा नीबू व शहद मिलाकर सेवन करें। इसके सेवन से गले की खरास में आराम मिलेगा।
- एक से दो चम्मच अलसी पाउडर का सेवन करें। इससे कोल्स्ट्राल काफी हद तक कम होता है और एनर्जी भी मिलती है।
- माइल्ड मेनोपाज की समस्या में स्त्रियों को लगभग रोजाना 40 ग्राम अलसी का सेवन करने से आराम मिलता है।
- फोड़े–फुन्सी की समस्या को दूर करने के लिये अलसी के लेप का प्रयोग कर सकते हैं। अलसी के बीज थोड़े या बराबर मात्रा में सरसों का तेल के साथ पीसकर लेप बनाकर लगायें। कुछ हद तक आराम मिलेगा।
- अलसी के तेल का प्रयोग एक त्वचा सम्बन्धित बीमारी में किया जाता है जिससे आराम मिलता है।

नोट–एक दिन में 40 ग्राम (2 टेबल स्पून) से ज्यादा अलसी का सेवन न करें।

प्लास्टिक कल्चर : बागवानी के लिए वरदान

संदीप सिंह एवं आशीष कुमार पाल
छात्र, शुआट्स, नैनी प्रयागराज, उ.प्र. एवं शोध छात्र, उद्यान विभाग, रायबरेली, उ.प्र.

हमारा जीवन चारो ओर प्लास्टिक के उपयोग से घिरा हुआ है और इसको उपयोग तेजी से बढ़ता ही जा रहा है। और 2022 तक वार्षिक उत्पादन 500 मिलियन टन से अधिक होने की संभावना है अतः यह स्पष्ट है कि प्लास्टिक कई समाजिक लाभ लाता है और भविष्य के तकनीकी और बागवानी में अग्रिम प्रदान करता है। वर्तमान में कृषकों द्वारा बहुतायत से इसका उपयोग किया जा रहा है और अच्छी पैदावार लेने के लिए प्लास्टिक सामग्रियों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। और दुनिया भर में फल, सब्जियों, मसाले, फूल प्लान्टेसन, फसलो के उत्पादन के लिए उपयोग किया जा रहा है।

वैसे तो प्लास्टिक सामग्रियों का परिचय 1940 के दशक में ई. एम. एक्ट द्वारा विकसित किया गया था जो एक बागवानी के वैज्ञानिक थे जिनकों प्लास्टिक ग्रीन हाउस का पिता भी कहते है। भारत में प्लास्टिक का उपयोग 1981 के बाद खेती में होने लगा। इस प्रकार कृषि और बागवानी में प्लास्टिक का उपयोग किया जाने लगा।

सुदूर उत्तर भारत व पूर्वी भारत के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र जैसे श्रीनगर लेह, लद्दाख, शिलॉग, कश्मीर, तथा हिमाचल प्रदेश जैसे क्षेत्रों में साग–सब्जियों, फलोत्पादन एवं फूल उत्पादन प्लास्टिक की मदद सें ही संभव हो पाया है। और तो और इसके प्रयोग से रेगिस्तान जैसें क्षेत्रो में जहाँ पानी की बहुत कमी रहती है। प्लास्टिक के चलते वहॉ के किसान न केवल साग सब्जियो एवं फल फूलों के उत्पादन की व्यवसायिक खेती कर रहे हैं।

बागवानी में प्लास्टिक का उपयोग कई रूपो में होता है। जैसे नर्सरी सामग्री (प्लास्टिक बैग, प्लास्टिक ट्रे हजारा(रोज केन)), सिंचाई के उपकरणों में (एच॰ डी॰ पी॰ ई॰ पाइप, एल॰ डी॰ पी॰ ई॰ पाइप, सिंचाई सिस्टम) विभिन्न प्रकार के हाउस (पॉली हाउस, पॉली टनेल, शेड हाउस नेट हाउस) में तथा प्लास्टिक मल्च के तौर पर किया जाता है। वर्तामान में प्लास्टिक का इस्तेमाल बागवानी की पैदावार और आय बढ़ाने के लिए अधिक मांग की जाने वाली तकनीक है। यह अधिक महत्वपूर्ण भी है क्योकि बागवानी कृषि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (जी॰डी॰पी॰) में 30 प्रतिशत का योगदान देती है। जबकि देश की 70 प्रतिशत सीधे या परोक्ष रूप से कृषि या बागवानी पर निर्भर है।

बागवानी प्लास्टिक का मुख्य उपयोग जल प्रबंधन में होता है। क्योंकि बागवानी की फसलों से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए पूरे वर्ष पानी की आवश्यकता पड़ती है। वैज्ञानिक तकनीकी अर्थात् सूक्ष्म सिंचाई के द्वारा इस आवश्यकता को हम भली भाँति पूरा कर सकते हैं। प्लास्टिक की खेती द्वारा हम पानी की बर्बादी में कमी, प्रदूषण की रोकथाम, बीमारियों में कमी और मिट्टी के कटाव को कम किया जा सकता है। प्लास्टिक के प्रभावी उपयोग से बागवानी उत्पादन को भी बढ़ाया जा सकता है वैज्ञानिक तकनीकों का इस्तेमाल करके हम कम से कम पानी का उपयोग करके कम जमींन पर 2 से 3 गुना अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है। आधुनिक जगत में प्लास्टिक का उपयोग हर क्षेत्र में तेजी बढ़ रहा है। ऐसे में बागवानी का क्षेत्र कैसे अछूता रह सकता है।

बागवानी कार्यों प्लास्टिक का प्रयोगः

प्लास्टिक मल्च : प्लास्टिक कल्चर के कई फायदों के बावजूद विषेश रूप से प्लास्टिक मल्च हमारे खाद्य प्रणाली और बागवानी में प्लास्टिक के प्रवेश का एक संभावित स्रोत है। बागवानी में स्ट्राबेरी के खेती के लिए जमींन पर उठी हुई क्यांरिया बनाकर उस पर प्लास्टिक की काली, सफेद, लाल या चांदी रंग वाली परत बिछा दी जाती है। इसे प्लास्टिक मल्च कहते है। आमतौर पर 25 माइक्रोन मोटाई वाली प्लास्टिक पॉलीथीन ही मल्च के लिए उपयोग की जाती है। इससे मिट्टी में नमीं ज्यादा समय तक बनी रहती है और खरपत वार भी कम उगते हैं। इससे और भी एक लाभ यह है कि निराई गुड़ाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस प्रकार समय तथा धन की बचत होती है।

नर्सरी सामग्री (प्लास्टिक थैलियां एवं प्लास्टिक ट्रे)– बागवानी फसलों की नर्सरी तैयार करते समय फल एवं सब्जियों के लिए 15 से 20 सेंटीमीटर व फलों के लिए 20 से 25 सेंटीमीटर की थैलियां प्रयोग में लाई जाती है। साथ ही साथ नर्सरी लगाने प्लास्टिक ट्रे का उपयोग फूलों की नर्सरी तथा साख सब्जियों के लगाने में किया जाता है।

सिंचाई के क्षेत्र में– पानी का स्तर दिन व दिन गिरता जा रहा है। अनियमित वर्षा की मार झेल रहा किसान हर तरह से हतास हो चुका है। ऐसे में बागवानी भी इससे अछूती नही है। बागवानी की फसलों को पूरे वर्ष पानी की आवश्यकता पड़ती है और ऐसे में पानी का बेकार बह जाना इस समस्या को और भी जटिल बना देता है। प्लास्टिक तकनीकी के अन्तर्गत हाई डेनसिटी पॉली इथालीन पॉलीमर (एच.डी.पी.ई.) एवं लो डेनसिटी पॉली इथालीन (एल.डी.पी.ई.) पाइपों का इस्तेमाल कर कई तरीकों से सिंचाई की जा सकती है और पानी की बचत के साथ साथ धन की बचत कर सकते है।

फव्वारा विधि सिंचाई– इस विधि में पौधों को पानी बारिश के रूप में एक फव्वारा की सहायता से दिया जाता है। इस विधि का उपयोग ऊचीं नीची जमीनों पर औसानी से करके खेती की जा सकती है। खुली की सिंचाई के अपेक्षा फव्वारा विधि से 40 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

बूंद–बूंद सिंचाई (टपक सिंचाई)– टपकन सिंचाई एक प्रकार की सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली है जो पानी को पौधों की जड़ो तक धीरे–धीरे पंहुचाती है। यह विधि पानी और पोषक तत्वों की बचाने में सक्षम है। इस विधि में पानी का स्रोत (ट्यूबेल प्लास्टिक या सीमेंट का टैंक) से एक मोटी मुख्य पाइप जुड़ी रहती है। और इससे उप मुख्य पाइप लाइन निकलती है उसे लेटरल कहते है। जो पूरे खेत में बिछी रहती है और इन पर बारीक छिद्र कुछ कुछ दूरी पर रहते है, जिन्हे ड्रिपर्स कहते हैं। जहाँ से पानी बूंद–बूंद के रूप में निकलता है जो पौधों की जड़ो के आस पास की जमींन को गीला रखता है। फलों के बगीचों में जहां पेड़ से पेड़ की दूरी एक मीटर से ज्यादा होती है वहा ऑनलाइन ड्रिपर्स लगाये जाते है और जहां एक मीटर से कम दूरी हो वहां इन लाइन ड्रिपर्स लगाये जाते है इस विधि में 60 से 70 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

सूक्ष्म सिंचाई विधि– इसे स्थानिये सिंचाई, कम मात्रा सिंचाई, ट्रिकल सिंचाई कहा जाता है। यह एक ऐसी प्रणाली है जहां पानी को पाइप नेटवर्क की माध्यम से कम दबाव में वितरित किया जाता है और पानी को पौधों की जड़ो तक पहुंचाया जाता है।

फर्टिगेशन– पानी के साथ–साथ खाद या रासायनिक उर्वरकों को मिलाकर टपकन सिंचाई द्वारा पौधों की जड़ो तक उनकी आवश्यकता के अनुसार देना फर्टिगेशन कहलाता है। इसमें टपकन सिंचाई के अलावा उर्वरक टैंक का प्रयोग किया जाता है।

पॉली हाउस– यह एक लोहे के पाइपों से बना एक ऐसा ढाँचा होता है जो एक पारदर्शी पॉलीथीन से ढ़का रहता है। जिससे सूर्य की किरणें अन्दर आ सकती हैं। जो पौधों के प्रकाश संश्लेषण क्रिया के लिए उपयुक्त होती है। पॉली हाउस का प्रयोग फूलों की खेती, सब्जियों की खेती तथा कुछ फलों (स्ट्राबेरी तथा गूजबेरी) के लिए किया जाता है।

प्लास्टिक कल्चर के लाभ:

1. सर्दियों में मृदा का तापमान बहुत कम रहता है। प्लास्टिक मल्च का प्रयोग कर मृदा के तापमान में वृध्दि की जा सकती है काली पॉलीथीन मल्च से मृदा के तापमान में 4 से 5 डिग्री फारनेहाइट तक वृध्दि की जा सकती है।

2. प्लास्टिक मल्च की नीचे की मिट्टी सदैव मुलायम भुरभरी रहती है जिससे अच्छी तरह ऑक्सीजन तथा माइक्रोबियल गतिविधि बनी रहती है।

3. फव्वारा विधि और फर्टिगेशन से सिंचाई और उर्वरक देने से पानी तथा उर्वरक की बर्बादी नहीं होती है। और पौधे ज्यादा से ज्यादा पानी तथा उर्वरक का उपयोग कर पाते हैं।

4\. प्लास्टिक मल्च से पानी का वाष्पीकरण कम होता है।

5. प्लास्टिक मल्च करने से खरपतवार नहीं पनपते जिससे पौधों का विकास अच्छा होता है।

तुलसी–एक चमत्कारी पौधा

शैलजा पाण्डेय
छात्रा (एम.एस.सी.) वनस्पति विज्ञान
हेमवती नन्दन बहुगुणा पी0जी0
कॉलेज, नैनी, प्रयागराज, उ.प्र.

पूरे भारत वर्ष मे तुलसी का पौधा अपने औषधीय एवं आध्यात्मिक तथ्यो के कारण अति लोकप्रिय है। तुलसी का वनस्पति नाम **ऑसिमम सैक्टम** है। यह **लैमिएसी** कुल का पौधा है। यह द्विबीजपत्री, शाकीय, एवं औषधीय पौधा है। तुलसी का पौधा झाड़ी के रूप मे उगता है,जिसकी उँचाई 1.3 फुट होती है।हिन्दू धर्म मे तुलसी को अति पवित्र पौधा माना जाता है और यह औषधि का एक अच्छा स्रोत है। तुलसी की पत्तियो मे संक्रामक रोगो को रोकने की अद्भुत शक्ति होती है। हिन्दू घरो के आँगन मे तुलसी का पौधा होना अत्यन्त शुभ माना जाता है।संस्कृत भाषा मे तो तुलसी को **हरिप्रिया** की संज्ञा दी गयी है।

❖ **तुलसी के पौधे की आयु** –

पौधे की औसत आयु 23 वर्ष तक होती है। इसके बाद इसकी वृध्दावस्था आ जाती है, पत्ते कम व छोटे हो जाते है और शाखाये सूख जाती है।

❖ **तुलसी की प्रजातियॉ**–

तुलसी की मुख्यतः दो प्रधान प्रजातियॉ है– श्री तुलसी और कृष्णातुलसी। श्री तुलसी की पत्तियॉ हरे रंग की होती है जबकी कृष्णा तुलसी की पत्तियॉ बैंगनी रंग की होती है।

❖ **तुलसी के पौधे का बाह्य स्वरूप** –

- तुलसी एक शाखायुक्त, शाकीय एवं सुगन्धित पौधा है।
- इसकी पत्तियॉ साधारण,अण्डाकार एवं एक–दूसरे के विपरीत कोण पर होती है।
- फूल छोटे एवं बैंगनी रंग के होते है।
- पौधे की लम्बाई 1 से 3 फुट की होती है।

❖ **तुलसी का रासायनिक संघठन**–

तुलसी मे अनेक जैव सक्रिय रसायन उपस्थित रहते है। इनमे से **टैफीन, सैवोनिन,**

ग्लाइकोसाइड्स, एल्केलाइड्स और लिनोलिक अम्ल प्रमुख है। इसके अतिरिक्त तुलसी मे **यूजेनॉल** नामक कार्बनिक यौगिक होता है जिसके प्रभाव से मक्खी,मच्छर और कीड़े भाग जाते है।

❖ तुलसी की खेती–

वर्तमान समय मे अनेको कॉस्मेटिक प्रोडक्ट्स एवं औषधियो का निर्माण तुलसी द्वारा किया जा रहा है, जिससे तुलसी के उत्पादन की माँग काफी बढ़ गयी है। अतः इस माँग की पूर्ति के लिए तुलसी की खेती करना अनिवार्य हो गया है।तथा इसकी सफल खेती हेतु निम्न बिन्दुओ पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए–

1 मृदा –तुलसी की अच्छी पैदावार के लिए बलुई दोमट मिट्टी अति उपयुक्त है। मिट्टी का पी.एच 6 से 8 के बीच होना चाहिए। खेती करने से पूर्व किसानो द्वारा मृदा परीक्षण अनिवार्य रूप से करवाना चाहिए।

2 जलवायु – तुलसी की खेती के लिए औसत 140 से 300 डिग्री सेल्सियस तापमान,तथा उच्च वर्षा और नम स्थिति की आवश्यकता होती है।

3 भूमि तैयार करना – खेत की अच्छी तरह जोताई करके क्यारियॉ तैयार कर लेना चाहिए तथा खाद के रूप मे केवल गोबर खाद या वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए।

4 बुवाई करना – तुलसी की खेती बीज द्वारा की जाती है परन्तु इसके बीज को सीधे खेत मे नही बोया जाता पहले इसकी नर्सरी तैयार की जाती है बाद मे खेत मे इसकी रोपाई की जाती है।

➢ नर्सरी तैयार करना –

- जमीन की 15 सेमी0 से 20 सेमी0 की खुदाई करके, खरपतवार निकालकर इसमे 15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी खाद मिलाना चाहिए।
- जमीन की सतह से 1 मी0 उभरी हुई क्यारियो का निर्माण कर लेना चाहिए।
- तुलसी के बीज आकार मे बहुत छोटे होते है इसलिए इनकी बुवाई सदैव लकड़ी या रेत के मिश्रण के साथ करना चाहिए।
- 750 ग्राम बीज 1 हेक्टेयर के लिए पर्याप्त है।
- बीजो की बुवाई करते समय ध्यान देना चाहिए कि बीज क्यारियो मे एक–दूसरे से 8 से 10 सेमी. की दूरी पर हो।

➢ रोपाई करना –

- 5 से 7 सप्ता मे तुलसी का पौधा रोपाई के लिए तैयार हो जाता है।

- पहाड़ी क्षेत्रो मे तुलसी के पौधो की रोपाई जुलाई से अगस्त माह मे तथा समतल क्षेत्रो मे अक्टूबर से नवम्बर माह के बीच करना चाहिए।
- रोपाई के तुरन्त बाद खेत की सिंचाई करना चाहिए।

5 निराई और गुड़ाई–

तुलसी के पौधे की निराई – गुड़ाई , पौधे की रोपाई के पश्चात् 2 बार मे की जाती है।

पहली बार– पौधे की रोपाई के 1 माह बाद

दूसरी बार– पहली निराई – गुड़ाई के 3 से 14 सप्ताह बाद

6 कटाई– तुलसी का पौधा रोपाई के 10 से 12 सप्ताह बाद ही कटाई के लिए तैयार हो जाता है। पौधे की शाखा को जमीन से 15 से 20 सेमी0 ऊपर से काटना चाहिए ताकि शाखाओ को काटने के बाद बचे हुए तने से पुनः शाखाये विकसित हो जाये।

❖ **तुलसी कीपैदावार** –

तुलसी की खेती से हमे फसल तुलसी की पत्ती तथा तुलसी के तेल के रूप मे प्राप्त होती है–

- तुलसी की पत्ती की पैदावार– 20 से 25 टन प्रति हेक्टेयर
- तुलसी के तेल की पैदावार– 80 किलोग्राम से 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

❖ **तुलसी और उसका धार्मिक परिवेश** –

जिस घर मे तुलसी का वास होता है वहॉ आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ सुख–शान्ति एवं आर्थिक समृध्दता स्वतः आ जाती है। तुलसी की पूजा से मन मे एकाग्रता आती है। ऐसा विश्वास है कि– तुलसी की जड़ मे सभी तीर्थ, मध्य भाग मे सभी देवी–देवता, एवं ऊपरी शाखाओ मे सभी प्रकार के वेदो का वास होता है। पौराणिक कथाओ मे ऐसा वर्णन है कि–समुद्र–मंथन के समय जो अमृत धरती पर छलका उसी से तुलसी की उत्पत्ति हुई। हिन्दू धर्म मे तो कार्तिक के महीने मे तुलसी जी की विशेष पूजा अर्चना और दीपदान का विशेष विधान है। तथा देव–उठानी एकादशी को विष्णु भगवान का तुलसी जी के साथ विवाह का अवर्णनीय महात्मय है।

❖ **तुलसी के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण** –

तुलसी एक मात्र ऐसा पौधा है जो दिन के **20 घण्टे ऑक्सीजन देने के साथ ही साथ कार्बन मोनो ऑक्साइड, कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड जैसे जहरीले**

गैसो को अवशोषित कर लेता है तथा हानिकारक पराबैंगनी किरणो से हमारी रक्षा भी करता है। यह एक **'नेचुरल एयर प्यूरीफॉयर'** भी है। तुलसी के नियमित सेवन से शरीर मे उर्जा का संचार बढ़ता है और आयु लम्बी होती है।

❖ तुलसी का आर्थिक महत्व –

तुलसी सर्वव्यापक, सर्वसुलभ एवं सर्वदोषनिवारक औषधीय गुणो से भरपूर पौधा है। अतः तुलसी की सफल खेती द्वारा किसान अपना आर्थिक विकास निश्चित रूप से कर सकते है। हम अपने दैनिक जीवन की क्रिया–कलापो मे तुलसी का उपयोग किसी न किसी रूप मे अवश्य रूप से करते है–

- औषधि के रूप मे
- तुलसी का प्रयोग चाय के रूप मे
- विभिन्न प्रकार के हर्बल सौन्दर्य–प्रसाधन मे
- तुलसी द्वारा निर्मित ऑर्गेनिक खाद सभी प्रकार की फसलो की अच्छी पैदावार मे सहायक है।
- तुलसी की माला का प्रयोग जाप करने, भगवान का भोग लगाने एवं पूजा–पाठ मे किया जाता है।

❖ तुलसी के औषधीय गुण –

आयुर्वेद मे तुलसी के सभी भाग को स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है। तुलसी की पत्ती, बीज, जड़, तना एवं तुलसी के तेल सभी से किसी न किसी प्रकार की औषधि प्राप्त होती है तथा **ऐलोपैथी, होम्योपैथी** और यूनानी सभी मे इसका प्रयोग किया जाता है।

- तुलसी मे **एण्टीऑक्सीडेण्ट**के गुण पाये जाते है जो शरीर की मृत कोशिकाओ को ठीक करने मे मदद करते है।
- तुलसी द्वारा निर्मित औषधि सर्दी–जुखाम खॉसी मे,कान से सम्बन्धित बीमारी मे,पथरी के उपचार मे,पाचन–शक्ति को बढ़ाने मे,सूगर लेवल को कम करने मे,तथा दाँत के दर्द को कम करने मे लाभदायक है।
- कैंसर की बीमारी के उपचार मे तुलसी का प्रभावशाली रूप है।
- तुलसी त्वचा से सम्बन्धित रोगो के उपचार मे लाभदायक है।

आम की फसल में कीट एवं रोग नियंत्रण

ऋषि कुमार सिंह[1], हरेश प्रताप सिंह[2], आलोक कुमार सिंह[1], रमेश प्रताप सिंह[1], अभय कुमार सिंह[1] अरविंद प्रताप सिंह[1] एवं डा. रमेश प्रताप सिंह[1]

[1]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

[2]चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कल्यानपुर, कानपुर

भारतवर्ष का सर्वसुलभ एवं लगभग प्रत्येक प्रान्त में सरलता से उगाया जाने वाला फल आम है। इसके स्वाद, सुगन्ध एवं रंग–रूप के कारण इसे फलों का राजा कहा जाता है। आम के पके हुये फल स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। ताज़े पके फल के उपयोग के अतिरिक्त आम के फलों से अनेक परिरक्षित पदार्थ बनाये जाते हैं, जैसे –कच्चे फलों से अचार, अमचूर तथा पके फलो से स्क्वैश, जूस, शर्बत, जैम, अमावट आदि। अधिकतम आय के लिये आम के बागीचे वैज्ञानिक तकनीकी के प्रयोग से करें । आम की फसल की बागवानी के लिये अच्छी जलधारण क्षमता वाली गहरी, बलुई, दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। गहरी काली मिट्टी इसके लिये अनुपयुक्त होती है । भूमि का पी. एच. मान 5.5 से 7.5 होना चाहिये तथा गहराई कम से कम 1 से 1.5 मीटर होनी चाहिये ।आम उष्ण जलवायु वाला पौधा है। यह सरलतापूर्वक समुद्र सतह से 1100 मी. तक की ऊँचाई पर उगाया जा सकता है। आम के लिये 24 से.ग्रे. से 37 से.ग्रे. का तापमान अच्छा होता है। फूल आने के समय अधिक आर्दता, वर्षा एवं पाला, आम के लिये उपयुक्त नहीं है। फल वृद्धि के समय अधिक तापक्रम फल की गुणवत्ता के लिये अच्छा होता है।

भुनगा कीट – आम के गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिये समसामयिक महत्व के कीट एवं रोगो का उचित प्रबन्धन समय से किया जाना अति आवश्यक है। बौर निकलने से लेकर फल लगने तक की अवस्था अत्यन्त म्हत्वपूर्ण होती है। वर्तमान में बागवानो को मुख्य रूप से भुनगा कीट पौधो कोनुकसान पहुचने की सम्भावना रहती है। आम के बागो में भुनगा कीट के शिशु एवं वयस्क दोनो ही मुलायम प्ररोहो कोमल पत्तियों एवं फूलो का रस चूसकर नुकसान करते है । इसके प्रभाव से फल सूख कर गिरने लगते है । साथ ही यह कीट मधु की तरह चिपचिपा पदार्थ भी निकलता है जिससे पत्तियों पर काले रंग की फंफूदी जम जाती है। फलस्वरूप पत्तियों द्वारा ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया निसक्री पड जाती है तथा जाला बनाने वाला कीट लीफ वेबर की सूंडिया बना लेती है।

इसके अन्दर ही अन्दर सुडिया डण्टल को छोडकर पत्ती का सारा भाग खा जाती है |इसके प्रभाव से टहनियां सूखने लगती है ।

बचाव – भुनगा कीट से बचाव हेतु घने बागों की कटाई–छटाई व हरी गुडाई करके साफ सुथरा रखना चाहिए। कीटो के अधिक प्रकोप की स्थिति में मोनोक्रोटोफास या क्यूनालनफांस 2.0 मिली प्रति लीटर या क्लोरोपाइीफांस 2.0 मिली प्रति लीटर प्रति लीटर अथवा कोर्बेरिल 3.0 ग्राम प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर छिडकाव करने की बागवानो को सलाह दी जाती है।

गुझिया कीट– आम के पेड़ से गुझिया कीट की मादा पोधों के तनों के पास भूमि मे अंडे देती है जिससे जनवरी दृफरवरी में शिशु निकालकर पेड़ों पर चढ़ना शुरू कर देते हें। इस कीट के लार्वा और वयस्क बौर एवं फलो के वृंद से रस चूसते हैद्य तीब्र प्रकोप की दशा में प्ररोह एवं बौर सूख जाते है तथा प्रारंभिक अवस्था में फल भी सूख कर झड जाते हैद्य यह कीट मधुश्राव भी करता है जिसपर कलि फफूंद उग आती है।

बचाव – गुजिया को पेड़ पर चढ़ने से रोकने के लिए दिसंबर के अंतिम सप्ताह में ताने के चारों ओर 25 सेमी चौड़ी 400 गेज पोलीथीन की पट्टी धरती से 1.5–2.0फीट की ऊँचाई पर सुतली से बांध देनी चाहिए एवं निचले सिरे पर ग्रीस लगा देनी चाहिए। अन्डों से निकले गुजिया की रोकथाम के लिए मेलाथियान 5 प्रतिशत रसायन की 250 ग्राम प्रति पेड़ के हिसाब से तने के चारों ओर बुरकाव कर खुरपी से मिट्टी में मिलाना चाहिए द्ययदि किसी कारणवश गुजिया पेड़ पर चढ़ गया हो तो ऐसी अवस्था में कुनोल्फास 25 प्रतिशत इसी २ मिली अथवा मोनोक्रोटोफोस 36 प्रतिशत एस एल 1.5 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिडकाव करें।

ताना छेदक – आम के पेड़ में इस कीट की सुडी मुख्य तनों एवं मोटी शाखाओं में नीचे से ऊपर तक छेद कर देती है ।जिसके फल स्वरूप तने तथा मोटी शाखाये सूख जाती हें ।

बचाव – इस कीट से बचने के लिय पेड़ पर लगे जालों को साफ कर ले तथा उसमें पतले तार द्वारा मिट्टी के तेल या डीजल में कपड़े को भिगोकर अंदर डाले उसके बाद गीली मिट्टी के लेप से बंद कर दे। यदि छेद पुनः दिखाई दे तो पुनः उक्त विधि का उपयोग करें।

शाखा छेदक – आम के पौधे मे तना छेदक कीट की सूड़ी पेड़ की शाखाओं से ऊपर से नीचे की तरफ छेद करते हें जिससे प्रभावित टहनियाँ सूख जाती हें ।

बचाव – इस कीट की रोकथाम के लिए प्रभावित शाखाओं को कट कर जला दे तथा नवंबर – दिसंबर माह में गहरी जुताई कर दे। अधिक प्रकोप होने पर 0.05 प्रतिशत क्यूनालफास या 0.24 प्रतिशत काबेरिल को जुलाई के अंतिम सप्ताह मे छिड़काव करे ।

आम पर लगने वाले रोग

1. सफेद चूर्णी रोग (पाउडरी मिल्ड्यू)

बौर आने की अवस्था में यदि मौसम बदली वाला हो या बरसात हो रही हो तो यह बीमारी प्रायः लग जाती है। इस बीमारी के प्रभाव से रोगग्रस्त भाग सफेद दिखाई पड़ने लगता है। अंततः मंजरियाँ और फूल सूखकर गिर जाते हैं।

रोकथामः

इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही आम के पेड़ों पर 5 प्रतिशत वाले गंधक के घोल का छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त 500 लीटर पानी में 250 ग्राम कैराथेन घोलकर छिड़काव करने से भी बीमारी पर नियंत्रण पाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में बौर आने के समय मौसम असामान्य रहा हो वहां हर हालत में सुरक्षात्मक उपाय के आधार पर 0.2 प्रतिशत वाले गंधक के घोल का छिड़काव करें एवं आवश्यकतानुसार दोहराए।

2. कालवूणा (एन्थ्रेक्नोस)

यह बीमारी अधिक नमी वाले क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है। इसका आक्रमण पौधों के पत्तों, शाखाओं, और फूलों जैसे मुलायम भागों पर अधिक होता है। प्रभावित हिस्सों में गहरे भूरे रंग के धब्बे आ जाते हैं।

रोकथामः

0.2 प्रतिशत जिनैब या 4:4:50 बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें। जिन खेत्रों में इस रोग की सम्भावना अधिक हो वहां सुरक्षा के तौर पर शुकियाँ विकसित होने से पहले ही उपरोक्त घोल का छिड़काव करें।

3. ब्लैक टिप (कोएलिया रोग) रोग

यह रोग ईंट के भट्ठो के आसपास के क्षेत्रो में उससे निकलने वाली गैस सल्फर डाई ऑक्साइड के कारण होता है। इस बीमारी में सबसे पहले फल का अग्रभाग काला पड़ने लगता है इसके बाद उपरी हिस्सा पीला पड़ता है। तत्पश्चात गहरा भूरा और अंत में काला हो जाता है। यह रोग दशहरी किस्म में अधिक होता है।

रोकथामः

इस रोग से फसल बचाने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि ईंट के भट्ठों की चिमनी आम के पूरे मौसम के दौरान लगभग 50 फुट ऊँची रखी जाए। इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही बोरेक्स 10 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से बने घोल का छिडकाव करें। फलों के बढ़वार की विभिन्न अवस्थाओं के

दौरान आम के पेडों पर 0.6 प्रतिशत बोरेक्स के दो छिड़काव फूल आने से पहले तथा तीसरा फूल बनने के बाद छिड़काव करें। जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाय तो 15 दिन के अंतराल पर तीन छिडकाव करना चाहिए।

4. गुच्छा / गुम्मा रोग (माल्फार्मेशन)

इस बीमारी का मुख्य लक्षण यह है कि इसमें पूरा बौर नपुंसक फूलों का एक ठोस गुच्छा बन जाता है।

रोकथाम:

बीमारी का नियंत्रण प्रभावित बौर और शाखाओं को तोड़कर किया जा सकता है। अक्तूबर माह में 200 प्रति दस लक्षांश वाले नेप्थालिन एसिटिक एसिड का छिड़काव करना और कलियाँ आने की अवस्था में जनवरी के महीने में पेड़ के बौर तोड़ देना भी लाभदायक रहता है क्योंकि इससे न केवल आम की उपज बढ़ जाती है अपितु इस बीमारी के आगे फैलने की संभावना भी कम हो जाती है ।

5. पत्तों का जलना

उत्तर भारत में आम के कुछ बागों में पोटेशियम की कमी से एवं क्लोराइड की अधिकता से पत्तों के जलने की गंभीर समस्या है। इस रोग से ग्रसित वृक्ष के पुराने पत्ते दूर से ही जले हुए जैसे दिखाई देते हैं।

रोकथाम:

इस समस्या से फसल को बचाने हेतु पौधों पर 5 प्रतिशत पोटेशियम सल्फेट के छिड़काव की सिफारिश की जाती है। यह छिड़काव उसी समय करें जब पौधों पर नई पत्तियां आ रही हों । ऐसे बागों में पोटेशियम क्लोराइड उर्वरक प्रयोग न करने की सलाह भी दी जाती है। 0.1 प्रतिशत मेलथिओन का छिड़काव भी प्रभावी होता है।

6. डाई बैक

इस रोग में आम की टहनी ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है और धीरे–धीरे पूरा पेड़ सूख जाता है। यह फफूंद जनित रोग होता है, जिससे तने की जलवाहिनी में भूरापन आ जाता है और वाहिनी सूख जाती है एवं जल ऊपर नहीं चढ़ पाता है।

रोकथाम:

इसके रोकथाम के लिए रोग ग्रसित टहनियों के सूखे भाग से 15 सेमी नीचे से काट कर जला दें। कटे स्थान पर बोर्डो पेस्ट लगाये तथा अक्टूबर माह में कापर ऑक्सीकलोराइड का 0.3 प्रतिशत घोल का छिडकाव करें।

पलाश के फूलो से सजता बुन्देलखण्ड का ताज

संदीप सिंह

शोध छात्र, उद्यान विभाग, शुआटस, प्रयागराज, (उ0प्र0)

पलाश का नाम सुनते ही कई लोग तो सोचने लगते है कि ये कौन सा नया फूल आ गया। क्योकि ये पुष्प ज्यादातर उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में ही पाया जाता है। इस फूल का विस्तार चित्रकूट, मानिकपुर, बाँदा, महोबा व मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रो मे बहुताया से पाया जाता है।

इसे परसा, ढॉक, टेसू, किशक, सुपका, बृहमवृक्ष और फ्लेम ऑफ फोरेस्ट के नाम से भी जाना जाता है। उत्तर प्रदेश सरकार ने इसे अपना राजकीय पुष्प भी रखा है और इसे बुन्देलखण्ड का गौरव भी कहते है। गाँव में तो इसकी एक कहावत भी प्रसिद्व है। ''ढाक के तीन पात'' इस फूल का एक छोटा सा दुर्भाग्य यह है कि इसमें अधिक सुगन्ध नहीं होती लेकिन फिर भी यह रंग–रूप और अपने आर्युवेदिक गुणों से लोगों का मन मोह लेता है।

बसंत से भाुरू हो जाता है पलाश का फूलना

''वन और मन अंगार हुआ खिले जब फूल पलाश क'' गीत की पत्तियॉ यहॉ के पलाश वन क्षेत्र चरितार्थ हो रही है। बसंत ऋतु में इनका फूलना शरू हो जाता है। बंसत पंचमी के बाद फागुन आते ही एक बार फिर से बुन्देलखण्ड मे टेसू के रंग और रूप की चर्चाए होने लगी है। कहा जाता है कि ऋतुराज बंसत का आगमन पलाश के बगैर पूर्ण नहीं होता, अर्थात इसके बिना बसंत का श्रृंगार नहीं होता है।

चॉदी से भी कीमती है इस वृक्ष के सभी भाग, विभिन्न रासायनिक गुण होने के कारण यह वृक्ष आयुर्वेद के लिए विशेष उपयोगी हैं। इसके गोंद, पत्ता, पुष्प, जड़ सभी औशधियों गुणो से परिपूर्ण है। इसीलिए इसका पुष्प उत्तर प्रदेश सरकार का राजकीय पुष्प भी कहलाता है। यह पुष्प अपने औषधी गुण के कारण भारतीय डाक टिकट पर भी शोभायमान हो चुका है।

अन्य गुण

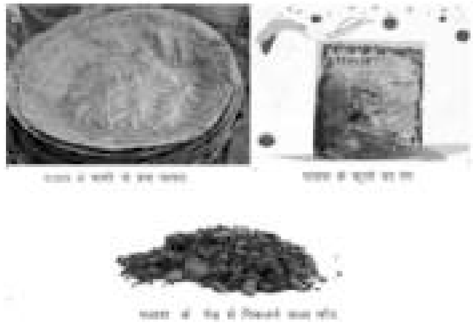

1. पलाश के पत्तो' में बहुमूल्य पोशक तत्व होते है। जो गर्म खाने में मिल जाते है। जो शरीर के लिए बेहद फायेदेमंद है। इसके पेड़ से निकलने वाला गोंद हड्डियों को मजबूत बनाने में बहुत काम आता है।

2. आयुर्वेद की माने तो टेसू के फूलों के रंग होली मनाने के अलावा इसके फूलो को पीसकर चेहरे में लगाने से चमक आती है।

3. टेसू की फलियॉ कृतिमनाशक के काम के साथ–साथ अन्य बिमारियों तथा मनुष्य का बुढ़ापा भी दूर करती है।

4. पलाश के फूल के पानी से स्नान करने से लू नही लगती तथा गर्मी का एहसास नहीं होता हैं।

5. इसकी जड़ो से रस्सी बनाई जाती है तथा नाव की दरारें भरी जाती है।

6. पलाश के (जड़, तना, पत्ती, फल और फूल) के राख को लगभग 15 ग्राम तक गुनगुने घी के साथ सेवन करने से खूनी बवासीर में आराम मिलता है।

क्यों समाप्त हो रहा है पलाश के वृक्षों का अस्तित्व

उ. प्र. के बुन्देलखण्ड तथा मध्य प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में ही इन वृक्षों का अस्तित्व बचा हुआ है। लेकिन वन विभाग की उदासीनता के कारण इन वनो का क्षेत्रफल घट रहा है। संरक्षण नही होने के कारण यह खत्म होने की कगार पर पहुॅच चुके है। पलाश के पेड़ो की अंधाधुन कटाई और बेचे जाने के कारण तथा दूसरा कारण वर्षा की कमी के कारण इसका अस्तित्व खतरे के कगार पर है।

रोजगार का जरिया बन सकता पलाश (टेसू)

पलाश के वृक्ष लाक उत्पादन करने के लिए एक अच्छे संसाधन है, अगर ग्रामीण इलाकों में लाक उत्पादन की मशीन लगा दी जाये और लाक के उत्पादन की जानकारी लोगों की दी जाये तो यह आय का अच्छा स्त्रोत होगा. होली के मस्ती बिना रंगों के अधूरी है और रंग पहले फूलो व पत्तियों से ही प्राप्त किया जाता था, इनमें सबसे ऊपर आता है, पलाश के फूलों का रंग, अगर अच्छी गुणवत्ता का रंग तैयार किया जाये जो किसी के त्वचा को नुकसान न करे, तो यह लघु उद्योगों को बढ़ावा दे सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका फूल तोड़े जाने के काफी दिनों तक रखा जा सकता है।

मछलियों का प्राकृतिक आहार और उसका उत्पादन

हरिप्रसाद मोहले[1], डॉ. ओ. पी. सोनवानी[2] एवं डॉ. एन. सारंग[3]

[1, 2]अंशकालिन शिक्षक एवं [3]सहायक प्रध्यापक

मात्स्किय महाविद्यालय, कवर्धा, छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

आज हमारा राज्य की आर्थिक गतिविधिया बहुमूखी विकास के साथ बढ़ रही है तो इसका श्रेय हमारे किसान भाईयो का जाता है क्योकि वे दिन–रात मेहनत करके उत्तम उत्पादन कर रहे है जिससे उघोग के लिए कच्चे माल की पूर्ति के साथ–साथ जनता के भोजन की आपूर्ति कर रहे है। कृशि एवं सम्बंधित क्षेत्रो मे आधुनिक प्रौद्योगिकि के विकास से उत्पादन में वृध्दि हो रही लेकिन ध्यान देने वाली बात ये है कि उत्पादन के साथ–साथ उत्पादन की लागत मे लगातार बढ़ोत्तरी हो रही जिससे उसका प्रतिफल किसान भाईयो को कम प्राप्त हो रही है तथा बचत मे कमी आ रही है, इसी तरह प्रायः मछली पालन के क्षेत्र में यह देखने में आता है कि मछलियों की आहार की लागत बहुत ज्यादा रहती है। इन सबको देखते हुए एक उपाय यह है कि मछलियों की प्राकृतिक आहार की पहचान एवं प्रक्षेत्र स्तर पर उसका उत्पादन।

प्राकृतिक आहारः– यह वह आहार है जो मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधन जैसे–नदी, तालाब, बांध तथा झीलों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। यह प्रायः दो प्रकार की होती है। पहला जो वनस्पतियों से मिलकर बनती है उसे वनस्पति प्लवक कहते है और दूसरा कुछ छोटे–छोटे जीव होते है उसे हम जन्तु प्लवक कहते है। इनमे से वनस्पति प्लवक मुख्य होते है जिससे हमारी प्राकृतिक संसाधन की आहार श्रृखंला बनी रहती है इस प्रकार के प्लवक को जन्तु आहार के रूप मे ग्रहण करते है।

प्राकृतिक प्लवकः

1.वनस्पति प्लवक – शैवाल, डायटम, फ्लैजलैट सीलिएट, वॉलवॉक्स आदि।

2. जन्तु प्लवक – डैफनिआ, मोन्या, साइक्लोप, रोटीफर्स आदि।

ये सभी बहुत ही सुक्ष्म होते है इसके पहचान के लिए साधरण लेंस एवं सुक्ष्मदर्शी से देखे जा सकते है।

प्राकृतिक आहार उत्पादन विधिः–

1. **प्राकृतिक स्त्रोत से उत्पादन** – यह एक प्रकार की पारदर्शी जीव होते है तथा इसका आकार 0.4 – 1.65मि.मी. तक होती है। हमे ज्ञात है कि इस प्रकार की प्लवक हमारे प्राकृतिक

संसाधन जैसे–नदी, तालाब, बांध तथा झीलों में प्राकृतिक रूप से पाएँ जाते है, उसे सावधनीपूर्वक एकत्र करके अपने प्रक्षेत्र में लाकर इसकी संख्या में वृध्दि करके अपने मछलीयो को आहार के लिए प्रदाय किये जा सकते है। इस प्रकार के जीव को एकत्र करने के लिए एक प्लवक जाल तथा बाल्टी (5 लीटर) की जरूरत पड़ती है। फिर संसाधन पर पहुॅचकर प्लवक जाल की सहायता से 50 लीटर पानी को छनना है जिससे कि प्लवक जाल में लगा हुआ ट्यूब में एकत्र हो जाते है। एकत्रीत किए हुए प्लवक को डिब्बे में सावधानीपूर्वक प्रक्षेत्र में ला लेते है उसके बाद एक बड़ी बाल्टी में रख देते है तथा इसके आहार के लिए खमीर एवं वनस्पति प्लवक को प्रतिदिन एक–एक चम्मच दिन में दो बार 15–20 दिनों तक देना है। हम देखते है कि जो वयस्क प्लवक होते है वे 10–12 दिनों में प्रजनन करके छोटे–छोटे नये प्लवको को जन्म देती है फिर ये जो छोटे–छोट प्लवक 18–24 घंटो में फिर से वयस्क हो जाते है और ये प्रक्रिया चलती रहती है। एक अकेला मादा प्लवक 12 दिनों में लगभग 42,000 हजार नए प्लवक को जन्म दे सकती है। उसके बाद हमे एक टैंक (10x5x5 मीटर) में स्थान्तरण कर देते है उसके बाद और मात्रा मे वृध्दि के लिए उसमे उर्वरक एवं खादः सिंगल सुपर फॉस्फेट, यूरिया एवं मूॅगफली खली (1:1:2 कि.ग्रा.) के अनुपात मे देना है जिससे उस टैंक मे वनस्पति प्लवक उत्पादित होती है जिससे जन्तु प्लवक भोजन के रूप में ग्रहण करते है तथा अपने जीवन चक्र सुचारू रूप से जीवनयापन करते है। फिर आवश्यकतानुसार 30–50 प्रतिशत तक प्लवको को टैंक से निकालकर प्रतिदिन तलाब में दिया जा सकता है तथा साथ ही साथ उसी मात्रा में साफ पानी टैंक में डालते रहना है।

2. **केले के छिलके से उत्पादन– इस प्रकार के उत्पादन के लिए हमे साफ एक टैंक** (10x5x5 मीटर) में 50 प्रतिशत पानी भरकर उसमें 10–12 नग केले के छिलके टैंक मे डालकर ऊपर से ढ़ककर कुछ दिनों के लिए सीधा सूर्य की प्रकाश पड़े उस स्थान पर रख देते है। फिर 2–3 दिनों के बाद यह देखने में आता है कि पानी का रंग सफेद हो जाती है और उससे सड़े जैसी गंध आने लगती आती है और एक परत बन जाती है। उसके 4–5 दिनो बाद पानी का रंग साफ और पीला रंग में बदल जाती है क्योकि उसमें जो उत्पनन जीवाणु को इन्फूसूर्या नामक जन्तु प्लवक अपनी आहार के रूप में ग्रहण कर लेते है इस तरह 5–6 दिनों में हमारा जन्तु प्लवक उस टैंक में उत्पनन हो जाता है और इसका प्रयोग आवश्यकतानुसार 30–50 प्रतिशत तक प्लवको को टैंक से निकालकर प्रतिदिन तलाब में दिया जा सकता है तथा साथ ही साथ उसी मात्रा में साफ पानी टैंक में डालते रहना है। उत्पादित जन्तु प्लवक का उपयोग 2–3 सप्ताह तक किया जा सकता है।

निष्कर्ष– प्रायः यह देखा जाता है कि मछली मुख्य रूप से प्राकृतिक आहार को ही प्रथम ग्रहण करती है । यह अन्य आहार की तुलना में सस्ती एवं गुणवत्ता वाली होती है जिससे कि कृशको की उत्पादन लागत में वृद्धि होती है।

मक्का का उत्पाद, अपशिष्ट उत्पाद तथा उसका उपयोग

डॉ. कौशल कुमार मौर्य[1], डॉ. विद्यासागर[2], डॉ. प्रदीप कुमार[3], डॉ. रामजीत[4]

[1]प्राध्यापक, कृषि अभियंत्रण, [2]सह–प्राध्यापक, पशुधन विकास,

[3]सह–प्राध्यापक, फसल सुरक्षा, [4]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

कृषि विज्ञान केंद्र, अम्बेडकर नगर, उ०प्र०

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या – 224229, उ०प्र०

मक्का (जिया मेज एल०) विश्व के चार मुख्य धान्य फसलों में से एक है। यहाँ पर मक्के के ऐसे व्यावसायिक उत्पादों का वर्णन किया जा रहा है जो आंशिक या पूरी तरह से मक्का से बनाये जाते हैं। मक्का एक ऐसा कृशि उत्पाद है जिसका कई रूपों में उपयोग मानव एवं पशुओं के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

पशुधन आहार

उत्पादित मक्का का लगभग 90 प्रतिशत भाग का प्रत्यक्ष रूप में उपयोग पशुधन आहार के रूप में किया जाता है, कम–से–कम इसका दो–तिहाई भाग फार्मों पर उपयोग में लाया जाता है, जहाँ इसे उत्पन्न किया जाता है।

पशुधन आहार के लिये उपयोग में लाये जाने वाले मक्का उद्योग के उपोत्पादों में ग्लुटेन आहार, ग्लुटेन चूर्ण, खली, खलीचूर्ण, मक्का शर्करा शीरा, अंकुर (जर्म) खली, अंकुर खली चूर्ण, शराब बनाने के बाद सुखाया गया अनाज (dried brewers grains) सम्मिलित हैं। मक्का मिश्रित विनिर्मित आहारों में एक महत्वपूर्ण घटक है।

पशुधन आहार के रूप में मक्का के निम्नलिखित उत्पादन उपयोग में लाए जाते हैंः भूसी, गल्ली चूर्ण, मक्का की भूसी, कॉर्न चौप (दाने या भुटा) मक्का आहार चूर्ण, मक्का चूर्ण, मक्का शर्करा, दला हुआ मक्का, साइलेज, चारा, अंकुर खली एवं खली चूर्ण (शुष्क पिसाई उद्योग), ग्लुटेन आहार, ग्लुटेन चूर्ण, मोटा आटा, दलिया आहार, हाइड्राल (मक्का शर्करा शीरा), खली एवं खली (आर्द्र–पिसाई उद्योग), राइबोफ्लेविन संपूरक, छांट, छोला हुआ मक्का, करबी (Stover)

औद्योगिक उपयोग

मक्का का उद्योगों में पर्याप्त उपयोग होता है। मक्का के वृन्तों से कागज एवं वॉल बो्ड बनाए जाते हैं। इसकी गुल्लियों (Cobs) का कॉर्क (दानेदार) स्थापना, मक्का गुल्ली का चूर्ण (फर की सफाई, धातु चमकाने, धातु से तेल को दूर करने के लिए), विरंजीकारक विलायक उर्वरक प्लास्टिकों के लिए पूरक फरफ्यूरल, उष्मारोधी सामग्री, चौलियां (Candlings) एवं ईंधन और पाइप बाउल के लिए उपयोग किया जाता है।

इसके वृन्तों एवं पत्तियों का गद्दा, नाइट्रोसेलुलोज, पैकिंग सामग्री, कागज एवं पेपर बोर्ड बनाने में उपयोग होता है।

मक्का चूर्ण, मक्का का आटा एवं मोटा आटा का आसंजक पदार्थ (adhesives) एस्बेस्टॉस, शुष्क बैटरियां, बंधक (binder) या बंधन कारक, बॉयलर यौगिक, इष्टिकाएं रसायन, पात्र, कोन बाइन्डर, कॉर्क उत्पाद, गुड़ियों के सिर, सांचे में ढाले गये खिलौने, विस्फोटक पदार्थ, नमदे (िमसजे), जिप्सम बोर्ड, ऊष्मारोधी सामग्री (वॉल बोर्ड), प्लाईवुड, साबुन एवं मार्जक, वस्त्रोद्योग में ताने को चिकना करना, परिष्करण एवं छपाई में उपयोग होता है।

मक्का के स्टार्च का अपघर्षक कागज एवं वस्त्र, आसंजक पदार्थ, कृत्रिम फूल, ऐस्बेस्टॉस, शुष्क बैटरियाँ, क्वथन यौगिक (boiling compounds) पोटाश, ऑक्जेलिक अम्ल आदि रसायन, निर्मलीकरण पदार्थ, काष्ठ, धातु एवं कागज पर आलेपन (ऐलील स्टार्च), कागज की छपाई में रंग का वाहक, रंग सामग्री (dyes) विस्फोटक, कीटनाशी रसायन, रोधी सामग्री (insulating mcterial) मोमजामा (oil cloth) आदि के निर्माण में उपयोग होता है।

डेक्स्ट्रीन की अपघर्षक सामग्री, आसंजक पदार्थ, गलीचे एवं कार्पेट को चिकना बनाना (sizing), रंग, परतदार, ठोस रेशों के पात्र, ठोंगा, नली आदि, कोर बाइन्डर, रंग सामग्री, लिफाफे, गोंद, स्याही, दियासलाई, श्लेष्मक (mucilage) तेल कूप खुदाई, पेन्ट, कागज एवं कागज के उत्पाद, साबुन, खिड़की का परदा आदि के निर्माण में इसका प्रयोग होता है।

मक्का सिरप का आसंजन पदार्थ बॉयलर यौगिक, बूट पॉलिश, रंग सामग्री स्याही, कांची पत्र (glassine) चर्म पत्र (parchment) प्लासटिक की सामग्री, तम्बाकू, वसों की परिसज्जा आदि के कार्य में उपयोग होता है।

अपरिष्कृत मक्का शर्करा का लैक्टिक, एसिटिक आदि अम्लों, कैल्शयिम लैक्टेट, सोडियम लैक्टेट आदि रसायनों, प्लास्टिककारी पदार्थ, रेयॉन के निर्माण में और परिष्कृत मक्का शर्करा का

व्यावसायिक लैक्टिन, एसिटिक आदि अम्लों, आसंजक पदार्थों, बॉयलर यौगिकों, रंग सामग्री, विद्युत लेपन, जस्ता लेपन, कैल्शियम लैक्टेट, सोडियम लैक्टेट आदि रसायनों, मैनिटॉल, कागज निर्माण, स्वचालित वाहनों के टायरों के निर्माण हेतु रबड़ को बनाने के काम में उपयोग होता है।

मक्का का तेल एवं मुक्त वसा अम्लों का उपयोग गोला–बारूद, पेन्ट, वार्निश, साबुन, रबड के स्थानापन्न, चर्म शोधन के लिए विलेय तेल में होता है।

लैक्टिक अम्ल का आसंजक टेप, रसायनों, एस्टर एवं लवणों, प्लास्टिक एवं रेनिन के निर्माण में हाइड्राल का कार्बनिक अम्ल के निर्माण में, ब्यूटिल ऐल्कोहॉल का एस्टर सुरक्षा कांच, छपाई की स्याही के निमार्ण में, ऐसीटोन का प्रतिऑक्सीकारकों सेलुलोज ऐसीटेट प्लास्टिक एवं फिल्मों, एंजाइमों के निर्माण में एथिल अल्कोहल का ऐसीटिक अम्ल, विकृतीकृत ऐल्कोहॉल, ईथर, कीटनाशी साबुन, कृत्रिम रबड़, कर्तन तेल के निर्माण में उपयोग होता है।

मानव उपयोग (अधिकतर खाद्य सामग्री)

मक्का के दानः इसका डिब्बा बन्द मक्का (सुकोटेश, पाउडर, स्केलप आदि), भुट्टा, पॉप कॉर्न एवं पॉपकॉर्न मिष्ठान्न बनाने के कार्य में उपयोग होता है।

मक्का चूर्ण, मक्का आटा एवं मक्का का मोटा आटाः इन का उपयोग बच्चों के लिए आहार, बेकरी उत्पाद (रोटी, रोल, केक आदि), किण्वित पेय (brewed beverages) बिस्कुट, क्रैकर, चपाती, फूल बड़ी मिष्ठान, कॉर्न फ्लैक, ग्रिडल केक, चॉकलेट, कचौड़ी में भरने की सामग्री आदि के लिए होता है।

मक्का स्टार्चः बेकरी उत्पाद, बेकिंग पाउडर, किण्वित पेय, बिस्कुट, क्रैकर, कुकीज, डिब्बाबंद मक्का, चूइंग गम, मिष्टान्न, प्रसाधन सामरा, तैयार आटा, माल्ट सिरप, पुडिंग, कस्टर्ड, टेवल साल्ट, स्थायीकारक आदि के निर्माण में इसका उपयोग होता है।

कार्न सिरप (तरल या शुष्क)ः इसका बेकरी उत्पाद, किण्वित पेय, बिस्कुट, क्रैकर, पनीर, चूइंग गम, संद्र दूध, शुष्क सिट्स रस, सार, सुवास (फ्लेवर), जैम, जेली, मार्मा लेड, मांस उत्पाद, अचार, सॉस, सिरका आदि के निर्माण में उपयोग होता है।

अपरिष्कृत मक्का शर्कराः इसका उपयोग बेकरी उत्पाद, किण्वित पेय, कैरामेल रंग, आसवन उत्पाद, तम्बाकू, सिरका के निर्माण में होता हैं।

परिष्कृत मक्का शर्करा (निर्जल व जलयोजित डेक्स्ट्रोस)ः इसका बेकरी उत्पाद, किण्वित पेय, अल्कोहल रहित कार्बोनिटीकृत पेय, बिस्कुट, क्रैकर, कैरामल रंग, कैचप, टमाटर सॉस, चूइंग गम,

चॉकलेट उत्पाद, सांद्रित दूध, मिष्टान्न, सुरुचिक सार (lavouring extracts), फल का रस, डिब्बा बंद फल एवं सब्जियां, जैम, जेली, अचार, लैक्टिक अम्ल, लैफ्टेट, मास संसाधन, मास के उत्पाद, आपातकालीन राशन पाउडर (आइसक्रीम, ग्रीष्मकालीन पेय आदि के लिए विटामिन सी आदि के लिये), विटामिन सी आदि निर्माण में होता है।

मक्का का तेलः इसका विटामिन उत्पादों के लिए वाहक तथा पैन को चिकनाने के कार्य में उपयोग होता है।

हाइड्राल (मक्का शर्करा एवं शीरा): इसका किण्वित पेय, कैरामल रंग, सिरका, यीस्ट के निर्माण में उपयोग होता है।

लैक्टिक अम्लः इसका बैकरी उत्पादों, किण्वित पेय, मिष्टान्न, खाद्य परिरक्षण, फल पेक्टिन, औषधि के निर्माण में उपयोग होता है।

ब्यूटिल अल्कोहलः उपयोग ऐंटीसेप्टिय पदार्थ, सुगंधित पदार्थ, कृत्रिम सुवास के निर्माण में होता है।

एसीटोनः ऐसीटोन का कैन्डी ग्लेज वाष्पशील तेल के निष्कर्षण, सुगंधित पदार्थ, औषधि के निर्माण में उपयोग होता है।

एथिल अल्कोहलः इसका ऐसीटिक अम्ल, एंटीसेप्टिक पेय, कैन्डी चमक, प्रसाधन सामग्री, दांत रिफिल, ईथर, सुरुचिक सारतत्व, हेयर टॉनिक, लोशन, सुंगधित पदार्थ, सिरका, विटामिन के निर्माण में उपयोग होता है।

किसानों के खून से रंगी बुन्देलखण्डी खेती

संदीप सिंह एवं आशीष कुमार पाल

छात्र, शुआट्स, नैनी प्रयागराज, उ.प्र. एवं शोध छात्र, उद्यान विभाग, रायबरेली, उ.प्र.

भारत एक विविधताओं वाला देश है। जहाँ पर विभिन्न तरह की ऋतुऐं और वातावरण पाए जाते है। इसी सूची में एक क्षेत्र बुंदेखण्ड है। जहाँ पर विभिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। कृषि योग्य जैसे– लाल मिट्टी, काली मिट्टी यमुना के तराई क्षेत्रों में जलोढ़ मिट्टी आदि तो कुछ कृषि अयोग्य मिट्टी जैसे पथरीली मिट्टी, बलुई मिट्टी आदि पाई जाती है।

बुन्देलखण्ड ऐतिहासिक गौरव का स्वाभिमान का वीरता और सांस्कृतिक विरासत का धनी क्षेत्र है। यह उत्तर प्रदेश राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग एक तिहाई भाग है। इतना बड़ा क्षेत्रफल होने के बावजूद इसका अभी तक विकास सम्भव नहीं हो पाया है।

इसका विकास ना हो पाने का एक बड़ा कारण यह भी हैए कि इसके कुछ जिले उत्तर प्रदेश और कुछ मध्य प्रदेश में आते है। जिसके कारण हम इसको पृथक नहीं कर पा रहा है। यह क्षेत्र इन दोनों राज्यों के बीच फसकर रह गया है। क्योंकि सीमा विवाद के कारण सरकारी योजनाएँ इस क्षेत्र को बहुत ही कम मिल पाती है। दोनों राज्यों की सरकारें इसे एक–दुसरे के ऊपर आरोप प्रत्यारोप करके बस राजनैतिक फायदा उठाती रहती हैं। जिसका खामियाजा वहॉ की भोली भालि जनता को भुगतना पड़ता है।

किसी भी क्षेत्र के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात वहॉ की मौलिक पूॅजी होती हैं। मौलिक पूॅजी का अर्थ है वहॉ पर मौजूद प्राकृतिक संसाधन। कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण यहॉ की

मौलिक पूॅजी है। कृषि उत्पाद। लेकिन सरकार की उपेक्षाओं के कारण यहॅा के किसानों की स्थिति अच्छी नहीं है।

यह क्षेत्र पथरीली भूमि के कारण सूखा प्रभावित अति संवेदनशील क्षेत्र में आता हैं। यहॅा पर ज्यादातर कृषि वर्षा के स्त्रोत नहीं है। यहॅा पर प्रदेश की महत्वपूर्ण नदियॅा यमुना, केन, बेतवा, टोंस और चम्बल जैसी वर्श भर बहने वाली नदियॅा बहती है। इतनी नदियॅा होने के बावजूद यहॅा पर सिंचाई के लिए नहरों का टोटा है। जिसके कारण यहॅा पर अच्छी खेती नहीं हो पाती है।

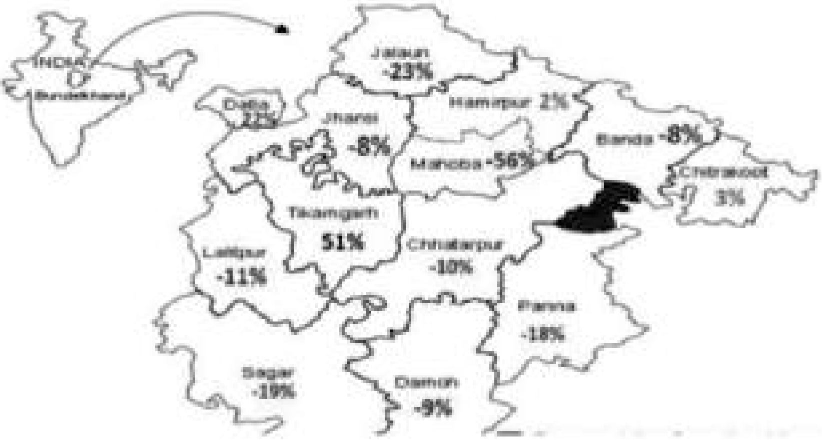

,

चित्रः बुंदेलखण्ड मे वर्षा का स्तर

जिसके कारण हमारे अन्नदाता अपने परिवार के भरण–पोशण के लिए और कृषि लागत के लिए बैंको से अथव ा सुदखोरों से कर्ज इस उम्मीद में लेते है कि अगले फसली वर्षा में पैदवार अच्दी होगी तब यह कर्ज चुकता कर दिया जायेगा परन्तु उनका यह सपना, सपना बनकर ही रह जाता है। कर्ज के बोझ के तले दबे होने के कारण हमारे अन्नदाता आत्महत्या जैसे कठोर कदम उठा रहे है। माह अप्रैल 2003 से माह मार्च वर्ष 2018 तक करीब 4500 से ज्यादा किसानो ने आत्महत्या की। समय–समय इन आत्महत्याओ की घटनाओ पर किसान आन्दोलन भी हुये।

फरवरी और मार्च के महीन को बुन्देलखण्ड में यमराज के महीनों के नाम से जाना जाता है। क्योंकि वहाँ के किसान पहले सूखा से ग्रसित रहते है फिर किसी तरह से हाड़–तोड़ मेहनत करके फसल को उगाते है। तब फसलों को कटाने के समय बेमौसम बारिश और ओला वृष्टि से नष्ट हो जाती है और जो बच जाती है। उसे अन्ना जानवार नष्ट कर दे रहे है। इन सब को हमारे अन्नदाता

देख नहीं पाते है और अपना और अपने परिवार के भविष्य को देखते हुए उनकी रूह कॉप जाती है। जिसके कारण वे आत्महत्या जैसे कठोर कदम उठाते है। बुन्देलखण्ड में इन दोनो महीनो में कोई दिन ऐसा नहीं जाता है। जिस दिन किसी न किसी घर से चीख–पुकार की आवाज न आती हो।

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरों के अनुसार 2009, 2010, 2011, 2012 और 2013 में क्रमशः 568, 583, 519, 745 और 750 किसानो ने आत्महत्या की। इसके साथ ही वर्ष जनवरी 2014 से 2016 तक 411 किसानों और खेतिहर मजदूरी ने कृषि की वजहों से आत्महत्या की। यह सिलसिला यही नहीं थमा बल्कि अभी तक सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि वर्ष 2017 से मार्च 2018 तक तकरीबन 300 किसानों ने आत्महत्या की है।

चित्रः फाँसी मे झुलता किसान

बुनदेलखण्ड में यह मौत की खेती बहुत तेज रफ्तार से पक रही है। परन्तु हमारे यहाँ की राज्य और केन्द्र की सरकारों ने अपनी गर्दन बचाने के लिए इसे लिखित रूप से आत्महत्या मानने से मना कर दिया। इन आत्महत्याओं को लेकर बहुत आंदोलन हुए और राजनीति का माहौल गर्माया परन्तु वे गाँव जस के तस ही रहें। अभी भी वहाँ पर सन्नाटों को चीरता हुआए किसी न किसी

किसान के परिवार की चीखें सुनाई दे जाती है।

बुंदेलखण्ड में लगभग 2 अरब रूपये का रबी की फसलों पर किसान भाइयों ने बीमा करवाया है। यहाँ की करीब 09 बैंकों ने लगभग 40,000 किसानों की फसलो का अभी तक बीमा किया गया था। इन बैंको के अधिकारी मनमाने ढंग से निरीक्षण करके अपनी रिपोर्ट तैयार करते है तथा उनके बीमा के अनुसार उनको धनराशि नही प्राप्त हो पाती। ऑकड़ों के अनुसार बुंदेलखण्ड का लगभग 85 फीसदी किसान और खेतीहर मजदूर कर्जदार है।

ये आत्महत्या की घटनाएँ पूर बुन्देलखण्ड में नहीं हो रही है। मात्र उन्ही जिलों में हो रही है। जहाँ पर सरकार के नुमाइंदो द्वारा जंगल काटे जा रहे है। खनन की अति हो रही है, चारा नष्ट हो रहा है। जिससे मवेशी की मृत्यु का आकडा बढ़ता जा रहा है और उनकी संख्या में तेजी से गिरावट आ रही है। बॉदा, महोबा और चित्रकूट, झाँसी और हमीरपुर जैसे प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर्ण जिलो में ज्यादा हुई। जिसके लिए वन और खनन माफिया उत्तदरायी है। जो वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करके बची कृषि योग्य भूमि को भी बंजर भूमि में तब्दील कर दे रहे है।

निष्कर्षः—

अगर बुन्देलखण्ड को भी राज्य के अन्य क्षेत्रों के भॉति फलता—फूलता देखना है तो राज्य और केन्द्र की सरकारों को वहाँ पर नदियों के पानी को बाँध बनाकर रोकना होगा। जगह—जगह वर्षा के जल को संरक्षित करने के लिए तालाबों की खुदई करवानी होगी। इसके साथ खाली जगहो मे वृक्षारोपड़ करवानी होगी। इसके साथ वन और खनन माफियो से किसानों की जमीनों और चारगाहो को बचाना होगा। इसके साथ—सथ बुनियादी कृषि उद्योगों को भी बुन्देलखण्ड में बढ़ावा देना होगा।

गेहूँ का संसाधन

डॉ. कौशल कुमार मौर्य[1], डॉ. प्रदीप कुमार[2], डॉ. विद्यासागर[3] एवं डॉ. रामजीत[4]

[1]प्राध्यापक, कृषि अभियंत्रण, [2]सह–प्राध्यापक, फसल सुरक्षा,

[3]सह–प्राध्यापक, पशुधन विकास, [4]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

कृषि विज्ञान केंद्र, अम्बेडकर नगर, उ०प्र०

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या – 224229, उ०प्र०

गेहूँ का मुख्य रूप से मानव आहार के रूप में उपयोग होता है और इस प्रकार धान्य फसलों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। खाद्य रूप में इसका उपयोग रोटी, बिस्कुट, पेस्ट्री आदि के लिये आटा के निर्माण में होता है।

आटे के लिये गेहूँ का संसाधन

गेहूँ का आटा बनाने का उद्देश्य यथासंभव पूर्ण रूप से चोकर एवं अंकुर से भ्रूणपोष का पृथक्करण और उसके बाद भ्रूणपोष को आटे के आकार के कणों में पहुँचाना है। यह कार्य कुछ चरणों की श्रृंखला में पूरा किया जाता है, जो ये हैंरू गेहूँ का चयन एवं सम्मिश्रण, सफाई, मृदुकरण, खण्डन, छलनी से छानना, शोधन एवं लघुकरण।

1) गेहूँ का चयन एवं सम्मिश्रण

गुणता के अनुसार गेहूँ का चयन एवं सम्मिश्रण आधुनिक पिसाई की अनिवार्य अवस्था है, क्योंकि गेहूँ के अलग–अलग लॉटों की रासायनिक संघटन व गुणता किस्म एवं वातावरण संबंधी दशाओं के साथ भिन्न–भिन्न होती है। विशिष्ट विश्लेषण मानों एवं बेकिंग परीक्षणों के लिये गेहूँ के सम्मिश्रित करने की सामान्य पद्धति के अलावा गेहूँ की गुणता विर्निदेशों के लिये भौतिक डफ परीक्षण (dough testing) से आवश्यक निस्पादन मानकों को पूरा करने वाले होने चाहिए।

2) पिसाई एवं छानना

चोकर एवं अंकुर से भ्रूणपोष के पृथक्करण में खण्डन, छानना, शोधन एवं लघुकरण प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है और उसके बाद आटे को बारीक बनाया जाता है। ब्रेकरोल (break rolls) जो दाने तोड़ते हैं और चोकर से भ्रूणपोष के टुकड़ों को निकालते हैं, ऐसे लहरदार रोलों के जोड़े होते हैं जो लगभग 2(से 1 के चाल अवतल पर एक दूसरे की ओर घूमते हैं। बेलन के एक जोड़े के बीच स्टॉक के प्रत्येक परिवर्तन के बाद पिसी हुई सामग्री को छानकर कण परिमाण, शोधन की मात्रा आदि के अनुसार वर्गीकृत कर लिया जाता है। प्रत्येक पिसाई प्रचालन से बारीक

आटे की एक ऐसी निश्चित मात्रा प्राप्त होती है जो ''मिल धारा'' (mill stream) बनाने के लिये जाती है। बड़ी मिलों में 30 से 40 मिल धाराएं होती हैं, जो बाद में विभिन्न तरीकों से मिश्रित होकर विभिन्न श्रेणी का आटा प्रदान करती हैं।

वातीय पिसाई (pneumatic milling)

वातीय पद्धति में छानना अधिक आसान होता है और पिसाई के परिणाम उत्तम पाये गये है। इस प्रकार के मिल द्वारा घेरा गया स्थान सामान्य संस्थापन की अपेक्षा कम होता है और इसमें उत्पादन, आटे के गिराव (spouting) एवं धूलि संग्रहण की समस्याओं का पर्याप्त ध्यान दिय गया है।

प्रतिघात पिसाई (impact milling)

अधिक सक्षम पिसाई यंत्रों की खोज में प्रतिघात पिसाई के सिद्धान्त पर अधिक ध्यान दिया है।

आटे का उपचार

जब पिसे हुये आटे को भण्डारित किया जाता है तो उसमें कुछ परिवर्तन हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप उनके रंग एवं बेकिंग गुणता में क्रमशः सुधार हो जाता है। इन परिवर्तनों को तेज करने के लिये आटे में कुछ पूर्णतः विकसित करने वाले एवं विरंजक रासायनिक पदार्थ जैसे नाइट्रोजन के ऑक्साइड की लार बेन्जाइल पर ऑक्साइड एवं क्लोरो डाइऑक्साइड मिलाये जाते हैं। बेन्जॉइल, पेरोक्साइड केवल विरंजक पदार्थ है, जबकि क्लोनी एवं क्लोरीन डाइऑक्साइड दोनों पूर्णतः विकसित करने वाले एवं विरंजक पदार्थ हैं। केक के आटे में क्लोरीन कुछ लाभदायक प्रभाव प्रदान करता है जो अन्य पदार्थों से प्राप्त नहीं होते हैं।

अनुकूलतम वेकिंग निष्पादन के लिये आटे में ऐमिलेस सक्रियता प्रायः बहुत कम होती मिल या बेकरी में थोड़ी मात्रा में माल्ट मिश्रित जौ का आटा, माल्ट मिश्रित गेहूँ का आटा या कवकी ऐमिलेस संपाकों (fungal amylase preparation) को मिलाकर इस दशा में सुधार लाया जाता हैं।

आटे की गुणता

गेहूँ एवं आटा प्रौद्योगिकी में गुणता शब्द शुद्ध रूप से आपेक्षिक है और किसी विशेष प्रयोजन के लिये सामग्री की उपयुक्तता को सूचित करती है। यद्यपि आटे की गुणता में अनेक जटिल कारक सम्मिलित है तो भी प्रोटीन एवं उनके भौतिक गुण अधीक महत्वपूर्ण हैं और इन दोनों कारकों में सुस्पष्ट अंतर विभिन्न प्रकार के आटे में पाया जाता है। नवीनतम अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि आटे के स्थायित्व को परिष्करण की मात्रा को बढ़ाकर, ऑक्सीकारक सुधारकों के साथ उपचार को हटाकर एवं सामान्य व्यावसायिक स्तरों के नीचे आर्द्रता अंश को घटाकर बढाया जाता है।

कृषि में बीज उपचार का महत्व

आशीष कुमार पाल एवं संदीप सिंह
शोध छात्र, उद्यान विभाग, रायबरेली, उ.प्र. एवं छात्र, शुआट्स, नैनी प्रयागराज, उ.प्र.

कृषि में बीजों का एक विशेश स्थान है, जिसे हम 'खेती का आधार मानते हैं। अतएव एक शु. .द्ध, सुरक्षित एवं सफल फसल उत्पादन हेतु उच्च गुणवत्ता वाले बीजों की आवश्यकता होती है। बीज कई रोगजनकों (कवक, जीवाणु और विशाणु) कीडों व सूत्रकृमी आदि के वाहक हो सकते हैं, जो भण्डारण के समय अथवा खेत में बीज व फसल को क्षति पहुचाते हैं। जिससे बीज की गुणवत्ता व फसल उत्पादन में पर्याप्त हानि होती है। बीजों की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु भण्डारण अथवा बोने से पहले कुछ भौतिक व रसायनिक प्रक्रियायें की जाती हैं, जिन्हे बीज उपचार कहा जाता है। बीज उपचार कृशि की अतिआवश्यक प्रक्रिया है जिसके निम्नलिखित लाभ है।

बीजोपचार के लाभ–

1) बीज–जन्य रोगों की रोकथाम करने की क्षमता में बृध्दि होती है।

2) बीजोपचार से बीज के ऊपर एक रक्षक परत चढ़ जाती है, जो बीजों को हानिकारक सूक्ष्म जीवों और मृदा में सड़ने से बचाती है।

3) बीजों को उचित कवकनाशी से उपचारित करने से विभिन्न कवक बीज आवरण को क्षति नही पहुँचा पाते, जिससे बीज की जैविकता बनी रहती है और बीज के अंकुरण में वृद्धि होती है।

4) जल्दी और समान. रुप से अंकुरण और विकास होता है।

5) मिट्टी और फसल पर कीटनाशकों का छिड़काव करने से अच्छा है बीजोपचार करना जिससे लागत में कमी आती है।

6) प्रतिकूल परिस्थितियों (कम / उच्च नमी) में भी एक समान फसल का विकास होता है।

7) उपचारित बीजों पर रसायनो का लेप बुआई के बाद भी अनेक मृदा कीड़ों से बीजों तथा पौध की रक्षा करता है।

8) रसायनो का छिड़काव करने से कुछ लाभदायक कीड़ों की कमी से उपज प्रभावित होती है। बीज उपचारित करने से इनकी उपज में भी वृद्धि होती है।

9) उपचारित बीज बोने से फसल स्वस्थ रहती है, जिससे उत्पादित बीज उच्च गुणवत्ता वाला होता है।

बीज उपचार की विधियाँ– बीजोपचार की कई विधियाँ हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

(क) यांत्रिक उपचार –

यांत्रिक उपचार बीज के भीतर रोगजनकों को नही मारता, बीज की सतहों से जीवों को भी नही हटाता और न ही मिट्टी में रहने वाले जीवों से रक्षा करता है। यह एक प्रकार की उचित सफाई की क्रिया होती है, जिससे खुरदरे बीज, विक्रत, विवर्णित तथा हल्के बीजों को उनके भार एवं रंग आदि के आधार पर पृथक्कारी मशीनों से अलग कर दिया जाता है और शुद्ध बीजों को एकत्र कर लिया जाता है।

(ख) भौतिक उपचार – भौतिक उपचार कई विधियों से किया जाता है–

1) सुरक्षित नमी स्तर –

बीज में संक्रमण को रोकने की सर्वाधिक प्रभावी विधि बीजों को सुरक्षित नमी स्तर तक सुखाना है, जिससे विभिन्न रोगजीव नही पनपते। सब्जियों के बीजों का नमी स्तर 8 प्रतिशत रखते हैं।

2) सौर उपचार–

इस विधि में बीजों को सुबह 2 घण्टे पानी में भिगोने के बाद धूप में सुखाया जाता है। यह विधि मई–जून के महीने में जब तापमान (45^0–50^0C) हो, अपनाई जाती है।

3) गर्म पानी उपचार–

बीजों को कुछ समय के लिए गर्म पानी जिसका तापमान 50 डिग्री सेंटीग्रेड हो, में भिगोकर रखने से भी कुछ रोगजनकों से छुटकारा मिल जाता है। जैसे फूलगोभी के बीजों को 50 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान वाले पानी में 20 मिनट रखने से जेन्थोमोनाज कम्पेस्टिस नामक जीवाणु की मृत्यु हो जाती है। यह विधि विभिन्न प्रकार की सब्जियों जैसे गाजर, खीरा, प्याज, पालक, मिर्च, शलजम आदि में भी प्रयोग कर सकते हैं। इस उपचार से एक लाभ यह भी है कि कुछ अंकुरण बाधक पदार्थ बीज से हट जाते हैं जिससे अंकुरण में वृद्धि होती है।

4) नमकीन जल उपचार–

बीजों को साधारण नमक के 10 प्रतिशत घोल में डुबोने से संक्रमित बीज ऊपर तैर जाते हैं, जिनको हाथ से अलग कर दिया जाता है। अच्छे बीज पात्र की तल मे बैठ जाते है जिनको बाद मे अलग कर लिया जाता है।

5) रासायनिक उपचार–

रासायनिक उपचार, बीजों को उपचारित करने के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है। इस विधि में बीज जन्य रोगजनकों को नश्ट करने अथवा रोकथाम के लिए कवकनाशकों, प्रतिजैविकों अथवा कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है, जिससे बीज भंडारण के दौरान सुरक्षित रहता है, तथा खेत में बोने पर स्वस्थ एवं ओजपूर्ण पौधे विकसित होते हैं।

बीजोपचार रसायन

कवकना ाीः ये कार्बनिक अथवा अकार्बनिक एंव घातक अथवा अपारदीप हो सकते है। इनमें से अपारदीप कार्बनिक कवकनाशियों का अधिकतर प्रयोग किया जाता है। जैसे– कैप्टान तथा थायराम अधिकतर प्रयोग में लाये जाते हैं। ये प्रायः बीजों को क्षति नही पहुचाते हैं। बीज में इनकी मात्रा अधिक होने पर धोकर निकाली जा सकती है तथा उपचारित बीजों को लम्बे समय तक भंडारित किया जा सकता है। इनकी मात्रा लगभग 2 ग्रा प्रति किलो बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त है।

कीटना ाीः भंडारण के समय कीटों से बचाने के लिए बीजों को भंडारण से पूर्व कीटनाशी से उपचारित कर देना चाहिए जिससे हानिकारक कीट बीजों को नुकसान नही पहॅुचा पाते। इसके अतिरिक्त उपचारित बीज, पौधों तथा फसल का बचाव होता है। कीटनाशी की अधिक मात्रा बीजों को क्षति पहुचा सकती है, इसलिए बीजोपचार करते समय निर्माता के निर्देशों का पालन करना चाहिए।

बीज उपचार करते समय बरतने योग्य सावधानियॉ–

1) यांत्रिक क्षतियुक्त बीजों को उपचार के बाद जल्द से जल्द लगा देना चाहिए।

2) रसायनों से बीजोपचार, बोने से 1–15 माह पूर्व ही कर देना चाहिए।

3) उपचारित बीजों को वायुरोधी पात्रों में कम नमी व कम ताप की अवस्था में भंडारित करना चाहिए।

4) बीजोपचार के समय रसायन की सही मात्रा ही प्रयोग करनी चाहिए। अधिक मात्रा बीजों को क्षति पहॅुचा सकती है। जबकि कम मात्रा का कोई प्रभाव नही पड़ेगा।

5) रसायनों का प्रयोग करते समय उसमें दिये निर्देशों का पालन करना चाहिए।

6) उचित रसायन का ही प्रयोग करना चाहिए। पुराने व कालातीत रसायनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

भारतवर्ष में पक्षियों की स्थिति

शिवम् दुबे[1], हेमलता पन्त[2] एवं शिव जी मालवीया[3]
गवर्नमेन्ट साइंस कालेज, जबलपुर, म.प्र.[1]
सी.एम.पी. पी. जी. कालेज, प्रयागराज, उ.प्र.[2]
एच.एन.बी. डिग्री कालेज, नैनी, प्रयागराज, उ.प्र.[3]

पक्षियों को भगवान की सबसे शानदार रचना में से एक माना जाता है। वे हमेशा अपने शानदार रंगों और आसानी से पहचानने वाले गुणों के कारण आकर्षण का केंद्र रहे हैं जो कि पिछले 150 मिलियन वर्ष पहले शुरू होने से आज तक विकसित हो रहे हैं। दुनिया में, विशेष रूप से सभी ज्ञात स्थलीय कशेरुकी समूहों के बीच, पक्षी प्रजातियों में अद्वितीय, सबसे अमीर हैं और हमारे ग्रह की जैव विविधता का एक महत्वपूर्ण तत्व हैं। वे प्राकृतिक पर्यावरण की स्थिति तक पहुंचने के लिए एक लाभदायक संकेतक के रूप में जाने जाते हैं। पृथ्वी पर पक्षी विविधता की इस समृद्ध विरासत को संरक्षित करना वर्तमान परिदृश्य में एक घंटे की आवश्यकता बनती जा रही है। आज दुनिया भर में पक्षियों की लगभग 10,000 प्रजातियां पाई जाती हैं और भारत, जो एक प्रमुख उष्णकटिबंधीय जलवायु वाला देश है, पक्षियों के अनुसार विविध आवासों से युक्त है, जिसके परिणामस्वरूप पक्षियों की 1,300 से अधिक प्रजातियां हैं, भारत में पाई जाती हैं जो सारे विश्व में पाई जाने वाली कुल प्रजातियों का 13 प्रतिशत है यह हमारे देश की जैव विविधता की संवृद्धि को दर्शाता है. इसके अलावा भी हर साल इस क्षेत्र में पक्षियों की नयी नयी प्रजातियां भी जुड़ती जा रहीं हैं. भारतीय उपमहाद्वीप में, पक्षियों के निवासों को कई प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे कि जंगल, झाड़ी, आर्द्रभूमि, समुद्रीय, घास के मैदान, रेगिस्तान और कृषि भूमि। भारत के तटीय मैंग्रोव के उष्णकटिबंधीय जंगलों से लेकर गीले-घने सदाबहार वन, शुष्क पर्णपाती वन और खुले रेगिस्तानी जंगल भारत और भारतीय उपमहाद्वीप के वन महान विविधता का प्रदर्शन करते हैं । हिमालय में समशीतोष्ण वनों का एक समृद्ध जमावड़ा है, जो मिश्रित चौड़े, नम-ओक और रोडोडेंड्रोन के निवास का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें चीड़ और फ़िर के शुष्क शंकुधारी वन हैं, बर्च, रोडोडेंड्रोन और जूनिपर्स के उप-अल्पाइन वन उच्च होते हैं। ये वन प्रकार अपेक्षाकृत उच्च, पक्षी प्रजातियों के अनुपात का समर्थन करते हैं। हिमालय में स्थानिक या प्रतिबंधित वितरण वाली कई पक्षियों की प्रजातियाँ उल्लेखनीय हैं.

परन्तु वर्तमान समय मेंभारतीय क्षेत्र की पक्षियों की प्रजातियां मुख्य रूप से पारिस्थितिक विनाश के कारण कई खतरों का सामना कर रही हैं, जिसका परिणाम मानव की बढ़ती जनसंख्या है। प्राकृतिक आवास के नुकसान या गिरावट को पक्षी जीवन के लिए विनाशकारी खतरा माना जाता है। अधिक जनसंख्या से जुड़े अन्य कारक जैसे गरीबी, कमज़ोर प्रशासनिक व्यवस्था, बदली हुई कृषि पद्धतियाँ और सभी तरह के वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों के शोषण प्रमुख कारक के रूपों में देखें जा सकते हैं। भारत को बड़े पैमाने पर वन संसाधनों का नुकसान हुआ है। एक सदी पहले देश का करीब ४० प्रतिशत हिस्सा वन क्षेत्र के रूप में जाना जाता था, जो जाहिर तौर पर पक्षियों सहित वन्यजीवों के लिए उपयुक्त निवास स्थान बनाते हैं, आज के दौर में तकरीबन १० प्रतिशत ही बचा हुआ है। इसके अलावा भारत में पक्षियों के प्राकृतिक आवास के लिए ईंधन की लकड़ी, इमारती लकड़ी, चारा और चराई के लिए प्राकृतिक आवासों का क्षरण भी एक बहुत बड़े खतरे के रूप में देखे जा सकते हैं. उड़ान और अनुकूलन क्षमता की शक्ति के बावजूद, पक्षी भोजन और घोसले के लिए इन्ही वनो पर पूरी तरह से निर्भर हैं। 1957 से जब सभी वन क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण किया गया था, तब से वनों की कटाई में तेजी आई है। यह न केवल इन पक्षियों को मनुष्य के शिकार के लिए उजागर करता है और उन्मूलन के उच्च स्तर के खतरे में डाल देता है।

घटता पादप स्वास्थ्य : मानव खाद्य सुरक्षा तथा पशु पोषण के लिए समस्या

डा0प्रदीप कुमार, डा0विद्या सागर, डा0राम जीत एवं' ' डा0कौशल कुमार मौर्य

कृषि विज्ञान केन्द्र, पातीं, अम्बेडकर नगर एवं ''कृषि विज्ञान केन्द्र, मनकापुर, गोंडा (उतर प्रदेश)

आधुनिक व्यवसायिक कृषि प्रणाली के अन्तर्गत गलत कृषि उत्पादन पद्धतियां, घटते वन क्षेत्र तथा मिट्टी में लगातार बढ़ रहे रसायनिक प्रदूषण और पोषक तत्वों के अधिक अवशोषण के कारण न सिर्फ मृदा उत्पादकता कम हो रही है बल्कि असंतुलित कृषि निवेश प्रयोग के कारण पौधों के स्वास्थ्य में गिरावट परिलक्षित है जो पौधों में रोग – कीट – अजैविक समस्याओं के रूप में विद्यमान होती है। साथ ही, पौधों के स्वास्थ्य प्रबंधन में प्रयुक्त रसायनिक उर्वरक तथा विषैले जीवनाशी जैसे – रोग नाशी, कीटनाशी व तृणनाशी के अधिक प्रयोग से मृदा प्रदूषण तथा पर्यावरण प्रदूषण में लगातार बढ़ोतरी जारी है। कारण स्पष्ट है कि अच्छी कार्बनिक मिट्टी में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रहने वाला कृषक मित्र' केंचुआ' लगातार रसायन प्रयोग से लगभग समाप्त हो गया और अनेक लाभदायक सूक्ष्म जीव जैसे – पौध वृद्धि नियामक राइजो बैक्टीरिया तथा रोग के उपचार में प्रयुक्त जैव नियंत्रक सूक्ष्मजीव जैसे –कवक, जीवाणु ,एक्टीनोमाइसिटीज ,माईकोराइजा आदि भी नष्ट होते जा रहे हैं या संकट की स्थिति में है जिससे पौधों का स्वास्थ्य बेहतर बनाए रखना कृषकों के लिए एक चुनौती है। अधिक से अधिक उत्पादन एवं प्रति इकाई क्षेत्रफल से उच्च उत्पादकता की होड़ में संकर बीजों के बढ़ते प्रयोग , ज्यादा उर्वरक एवं सिंचाई जल उपयोग से बढ़ती पादप स्वास्थ्य समस्याओं यथा रोग ,कीट ,पोषक तत्व न्यूनता या अधिकता तथा अजैविक विकारो के निराकरण में प्रयुक्त कृषि निवेश तथा तकनीकी अनुप्रयोग से फसल लागत में बढ़ोतरी हो रही है और वैज्ञानिक कृषि प्रणाली के अभाव में मृदा स्वास्थ्य के साथ–साथ पादप स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। खेतों में प्रयोग होने वाले जीव नाशी / कीटनाशी रसायन मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो चुके हैं । गौरतलब है कि फसलों के उत्पादन में रसायनिक दबाएं जरूरत बन चुकी हैं जबकि चिंताजनक यह भी है कि इनके प्रयोग से होने वाली नाशीजीव सुरक्षा के स्थान पर पर्यावरण का नुकसान ज्यादा हो रहा है। ग्रीनपीस ब्रिटेन द्वारा वित्त पोषित संस्था 'Unearthed 'और सिवस एनजीओ पब्लिक आई (Swiss NGO ' Public Eye') की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार खतरनाक जीवनाशी रसायन विकसित देशों की तुलना में विकासशील और गरीब देशों को ज्यादा नुकसान पहुंचा रहे हैं। ऐसा भारत सहित दुनिया के 43 देशों में पाया गया है जिसके अनुसार भारत में 59 प्रतिशत खतरनाक कृषि रसायनों का प्रयोग किया जा रहा है जबकि ब्रिटेन में यह मात्र 14

प्रतिशत है । मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक 5 बड़ी कंपनियों का भारत में प्रभुत्व है अर्थात वायर ,बीएएसएफ ,सिंजेंटा ,एफएमसी और कोरटेवा जिसको पूर्व में बोल(डीओवी) और डुपोंट के नाम से जाना जाता हैं । ये 5 कम्पनियां बिक्री किए जाने वाले कुल खतरनाक जीवनाशी रसायनों का एक चौथाई हिस्सा विक्री करके मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर रूप से हानिकारक हैं इनमें कैंसर जन्य तत्व शामिल हैं जबकि 10 प्रतिशत कीटनाशकों के विषैले तत्व मधुमक्खी द्वारा मधु के साथ लाए गए थे। इसी रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2018 में सिर्फ 5 कम्पनियो ने भारत में 4.8 अरब डॉलर अर्थात 345 अरब रुपए के अत्यधिक खतरनाक जीवनाशी रसायनों (HHP-Highly Hazard Products) का व्यापार किया गया जो आय का 36 प्रतिशत से अधिक है।

फसल सुरक्षा की दृष्टि से रोग – कीट नियंत्रण में प्रयुक्त जीवनाशी रसायनों के अत्यधिक प्रयोग और नाशीजीवो के प्रति बढ़ती प्रतिरोधक क्षमता के कारण रोग–कीट सघनता बढ़ोतरी से फसल हानि बढ़ जाती हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष 2 लाख आत्महत्याये कीट विषाक्तता के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है । ऐसा विकासशील देशों में अधिक प्रभावी है क्योंकि एक विश्लेषण के अनुसार अमीर देशों में अधिक खतरनाक कृषि रक्षा उत्पादो की बिक्री का औसत अनुपात निम्न आय वाले देशों में 45 प्रतिशत और मध्यम आय वाले देशों में 27 प्रतिशत रहा जबकि दक्षिण अफ्रीका में यह औसत 65 प्रतिशत तक पहुंच गया। अतरू इससे स्पष्ट है कि जीवनाशी रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग मृदा स्वास्थ्य के साथ–साथ पौध स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाल रहा है । जो रसायनिक अवशेष कृषि उत्पादन एवं तैयार उत्पादों में रह जाते हैं वे मनुष्यों तथा पशुओं के उत्तम स्वास्थ्य के लिए समस्या बनते जा रहे हैं इस कारण मनुष्यों व पशुओं में विषाक्तता के परिणाम स्वरुप रोग– व्याधियां बढ़ते जा रहे हैं।

सन 1950 में हरित क्रांति के पहले भारतीय मृदा में सिर्फ नाइट्रोजन की कमी पाई जाती थी लेकिन वर्तमान वर्ष 2020 में अधिकांश पोषक तत्वों की कमी तथा लगातार पोषण ह्रास के कारण पौधों के स्वास्थ्य में नकारात्मक प्रभाव परिलक्षित है अर्थात पोषक तत्वों की कमी के कारण पौधों की सामान्य बढ़वार व सम्पूर्ण उपज के साथ–साथ उत्पाद गुणवत्ता में कमी होना स्वभाविक है। अधिकतर किसान बिना मृदा परीक्षण के आधार पर केवल नाइट्रोजन या फास्फोरस धारी उर्वरकों का प्रयोग दसकों से करते रहे हैं इसी असंतुलित उर्वरक प्रयोग के कारण मृदा स्वास्थय लगातार खराब हो रहा है जबकि आदर्श मृदा में एनपीके का अनुपात ४:२:१ होता है जो क्रमशः 7: 2:7.1 हो गया है (दधीचि एवं अन्य,२०१८)। पौधों के सम्पूर्ण पोषण हेतु आवश्यक सभी 17 पोषक तत्वों का सही अनुपात में मृदा में प्रयोग नहीं किया जा रहा है तथा असंतुलित या कम मात्रा में खाद उर्वरक प्रयोग करने के कारण अनेक पोषक तत्वों की कमी से संबंधित रोग व्याधियां पनप रहे हैं जैसा कि हम सभी जानते हैं कि लगातार कृषि फसलों के उत्पादन से जब एक या अधिक पोषक तत्वों की खेत की मिट्टी में कमी हो जाती है तो पौधों में रोग लक्षण प्रकट होते हैं जिन की आपूर्ति हेतु मिट्टी में

आधारीय प्रयोग , खड़ी फसल में फर्टिगेशन द्वारा पौधों के जड़ क्षेत्र में प्रयोग , तथा जल विलेयक उर्वरकों का पौधों पर छिड़काव और नैनो उर्वरक के रूप में वायोफारमूलेशन का पत्तियों पर छिड़काव लाभप्रद होते हैं। खाद्यान्न एवं कृषि उत्पादों में अधिक रसायनिक अवशेष के कारण जैविक खाद एवं जैव उर्वरकों की श्रंखला में भा.कृ.अनु.प– राष्ट्रीय कृषि उपयोगी सूक्ष्मजीव ब्यूरो कुसुमौर ,मऊ (उत्तर प्रदेश) में अनेक सूक्ष्मजीव आधारित बायो फर्टिलाइजर अथवा बायोफॉर्मूलेशन तैयार करके इफको व नैशनक्ल फरटीलाइजर लिमिटेड को व्यापारिक उत्पादन हेतु विकसित करके उपलब्ध कराये हैं जिनका पानी में घोल कर छिड़काव करने से पौध पोषण सुनिश्चित होता है। इस नई तकनीक के अंतर्गत मिट्टी तथा पौधों में पाए जाने वाले विशेष पोषक तत्व की कमी के लक्षण स्पष्ट होने पर उसके उनके निराकरण में नवीनतम विकसित बायोफॉर्मूलेशन (नैनो फर्टिलाइजर) का छिड़काव न्यून पोषण समस्या के त्वरित निदान करने में उपयोगी होंगे।

पादप स्वास्थ्य खराब होने के कारण :

आधुनिक समय में व्यवसायिक खेती के कारण संकर बीजो का प्रचलन, असंतुलित उर्वरक प्रयोग एवं अधिक सिंचाई जल तथा रसायनिक कषि रक्षा दवाओं के प्रयोग से पौधों के स्वास्थ्य में लगातार कमी परिलक्षित है। पौधों के स्वास्थ्य में कमी के अनेक कारण हैं:

१. कृषि पारिस्थितिकी तंत्र विश्लेषण के आधार पर कृषि उत्पादन न करना।

२. पौधों की प्रति इकाई निर्धारित संख्या से अधिक पोषक तत्व क्षरण होने के कारण पौधों का विकास न हो पाना।

३. अधिक भार युक्त कषि मशीनरी का प्रयोग से भूमि में पर्याप्त वायु संचार की अनुपलब्धता और बढ़ती खरपतवार सघनता से तीव्र प्रतिस्पर्धा के कारण पौधों का स्वास्थ्य प्रभावित होना।

4. तनावग्रस्त भूमि जैसे लवणीय या क्षारीय मिट्टी अथवा अम्लीय मिट्टी में पौधों को यथोचित पोषक तत्व न मिल पाना।

५. भूमि, वनस्पति (पेड़–पौधौं), तथा जंतु (पशु–पक्षी व मनुष्य) निमित्त घटती जैव संपदा में कमी।

६. कृषि उपयोगी सूक्ष्मजीव आधारित जैव उर्वरकों तथा जैविक खादो से उत्पादित ह्यूमस की कमी अर्थात् पोध पोषण के लिए संपूर्ण एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का अभाव।

७. पादप स्वास्थ्य तकनीक के अंतर्गत भूमि शोधन, बीज उपचार , पौध उपचार एवं पौधो की चिकित्सा पद्धति सहित प्रक्षेत्र‌ः खेत की निगरानी अपनाने में कमी रखना।

८. पादप स्वास्थ्य चिकित्सक अथवा विशेषज्ञ चिकित्सक का प्रत्येक कृषि क्षेत्र में कमी होना विशेषकर कृषि रक्षा इकाइयों में पादप विशेषज्ञों की अनुपलब्धता।

मानव व पशु पोषण के लिए समस्याएं :

१. रसायनिक खाद्यान्न तथा खाद्य उत्पाद उपभोग करने से स्वस्थ खाद्य पोषण का अभाव।

२. रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से जैविक पशु चारा का अभाव या संकट।

३. खतरनाक कृषि रक्षा रसायनो एवं दवाओ के प्रयोग से मिट्टी ,जीव जंतु (मानव ,पशु –पक्षी) और वनस्पति (पेड़ –पौधे) के रोग व्याधि व हानिकारक कीटों का प्राकृतिक विधियों से सरल प्रबंध न होना।

४. न्यून पोषक खाद्य एवं खाद्य सामग्री से मानव व पशु स्वास्थ्य प्रभावित होना तथा चिकित्सा व्यय अधिक होना।

५. कम पोषक खाद्यान्न व खाद्य पदार्थों को मानव ध्पशु पोषण प्रणाली में प्रयोग करने से रोग–वयाधि होने पर सामान्य आहार सहित सप्लीमेंट फूड अथवा फोर्टीफाइड फूड का प्रचलन बढ़ना।

इस तरह घटता हुआ पादप स्वास्थ्य मानव व पशु पोषण के लिए भविष्य में समस्या बनता जा रहा है। वर्तमान में, पादप स्वास्थ्य प्रबंधन के अंतर्गत अनेक प्रक्रिया सम्मिलित हैं जो कृषि उत्पादन व खाद्य गुणवत्ता के लिए लाभदायक हैं जैसे–

१. पादप स्वास्थ्य प्रबंधनरू पौधों के प्रचलित रोग–बयाधि ,कीट और अजैविक विकार सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण में प्रयुक्त प्रयोगशाला परीक्षण, प्रक्षेत में नाशी जीव हानि का ज्ञान, समस्याओं का त्वरित निराकरण में 3 जी 3 आर पद्धति का प्रयोग एवं चिकित्सीय जांच के उपरांत एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन उपचार करना।

२. पादप जैव सुरक्षा एवं संगरोधरू जैविक विधियों से हानिकारक रोग – कीट बचाव करना। इसमें रोग व्याधि प्रबन्धन के लिए जैव–कारक, हानिकारक कीटों के प्रबंधन के लिए जैव कीटनाशी तथा खरपतवार के लिए जैविक रोग कारक का उत्पादन , परीक्षण एवं अनुप्रयोग शामिल है। इसके अतिरिक्त रोगी पौधों को परीक्षण के उपरांत रोगमुक्त होने तक अलग सुरक्षित रखकर सगरोध में रखा जाता है अथवा रोग ग्रसित क्षेत्रों से बीज व पौधों के आवागमन पर अंकुश रखा जाता है।

३. जीवनाशी प्रबंधनरू जैविक और रसायनिक जीवनाची का विकास, उत्पादन ,परीक्षण , मूल्यांकन तथा अनुप्रयोग से पादप स्वास्थ्य समस्याओं का निराकरण शामिल है। वर्तमान में, जैव अभिकर्ता व जैविक कीटनाशी को वरीयता क्रम में उपयोग करने की तकनीकी विकास का क्रम जारी है जो स्वस्थ कृषि पारिस्थितिकी में टिकाऊ , सरल तथा वैज्ञानिक विधि है।

४. पादप स्वास्थ्य अभियांत्रिकीरू इसके अंतर्गत जैव– विविधता बनाए रखने के लिए मिलवां खेती, रोग–कीट आकर्षक फसलें ,रोग कीट अवरोधक फसलें, पंक्तियों में पौधों की वुवाईध्रोपणध्स्थापना, जैव प्रौद्योगिकी विधियों से प्राप्त सूक्ष्मजीव का भूमि में समावेश तथा खड़ी फसल पर स्थिरीकरण कारक अथवा घोलक जैवकल्चर का यात्रिक विधि से छिड़काव अथवा

फुहारा या कोहरा विधि का प्रयोग शामिल है।

५. जीव नाशी विशेषण प्रयोगशाला मैं परीक्षण रू इसमें विभिन्न कृषि रक्षा संस्थानों या कंपनी के शोध व विकास कार्यक्रम के अंतर्गत अनेक रसायनों के सूत्र अथवा मिश्रण दवाओं का उत्पादन, परीक्षण किया जाता है और प्रयोगशाला व प्रक्षेत्र में प्रयोग जरूरी होता है । ये विशेष जीवनाशी विभिन्न फामुलेशन में तैयार कर विश्लेषण के उपरांत ही अनुप्रयोग हेतु जारी किए जाते हैं ताकि विशेष जीवनाशी का मनुष्य या पशु स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के लिए हानिकारक प्रभाव न हो जिस प्रयोग हित में जीवनाशी का विकास हुआ हो।

६. जीवनाशी परीक्षण योजना के अंतर्गत रसायन गुणवत्ता परीक्षण केंद्रों का विकास. पादप संरक्षण, संगरोध एवं भंडारण निदेशालय ,फरीदाबाद (हरियाणा) तथा राष्ट्रीय वनस्पति स्वास्थ्य प्रबंधन संस्थान ,हैदराबाद (तेलंगाना राज्य) सहित प्रत्येक राज्य में अनेक जीवनाची रसायन परीक्षण केंद्र विकसित किए गए हैं विशेषकर प्रत्येक राज्य में कृषि विश्वविद्यालय, कषि विभाग के अंतर्गत कृषि रक्षा रसायन परीक्षण व आईपीएम प्रयोगशाला कार्यरत है। प्रतिवर्ष खरीफ,रबी तथा जायद फसलों के लिए प्रयुक्त कृषि रक्षा रसायनो के नमूने राजकीय.सहकारी एंव निजी दुकानों से लेकर जीवनाशी की गुणवत्ता जांच विशिष्ट प्रयोगशाला में कराई जाती है। अधो मानक पाये जाने पर कानूनी वैधानिक कार्यवाही की प्रक्रिया अपनाई जाती है ताकि मिलावट करने वाले विक्रेता पर पावंदी रहे।

७. प्रक्षेत्र सलाहकारी सेवाएंः राजकीय व कृषक प्रक्षेत्रों सहित घरों तथा कार्यालयों में नाशी जीवव नियंत्रण (पेस्ट कंट्रोल) सेवाएं प्रदान की जाती है। साथ ही, अनेक क्षेत्रों में रोग ,कीट, खरपतवार ,पोषण विकार, चूहा , टिड्डी आदि का आक्रमण होता है तो वनस्पति स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी सलाहकार सेवाएं पहुंचाई जाती हैं।

इस प्रकार घटते पादप स्वास्थ्य को चिन्हित करते हुए कृषि पारिस्थितिकी मूल्यांकन आधारित आदर्श पौध स्वास्थ्य उपचार तकनीकी एवं चिकित्सा व्यवस्था, पौधा साफ–सफाई उपचार (Phyto-sanitary treatment), जैविक रोग नाशी व कीटनाशी का उत्पादन तथा नियंत्रण और शहरी क्षेत्रों में एकीकृत नाशीजीव प्रवंधन (आई पी एम), जीवनाशी रसायनों के मिश्रण सूत्र के अनुप्रयोग और उनके अवशेष का परीक्षण तथा रसायनिक विश्लेषण में प्रयुक्त उपकरणों व यंत्रों से सुसज्जित प्रयोगशाला का क्रियान्वयन तथा रखरखाव शामिल हैं।

सन्दर्भ

सुनील कुमार दाधीच, अनिल कोठारी एवं सुरेश कुमार तेली(२०१८). पौध पोषण के लिए मृदा उर्वरता लड़ाना जरुरी । एग्रोक्सी फसल क्रांति
५(१): **०५**. ISSN 2394 756X or www.fasalkranti.com
www.greenpeacebritain or www.swissngopubliceye

भारतीय परम्परा में पर्यावरण चुनौती : एक विश्लेषण साहित्य वाड़्ग्यमय में पर्यावरणीय चिंतन

डॉ0 प्रत्यूष पाण्डेय
सहायक आचार्य
राजनीति शास्त्र विभाग
ने0 ग्रा0 भा0 विश्व0, प्रयागराज

भारतीय परम्परा में अधिकांश विशयों पर ऋशियों, मुनियों एवं दार्शनिकों ने अद्भुत योगदान दिया है, पर्यावरण एक ऐसा विशय है, जिसका उल्लेख प्राचीन काल से देखा जा सकता है। इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी पर निवास करने वाले समस्त जीवन चक्र पर्यावरण से अभिसिंचित है। आज नैतिकता के युग में पर्यावरण एक समस्या के रूप में सामने खड़ी है। इसको कैसे सुरक्षित एवं संरक्षित किया जाए यह चिंतन का प्रमुख विशय है।

प्रस्तुत शोध पत्र में पर्यावरण क्या है? इसका महत्व इसकी समस्या एवं चुनौतियों तथा समाधान पर सम्यक् प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, पर्यावरण सम्बन्ध मौलिक अवधारणाओं को समझने के लिए वेदों का अध्ययन करना समीचीन है। हमारे ऋशियों और मुनियों ने पर्यावरण के महत्व को समझते हुए प्रकृति पूजा, यज्ञ, अनुश्ठान, वृक्ष पूजा, वन औशधि आदि पर विशेश ध्यान दिया।

जैसा कि वेद शास्त्रों में कहा गया है, कि जिसका मूल्य प्रकृति, प्रवाह रूप से अनादि है। इसकी चार त्वचायें, छः तने, 25 शाखायें अनेकों पत्ते और बहुत से फूल हैं जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे है। जिस पर एक ही बेल है। जो उसी के अधीन रहती हैं जिसमें नित्य नये–नये फूल निकलते रहते हैं। ऐसे संसार वृक्ष स्वरूप को वेदों में महत्व दिया गया है। जिस प्रकार पत्ते वृक्ष की रक्षा और वृद्धि करने वाले होते है। वैसे ही वेद व वेद कर्मों से संसार की रक्षा व संसार की वृद्धि होती हैं सर्व शक्तिमान ईश्वर से परमेश्वर की माया से यह उत्पन्न संसार वृक्ष की भाँति विनाशशील व क्षणिक है।

इस प्रकार भारतीय परम्परा से पुरुश व प्रकृति अभिन्न रूपों में जुड़े हुये हैं। पर्यावरण के संरक्षण के लिए भूमि को देवत्व प्रदान किया गया है। प्रकृति विभिन्न शक्तियों को देवी देवताओं के

रूप में किया गया[2] पारिस्थितकी वृक्ष का हरे भरे वृक्षों का होना आवश्यक है। ऐसे वृक्षों को बचाया जाये, जो कल्याणकारी हो।

पारिस्थितिकी संतुलन में सिंह, मृग, सर्प, आदि जीवों की महत्व को देखते हुए उनके संरक्षण का आदेश वेदों में दिया गया है।[3]

पारिस्थितिकी संस्तुलन व पर्यावरण के सम्बन्ध हेतु वैदिक जन्य वनस्पतियों, औशधियों तथा अन्य जन्तुओं के संरक्षण के प्रति विशेश सजग थे। जिसका उत्कृश्ट प्रतिबिम्ब अरण्य सूत्र, पृथ्वीसूत में देखा जा सकता हैं।[4] इस प्राकर प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने का प्रयास निरन्तर किया जाता था। ऋग्वेद में कहा गया है, कि पर्यावरण को प्रदूशण मुक्त करने के लिए मन व मस्तिश्क का स्वस्थ्य तथा शान्ति व मानसिक प्रदूशण से मुक्त होना चाहिए।[5] यजुर्वेद में पर्यावरण के विशय में कहा गया है कि देव, अंतरिक्ष, जलवायु, औशधियो, वनस्पतियों एवं पृथ्वी आदि सभी में शान्ति बनी है। जिसमें सभी ओर से शान्ति प्राप्त हो। अर्थात् पर्यावरण के इन सभी अवयव में संतुलन प्राप्त हो। अर्थात् पर्यावरण के इन सभी अवयव मे संतुलन बना रहे। वनस्पतियों, औशधियों तथा जीवों एवं पशुओं आदि का वर्णन भी यजुर्वेद में व्याप्त पर्यावरणीय दृश्टि का परिचायक है।[6]

अथर्वेद में पर्यावरण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मंत्र है, जिसमें कहा गया है, कि पृथ्वी के जिस भाग को खोदा जाये, उसे पूर्ण किया जाये। जिसकी भी स्थिति में पृथ्वी के ह्दय में पर्याप्त स्थिति में क्षति न पहुँचायी जाय, अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से संतुलन बिगड़ता है और पर्यावरण प्रभावित होता है। जिसके परिणाम स्वरूप आपदाओं का सामना करना पड़ता है। पंचतत्वों में व्याप्त पर्यावरण के प्रत्येक तत्व अस्तित्व प्रार्थना एवं संरक्षण का आवाहन यजुर्वेद में व्याप्त पर्यावरणीय चिंतन प्रस्तुत करना है। अथर्वेद में कहा गया है कि जल में सब औशधियाँ विद्यमान है।[8]

अथर्वेद में ध्वनि प्रदूशण के रूप में चिल्लाना शोर मचाना तथा ऊची ध्वनि को बोलने का वर्णन मिलना है।[9] ध्वनि प्रदूशण से मुक्त होने के लिए अथर्वेद के कल्याणकारी व सुन्दर होने पर बल दिया गया है[10] वेद के अनुसार हमे उतना ही बोलना चाहिए कि जितना आवश्यक है। ऋशियों ने शुद्ध एवं समृद्ध पर्यावरण को मानव जीवन के विकास के लिए अनिवार्य माना, तथा प्रकृति के छोटे–से–छोटे या बड़े–से–बड़े महिमा मण्डल के सम्मुख स्वयं को उपासक के रूप में प्रस्तुत किया, तत्पश्चात् उपलब्ध पर्यावरण से मानव संतुश्ट हुआ।

इस प्रकार वेदों पर्यावरण के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि वृक्षें की सुरक्षा एवं संवर्द्धन हेतु उपाय करना चाहिए। वृक्षों को काटना, विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों में निशिद्ध एवं पाप कर्म का भागी बताया गया है। विशणु पुराण में कहा गया है। वनों को बेकार काटने वाला

आसिपत्रवन नरक गामी होता है पर्यावरण संकट की वर्तमान बेला में भारतीय संस्कृति में निहित प्रकृति के प्रति व्यवहार की चर्चा है। उसका अनुपालन आवश्यक है। इस प्रकार पर्यावरण एवं विकास के मुद्दों पर नीति निर्धारित करने से पूर्व पर्यावरण प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल्यों को पुनः स्थापना करनी होगी।

वर्तमान में पर्यावरण से सम्बन्धित जागरूकता फैलाने के लिए केन्द्र व राज्य सरकार भी अपने नीतियों का क्रियान्वयन करने हेतु समितियों तथा स्वैच्छिक संगठनों को दायित्व दे रही है। विभिन्न विशयों जैसे– जल प्रदूशण, वायु प्रदूशण व ध्वनि प्रदूशण, मृदा प्रदूशण से बचाव व सुरक्षा पर कार्य कर रही है। इस हेतु अन्तर्राश्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त सम्मेलन किए जा रहे हैं। पर्यावरण की सुरक्षा व संरक्षा समाज के सभी वर्गों का दायित्व है और इसकों करना भी चाहिए।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 3, 4, 5, 7
2. अथर्वेद 12, 1, 2, 6
3. अथर्वेद 7.95.2 एवं 10.4, 23
4. अथर्वेद, 12, 1
5. ऋग्वेद 3, 4, 7, 1
6. शतपथ ब्राह्मण 1. 7. 1. 5.
7. अथर्वेद 1. 1. 5. 4
8. अथर्वेद , 2.24.6, 8.3.21, 20. 127.14
9. अथर्वेद 3.30.3.2.5.21
10. महाभारत भीश्म पर्व, 19.5
11. विश्णुपुराण, द्वितीय अंश, अध्याय 6 श्लोक 26.27

खरीफ प्याज की वैज्ञानिक खेती

’डॉ0 शैलेन्द्र सिंह ’’डा0 उमेश बाबू एवं ’’’डा0 एस0के0 यादव

’वरिष्ठ वैज्ञानिकए शस्य विज्ञान कृशि विज्ञान केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, बहराइच

’’वैज्ञानिक, आनुवांषिकी एवं पादप प्रजनन, कृषि विज्ञान केन्द्र, बहराइच

’’’वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष , कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, अयोध्या

सब्जियों में प्याज महत्वपूर्ण सब्जी है । इसका उपयोग मुख्य रूप से सब्जी, सलाद तथा मसाले के रूप में किया जाता है । इसे अधिक लाभकारी एवं नकदी फसल के रूप में पैदा किया जाता है । विशेष कर बरसाती प्याज से अपेक्षाकृत ज्यादा लाभ किसान को मिल जाता है । क्योंकि इस प्याज के कन्दों की खुदाई अक्टूबर माह में हो जीत है और बाजार में नवम्बर माह में प्याज की कमी के कारण प्याज का रेट रू0 12.15 प्रति किग्रा से कम नहीं रहता है । उत्तर प्रदेष में इसकी खेती एवं पैदावार कम होने का मुख्य कारण उन्नत प्रजातियों एवं उत्पादन तकनीक की जानकारी का अभाव है ।

प्याज के कन्द में अन्य पोशक तत्वों के अलावा कार्बोहाइड्रेड तथा खनिज तत्वों जैसे फास्फोरस, कैल्सियम विटामिन–ए, बी और सी प्रमुख है । प्याज को काटने पर इससे गंध एवं स्वाद में तीखापन इसमें उपस्थित वाश्पशील गंधक के यौगिक के कारण होता है ।

जलवायु एवं भूमि – प्याज की खेती दोनों मौसम रबी एवं बरसात (खरीफ) में की जाती है। इसकी पैदावार एवं बढ़वार के लिए औसत ठ़ड एवं नम जलवायु उपयुक्त है । उचित जलनिकास वाली जीवांषयुक्त बलुवर दोमट भूमि उपयुक्त है ।

उन्नत प्रजातियां – 1. एन–53 2. एग्रीफाउन्ड डार्क रेड

बीजदर– 10 से 12 किग्रा प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्कता होती है ।

नर्सरी तैयारी– बरसाती प्याज की नर्सरी दो समयों पर दो तरीके से रोपाई हेतु डालते है।

1. प्रथम विधि – 2 वर्गमी0 क्यारी में जो जल निकासयुक्त हो में 50 किग्रा0 गोबर की खाद+50ग्रा0 यूरिया मिलाकर अच्छी तरह क्यारी तैयार करने के बाद बीज को जून के महीने में एक से डेढ़ इंच की दूरी पर आधी इंच गहरी कतारों में डाल कर खाद युक्त मिट्टी डालकर घास, फूस बिछा देनी

चाहिए।

2. द्वितीय विधि – बरसाती प्याज लगाने हेतू दूसरा तरीका जो कि किसानों द्वारा अपनाया जा रहा है । इसमें एक हेक्टेयर रोपाई हेतु 200 वर्गमीटर क्षेत्र में 4 किग्रा0 बीज द्वारा दिसम्बर माह में नर्सरी डालकर छोड़ देते हैं । समय–समय पर हल्की आवष्यकतानुसार सिचाई करते रहते हैं । मार्च के महीने में प्याज की तरह उसको खोदकर रख देते है । इस समय प्याज के तने से छोटे–छोटे प्याज के कंद लगे रहते हैं जो कि जूलाई माह में रोपाई हेतु उपयुक्त होते हैं ।

रोपाई– तैयार क्यारियों में 15ग10 सेमी0 की दूरी पर प्रथम विधि से तैयार नर्सरी की रोपाई करते हैं । जिन क्षेत्रों में पानी लगता है उन क्षेत्रों में 30ग10 सेमी0 की मेड़ो पर दोनों तरफ प्रथम, द्वितीय विधि से तैयार नर्सरी की रोपाई कर देते है ।

उर्वरक– 60 किग्रा0 नाईट्रोजन तथा 60 किग्रा0 फास्फोरस एवं 70 से 100 किग्रा0 पोटाश डालना चाहिए। एक माह बाद खड़ी फसल में 40–40 किग्रा0 नत्रजन दो बार डालना आवष्यक होता है ।

निराई–गुड़ाई– निराई–गुड़ाई द्वारा पोशक तत्वों का हास कर किया जा सकता है तथा केन्द्रों के विकास में यह सहायक सिद्ध होती है ।

हानिकारक कीट एवं रोग – थ्रिप्स नामक कीट प्याज की फसल को ज्यादा हानि पहुंचाते है । पीले रंग का बहुत ही छोटा कीट पत्तियों का रस चूसता है, जिससे पत्तियां टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती है । इसके नियंत्रण हेतु रोगार 500 मिली0 1000 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए ।

बीमारी – इसमें परपल नामक बीमारी का ज्यादा प्रकोप होता है । इसके कारण पत्तियों पर सफेद गोल धब्बे बनते हैं और अन्त में पत्तियां गिर जाती है । इसके नियंत्रण हेतु डायोथेन एम0–45 का 0. 25 प्रतिषत और बावीस्टीन 0.025 प्रतिषत के दो छिड़कान एक के बाद दूसरा करना चाहिए । प्याज की पत्ती चिकनी व गोल होती है । इसलिए इन पर दवा के ठहराव के लिए टाइट्रन नामक रसायन 60 मिली0 प्रति 100 लीटर पानी के हिसाब से अवष्य मिलायें ।

पैदावार– अगेती फसल से 250 से 300 कुन्तल तथा पिछेती फसल से 225 से 250 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक की उपज प्राप्त कर सकते हैं ।

जिंक की कमी से मृदा , पौधे, मानव व पशु स्वास्थ्य समस्याएं एवं निराकरण

डा0 प्रदीप कुमार ,डा0राम जीत एवं डा0'कौशल कुमार मौर्य

कृषि विज्ञान केन्द्र, पातीं, अंबेडकर नगर एवं 'कृषि विज्ञान केन्द्र, मनकापुर, गोंडा (उत्तर प्रदेश)

उत्तर भारतीय भूमि में पोषक तत्वों की कमी और कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सम्बंध है अर्थात भूमि में जिन पोषक तत्व की कमी होगी तो निश्चित रूप से उन्हीं पोषक तत्व की कमी उस खेत से प्राप्त खाद्यान्न , सब्जी, फूल –फल, मसाले तथा पशु चारा आदि कृषि उत्पादों में होना स्वभाविक है। यह तथ्य निर्विवाद सत्य है कि उपजाऊ भूमि में सभी १७ आवश्यक पोषक तत्व की भरपूर मात्रा उपलब्ध होने पर बेशक सभी कृषि उत्पाद पौष्टिक तथा सुस्वाद होते हैं। पूर्वांचल की मिट्टियों में भी जिंक की व्यापक कमी पाई जा रही है जो धान –गेहूं खाद्यान्न फसल–चक्र के कारण आधिक समस्या है। इसका फसलों की उत्पादकता के साथ –२ उत्पाद गुणवत्ता पर भी कुप्रभाव परिलक्षित है । जो मनुष्य भोजन में कम जिंक युक्त खाद्य आहार प्रयोग करते हैं उनमे दस्त और निमोनिया जैसी बीमारियां अधिक व्यापक हैं।। इन बीमारियों के कारण बच्चों की मृत्यु दर सर्वाधिक पाई जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि विश्व में 130 जनसंख्या भोजन में जिंक की कमी से प्रभावित है अर्थात विश्व की लगभग २० करोड जनसंख्या जिंक की कमी से ग्रस्त है। मानव पोषण के लिए जिंक एक आवश्यक व महत्वपूर्ण पोषक तत्व माना गया है। वर्तमान में जिंक की कमी से 16 प्रतिशत मनुष्यों में श्वसन रोग, 19 प्रतिशत मनुष्यों में मलेरिया और 10 प्रतिशत मनुष्यों में दस्त के कारण मानव स्वास्थ्य प्रभावित है। सबसे खतरनाक रोग दस्त से अनुमानितः 8 लाख मनुष्यों विशेषकर बच्चों की मृत्यु का कारण बन जाता है। साथ ही, जिंक की कमी से शिशु व बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता काफी कम हो जाती है और प्रायः बच्चे रोग संक्रमण के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं । ऐसा इसलिए भी है कि शिशु व बच्चों के पालन– पोषण करने वाली बहुसंख्य भारतीय माताओं को तो इस तथ्य की जानकारी ही नहीं है। भूमि में जिंक की कमी के कारण मृदा स्वास्थ्य, वनस्पति स्वास्थ्य, मानव स्वास्थ्य तथा पशु स्वास्थ्य सभी प्रभावित हो जाते हैं क्योंकि सभी जीवों के लिए जिंक की मात्रा अपर्याप्त हो जाती है (तिवारी, 2018)।

पूर्वांचल की कृषि योग्य मिट्टियों में जिंक की कमी प्रायः विद्यमान है और उनके कृषि उत्पादों जैसे

–अनाज ,दाल, सब्जी ,फूल–फल, व चारा आदि में जिंक की मात्रा अपर्याप्त रह जाती है जो मानव व पशु कुपोषण का एक बड़ा कारण है। इस तरह जिंक की कमी से मानव भोजन सामग्री में जिंक के अतिरिक्त अन्य पोषक तत्व व गुणों (प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण आदि) में भी कमी आ जाती है परिणाम स्वरूप बच्चों का शारीरिक विकास यथोचित नहीं हो पाता है। शाकाहारी मानव भोजन का मुख्य स्रोत अनाज और दाल हैं जिनसे ऊर्जा ,प्रोटीन, खनिज लवण प्राप्त होते हैं। चूंकि जस्ता (जिंक) मानव शरीर में कोशिकाओं के विकास के लिए जरूरी है जो चयापचय प्रक्रिया में सहायता करता है। साथ ही , इंसुलिन की गतिविधि , रोगों के प्रति प्रतिरक्षात्मक क्षमता का विकास , संपूर्ण शारीरिक विकास , गर्भ काल में महिलाओं और गर्भस्थ शिशु के विकास के लिए विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि शिशु के प्रारंभिक काल में विकास के लिए कोशिकाओं का विभाजन बहुत तीव्र होता है और जिंक शिशु व बच्चों के संपूर्ण शारीरिक विकास , लंबाई व वजन में वृद्धि तथा हड्डियों के विकास में सक्रिय भूमिका निभाता है। इस प्रकार जिंक मानव स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है क्योंकि यह रोगों के संक्रमण से बचाता है विशेषकर ठंड से बचाने में जिंक सक्षम पाया गया है। यह भी सत्य है कि जिंक सभी विटामिन और खनिज लवणों के साथ मिलकर मानव रोग प्रतिरोधक क्षमता पर सकारात्मक असर डालता है।

मानव स्वास्थ्य , शारीरिक संतुलन एवं हार्मोनल प्रोस्टेट के सुचारू रूप से क्रियान्वयन के लिए 12–15 मिलीग्राम जिंक प्रतिदिन आवश्यकता होती है जबकि कम या अधिक मात्रा हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है । मानव आहार में जिंक की कमी से प्रभावित व्यक्ति में कई तरह के लक्षण पाए जाते हैं–

(अ) पुरुषों में जिंक की कमी के लक्षण : बालों का झड़ना , धीमी गति से घाव भरना, नाखूनों के नीचे सफेद धब्बे हो जाना, एलर्जी प्रतीकात्मक क्षमता में कमी, चयापचय प्रणाली का कमजोर होना और त्वचा संबंधी रोगों की समस्या आदि।

(ब) महिलाओं में जिंक की कमी के लक्षणः मितली आना, कमर दर्द, मांसपेशियों का असंतुलन, चित्त की एकाग्रता में कमी होना आदि।

सामान्यतः जिंक की आवश्यकता पुरुषों के लिए महिलाओं की तुलना में अधिक होती है जबकि शिशुओं व बच्चों में जिंक अत्यावश्यक पोषक तत्व है। अतः सभी जीवों के लिए जिंक एक आवश्यक, संभालने वाला , बहुमुखी प्रतिभा संपन्न , टिकाऊ व जीवन रक्षक माना गया है। भारत में शिशु मृत्यु दर को कम करने के आशय से अंतरराष्ट्रीय संस्था यूनिसेफ का सहारा लिया और शिशु जीवन–रक्षा कार्यक्रम अपनाया ताकि नवजात शिशुओं ,बच्चों तथा माताओं को जिंक की कमी से

होने वाली गंभीर समस्याओं जैसे दस्त और निमोनिया से बचाया जा सके। उक्त कार्यक्रम के अंतर्गत प्रतिवर्ष २0 लाख शिशुओं की मृत्यु में कमी का लक्ष्य रखा गया है। सर्वविदित है कि 5 वर्ष से कम उम्र के शिशुओं की होने वाली कुल मृत्यु में 29प्रतिशत मृत्यु उपरोक्त दो रोगों या समस्याओं से हो जाती है। निःसंदेह 75 प्रतिशत शिशु मृत्यु सिर्फ 15 देशों में होती है जिसमें 5 देशों का स्थान सर्वोपरि है जैसे भारत ,नाइजीरिया ,कांगो ,पाकिस्तान और इथोपिया। अतः दस्त और निमोनिया जैसे रोगों से बचाव हेतु समय पूर्व सावधानी रखना जरूरी है । इसके लिए जिंक उपचार और निम्न – सारिता मुख पुनरूजलीकरण लवणों (Low Osmolarity Oral Salts) के प्रयोग द्वारा 90 प्रतिशत दस्त से होने वाली मृत्यु पर कर्म खर्च में अच्छा नियंत्रण पाया जा सकता है। इसके विपरीत गरीब देशों के 5 प्रतिशत से भी कम बच्चों को ही संतुति के अनुसार पूर्ण उपचार मिल पाता है और मात्र 23 प्रतिशत शिशुओ को निमोनिया के उपचार हेतु एंटीबायोटिक उपचार मिल पाता है।

भारत में फसल उत्पादन के अंतर्गत जिंक की कमी का पौधों पर प्रभाव

१ .पौधों में सूखा, गर्मी का प्रभाव और रोग अधिक लगते हैं ।

२ .पौधों में तथा पत्तियों में अंग मारी या झुलसा प्रमुख है ।

३ .पौधों की बढ़वार अवरुद्ध हो जाती है।

इस प्रकार जिंक का प्रयोग भूमि में मिला कर तथा खड़े पौधों पर छिड़काव की सकारात्मक भूमिका है। वैज्ञानिक शोध से स्पष्ट है कि जिन पोषक तत्व को बढ़ावा देने से भूमि, पेड़ पौधे , पशु –पक्षी तथा मानव सभी के स्वास्थ्य में बढ़ोतरी होती है और 40 प्रतिशत तक फसल उत्पादन अधिक मिलता है जो कृषकों की आर्थिक उन्नति में सहायक है। अतः दीर्घकालीन स्थाई समाधान के लिए फसल उत्पादन में जिंक युक्त उर्वरक अति आवश्यक है। जिंक प्रदाता 5 योगिक है जैसे जिंक ऑक्साइड , जिंक सल्फेट , जिंक क्लोराइड, जिंक कार्बोनेट एवं जिंक फास्फेट परंतु कृषि निवेश के अंतर्गत जिंक सल्फेट का प्रयोग प्रचलित है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर भूमि में जिंक सल्फेट का आधारित प्रयोग अथवा खड़े पौधों में लक्षण प्रकट होने पर मोनोहाइड्रेट जिंक का पर्णीय छिड़काव उपयोगी होते है। इसके अतिरिक्त भूमि में उपलब्ध जिंक पौधों को प्राप्त हो जाता है तो जीवाणु (बैसिलस प्रजाति) को जीवांश खाद अथवा कंपोस्ट के साथ भूमि में मिलाया जाना चाहिए अथवा नैनो जिंक 4मि.ली. प्रति लीटर जल की दर से फसल वृद्धि के दौरान 2 –3 छिड़काव करना चाहिए। यह नैनो–टेक्नोलॉजी आधारित सूक्ष्मजीव बैक्टीरिया अकार्बनिक जिंक को कार्बनिक जिंक में बदलकर पौधों को प्राप्त कराता है जिसको नैनो उर्वरक के नाम से जाना जाता है। भूमि में जिंक की प्रतिपूर्ति

से पौधों का स्वास्थ्य बेहतर होता है । पौधों का विकास यथोचित होने से खाद्यान्न व खाद्य आहार में पर्याप्त जिंक मनुष्य को तथा पशु आहार व चारे के माध्यम से पशुओं को प्राप्त हो जाता है। अतः जिंक पौधों , मनुष्यो एवं पशुओं को निरोगी जीवन के लिए प्रोत्साहित करता है। मानव पोषण में जिंक से कोशिकाओं का निर्माण, हड्डियों तथा मुख्य शारीरिक अंगों की वृद्धि एवं विकास को प्रोत्साहित करता है। साथ ही मस्तिष्क कार्यों को प्रेरित करता है क्योंकि जिंक तत्व की प्रतिपूर्ति से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है इसके अतिरिक्त बच्चों में शारीरिक विकास होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार जिंक की कमी से प्रतिवर्ष 8 लाख व्यक्ति मर जाते हैं जिसमें 4.5 लाख बच्चों की उम्र 5 वर्ष से भी कम होती है और लगभग 20 करोड जनसंख्या जिन्क पोशण की कमी से जूझ रही है। इस प्रकार, जिंक मिट्टी, पौधे, मनुष्य व पशु सभी के स्वास्थ्य विकसित होने की परंपरा को बढ़ावा देता है और पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूत बनाता है।

जिंक आधारित मानव खाद्य पदार्थ

1. जिंक प्रदान करने वाले खाद्य (Zinc supplement foods) जैसे साबूदाना, दूध से बने उत्पाद , समुद्री भोजन उत्पाद, मांस, मछली एवं मुर्गी उत्पाद.,

2. जिंक बढ़ावा देने वाले खाद्य (Zinc fortified foods) जैसे जिंक की गोली, कैप्सूल, नैनो जिंक आदि

इस प्रकार वर्ष 2050 तक विश्व की बढ़ती जनसंख्या ६.१ अरब की भोजन की प्राप्ति के लिए 70 प्रतिशत खाद्यान्न बढाना जरूरी है। जिंक उर्वरक प्रयोग से फसलों की उपज एवं उत्पाद गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है जो खाद्य पोषण एवं कृषकों की आय में बढ़ोतरी के लिए उपयोगी होगा।

संदर्भः

तिवारी, के एन (२०१८). भूमि में जिंक की कमी से बढ़ती स्वास्थ्य समस्याएं। एग्रोक्सी फसल क्रांति ५(१):०५.

ISSN 2394-756X. *www.fasalkranti.com

*www.international zinc association. India

*www.zinc.org.in or www.sdas zinc.org or www.zinc.org/crops

खरीफ फसलों का खरपतवार प्रबन्धन

’डॉ0 शैलेन्द्र सिंह ’’डा0 उमेश बाबू एवं ’’’डा0 एस0के0 यादव

’वरिष्ठ वैज्ञानिकए शस्य विज्ञान कृशि विज्ञान केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, बहराइच

’’वैज्ञानिक, आनुवांषिकी एवं पादप प्रजनन, कृषि विज्ञान केन्द्र, बहराइच

’’’वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष , कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, अयोध्या

सारांश–देश में उपलब्ध सीमित संसाधनों द्वारा बढती हुई जनसंख्या का भरण पोशण करने हेतु किसान कडी मेहनत के साथ खाद्यान्न उत्पादन बढाने में निरन्तर प्रयासरत हैं। भारतीय कृशि अनुसंधान परिशद के विजन 2030 के अनुसार आगामी वर्शों में 320 मिलियन टन खाद्यान्न की आवश्यकता पडेगी जिसके सापेक्ष 2013–14 में 262 मिलियन टन खाद्यान्न का रिकार्ड उत्पादन हुआ परन्तु यह अभी भी लक्ष्य से काफी कम है। फसलों मे खरपतवार जहां फसल प्रतियोगिता करके उपज में 30 से 80 प्रतिशत तक की भारी कमी कर देते हैं वहीं किसानों को आर्थिक नुकसान भी पहुचाते हुए विजन द्वारा निर्धारित लक्ष्य से काफी दूर कर देते हैं। केन्द्र द्वारा विगत वर्शों में खरीफ की फसल में रासायनिक खरपतवार नाशी इमजाथापर का प्रयोग करके उर्द की उपज को किसान पद्वति की तुलना में 75 प्रतिशत तक बढाने में सफलता प्राप्त हुई है। इसलिये उक्त परिणाम के आधार पर यह स्पश्ट है कि सभी फसलों में भरपूर उत्पादन प्राप्त करने हेतु सामयिक एवं प्रभावी खरपतवार प्रबन्धन किया जाना नितान्त आवश्यक है।

राश्ट्रीय स्तर पर खरीफ फसलों की औसत पैदावार काफी कम है, जोकि उत्पादन क्षमता से काफी कम होने का प्रमुख कारण है– खरपतवार, बीज की गुणवत्ता, प्रतिकूल शस्य क्रियायें तथा कीट एवं व्याधियां। खरीफ फसलों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए सुधरी खेती की सभी प्रयोगिक विधियों को अपनाना आवश्यक है। हमारे देश में खरीफ फसल की खेती मुख्यतया दो परिस्थितियों में की जाती है– (1) वर्शा आधारित, (2) सिंचित। ऊची भूमि में वर्शा आधारित खेती में खरपतवार नियन्त्रण एक बड़ी समस्या है, यदि इसका समय से नियन्त्रण न किया जाय तो फसल पूरी तरह से नश्ट हो जाती है। जहॉ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहॉ पर धान की खेती तथा अन्य क्षेत्रों में दलहन, तिलहन व मक्का आदि की खेती की जाती है। प्रायः इन क्षेत्रों में खरपतवार एक प्रमुख समस्या बन जाता है।

खरपतवारों का फसल पर प्रभाव— खरपतवार प्रायः फसल से नमी, पोशक तत्व, सूर्य का प्रकाश तथा स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। जिससे मुख्य फसल के उत्पादन में कमी आ जाती है। धान की फसल में खरपतवारों से होने वाले नुकसान को 15—85 प्रतिशत तक आंका गया है। कभी—कभी यह नुकसान 100 प्रतिशत तक पहुॅंच जाता है। सीधे बोये गये धान में रोपाई किये गये धान की तुलना में अधिक नुकसान होता है। पैदावार में कमी के साथ—साथ खरपतवार धान में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं एवं कीट व्याधियों को भी आश्रय देते हैं। कुछ खरपतवार के बीज धान के बीज के साथ मिलकर उसकी गुणवत्ता को खराब कर देते हैं। इसके अतिरिक्त खरपतवार सीधे बोये गये धान में 20—40 किग्रा0 नाइट्रोजन, 5—15 किग्रा0 फास्फोरस, 15—50 किग्रा0 पोटाश तथा रोपाई वाले धान में 4—12 किग्रा0 नाइट्रोजन, 1—13 किग्रा0 फास्फोरस, 7—14 किग्रा0 पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से शोशित कर लेते हैं तथा धान की फसल को पोशक तत्वों से वंचित कर देते हैं।

धान के खरपतवारों की रोकथाम— धान की फसल में खरपतवार से होने वाला नुकसान खरपतवारों की संख्या, किस्म एवं फसल से प्रतिस्पर्धा के समय पर निर्भर करता है। घास कुल के खरपतवार जैसे— सावां, कोदो फसल की प्रारम्भिक एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार बाद की अवस्था में अधिक नुकसान पहुॅंचाते हैं। सीधे बोये गये धान में बुआई के 15—45 दिन तक, रोपाई वाले धान में रोपाई के 35—45 दिन बाद का समय खरपतवार प्रतिस्पर्धा की दृश्टि से क्रान्तिक होता है। इस अवधि में फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना आर्थिक दृश्टि से लाभदायक होता है तथा फसल का उत्पादन अधिक प्रभावित नहीं होता है।

धान की फसल के प्रमुख खरपतवार तीन प्रकार के पाये जाते हैं—

(1) चौड़ी पत्ती वाले (2) सकरी पत्ती वाले (3) मोथा कुल

खरपतवारों की रोकथाम में ध्यान देने वाली बात यह है कि खरपतवारों का सही समय पर नियन्त्रण किया जाय, चाहे किसी भी तरीके से करें।

धान के पौधों एवं मुख्य खरपतवार जैसे जंगली धान एवं सावां के पौधों में पुश्पावस्था के पहले काफी समानता पायी जाती है, इसलिए साधारण किसान निराई—गुडाई के समय आसानी से इनको पहचान नहीं पाता है। बढती हुई मजदूरी के कारण ये विधिया आर्थिक दृश्टि से लाभदायक नहीं हैं। खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रान्तिक समय में मजदूरों की उपलब्धता में कमी, खरीफ का असामान्य मौसम जिसके कारण कभी—कभी खेत में अधिक नमी के कारण यान्त्रिक विधि से निराई—गुडाई सम्भव नहीं हो पाता है। अतः उपरोक्त परिस्थितियों में खरपतवारों का शाकनाशियों द्वारा नियन्त्रण करने से प्रति हेक्टेयर लागत कम आती है तथा समय की भारी बचत

होती है, लेकिन शाकनाशी रसायनों का प्रयोग करते समय उचित मात्रा, उचित समय एवं उचित ढ़ग तथा उपयुक्त समय पर प्रयोग का सैदव ध्यान रखना चाहिए अन्यथा लाभ के बजाय हानि की सम्भावना भी रहती है।

सारिणी–1 : धान की फसल में प्रयोग किये जाने वाले शाकनाशी

[kjirokjuk'kh jlk;u	ek=k ¼fdxzk0½ lfØ; rRo@gsDV;j	iz;ksx dk le;	fu;fU=r [kjirokj
C;wVkDyksj ¼epsVh½	2-0&2-5	ckvkbZ@jksikbZ ds 3&4 fnu ckn	?kkl dqy ds [kjirokj
,uhykQkWl ¼,uhyksxkMZ½	1-5	rnSo	?kkl o eksFkk dqy ds [kjirokj
ikbjktkslY¶;wjku ¼lkFkh½	0-20	rnSo	?kkl dqy ds [kjirokj
isUMhesfFkyhu ¼LVkai½	3-3	rnSo	?kkl o eksFkk ,oa pkSMh iRrh okys [kjirokj
izsfVykDyksj ¼fjfQV½	2-0	rnSo	rnSo
2] 4&Mh	0-625	ckvkbZ@jksikbZ ds 20&25 fnu ckn	pkSMh iRrh okys [kjirokj ds fu;U=.k grq
ukfeuhxksYM	0-20	rnSo	pkSMh ,oa iryh iRrh okys [kjirokj ds fu;U=.k grq

<u>प्रयोग करने की विधि–</u> खरपतवारनाशी रसायनों की आवश्यक मात्रा को 400–600 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव रोपाई के 2–3 दिन के भीतर 4–5 सेमी0 खड़े पानी में समान रुप से करना चाहिए।

तालिका–2: धान की सीधी बुआई और पोषक तत्व प्रबन्धन के प्रभाव को जांचना :

mipkj	ijh{k.kksa dh la[;k	[kjirokjksa dh izfr oxZ ehVj la[;k ¼60 fnu ckn½	iHkkoh dYys dh la[;k@ik/kk	mit ¼dq0@g0½	'kq) ykHk ¼:0 @g0½	Ykkxr ykHk vuqikr
Vh1& thjksfVYkst rduhd ls /kku dh lh/kh cqvkbZ $ [kjirokj uk'kh ¼izsfVykDyksj 2-0 fdxzk0 lfdz; rRo@g0½$ 80 izfr'kr u=tu cqvkbZ ds le; $ 'ks"k u=tu ,y0lh0lh0 ds vk/kkj ij	05	41	3-6	34-7	8390	1-67
Vh2& Vh1 $ <spk dh gjh [kkn		07	4-2	37-2	8820	1-65
Vh3& d"kd fof/k ¼jksi.k /kku½		36	14-7	41-6	24960	1-25

परीक्षण परिणाम – कृशि विज्ञान केन्द्र, आजमगढ द्वारा विगत वर्शों (2005–2008) में कृशकों के प्रक्षेत्र पर सहभागिता के साथ किये गये परीक्षण के परिणाम यह दर्शाते हैं कि धान उत्पादन की प्रचलित पद्वति रोपाई से उत्पादन अधिक प्राप्त हुआ, परन्तु लागत लाभ का विश्लेशण करने पर धान उगाने की अन्य दोनों पद्वतियों की तुलना में काफी कम पाया गया । अतएव उक्त परीक्षणों के आधार पर धान–ढैंचा की सह फसली खेती (ब्राउन मैन्यूरिंग)करने से अधिक उपज के साथ खरपतवार पर प्रभावी नियंत्रण करते हुए मृदा उर्वरता को भी बढाने में सहायक पाया गया ।

गन्ना– गन्ना खरीफ मौसम की एक नगदी व लम्बी अवधि वाली फसल है। खरपतवार नियन्त्रण हेतु निम्नलिखित में से किसी एक रसायन का प्रयोग किया जा सकता है।

- एट्राजीन– गन्ने की फसल में खरपतवार नश्ट करने के लिए एट्राजीन 4.0 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर का प्रयोग 400–500 लीटर पानी में घोल बनाकर अंकुरण से पहले करें।
- एट्राजीन+2, 4–डी–एट्राजीन 2.0 किग्रा0 प्रति हेक्टयर तथा 2,4–डी की 3.0 लीटर प्रति हेक्टेयर दोनों का प्रयोग फसल उगने के 5 सप्ताह बाद करें।
- मैट्रीब्यूजीन– मैट्रीब्यूजीन 1.5–2.0 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से 400–500 लीटर पानी में घोल बनाकर अंकुरण से पूर्व या अंकुरण के बाद झिड़काव करें। यह शाकनाशी केवल घास कुल के खरपतवार को ही मारता है।
- मैट्रीब्यूजीन+2, 4–डी– घास कुल व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नश्ट करने के लिए मैट्रीब्यूजीन 1.5 किग्रा0 / हेक्टेयर+2, 4–डी 3.0 लीटर प्रति हेक्टेयर को आवश्यकतानुसार लगभग 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर अंकुरण के बाद छिड़काव करें।

मक्का, ज्वार और बाजरा– इन खरीफ फसलों में खरपतवारों का सफाया करने के लिए निम्नलिखित शाकनाशी का प्रयोग करें।

- पेण्डीमेथिलीन (30 ई0सी0)+ एट्राजीन (50 डब्ल्यू0पी0)– एट्राजीन 1.5 किग्रा0+पेण्डीमेथिलीन 2.5 लीटर के मिश्रण को 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। यदि मक्का, ज्वार एवं बाजरे के साथ दलहनी फसल लगी हो तो इस दवा का प्रयोग न करें।
- एलाक्लोर (50 ई0सी0)– इस शाकनाशी की 4.0–5.0 लीटर मात्रा 400 लीटर पानी में घोलकर बुआई के बाद तथा अंकुरण से पूर्व प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।
- पेन्डीमेथिलीन (30 ई0सी0)– पेन्डीमेथिलीन की 3.0 से 4.5 लीटर मात्रा लेकर 400 लीटर पानी में घोल बनाये तथा फसल के बोने के बाद व अंकुरण से पूर्व प्रति हेक्टेयर की दर से झिड़काव

करें।

- <u>2, 4–डी (34 ई0सी0)–</u> 2.0 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर 2, 4–डी का 400 लीटर पानी में घोल बनाकर अंकुरण के बाद चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नश्ट करने के लिए प्रयोग करें।

<u>सोयाबीन एवं मूँगफली–</u> सोयाबीन व मूँगफली में खरपतवार नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित शाकनाशियों में से किसी एक का प्रयोग करें।

- <u>फ्लूक्लोरेलिन (45 ई0सी0)–</u> फ्लूक्लोरेलिन 2.0 लीटर मात्रा लेकर 400 लीटर पानी में घोल बनाकर खेत की अन्तिम तैयारी के समय छिड़काव कर भूमि की ऊपरी सतह पर मिला दें।
- <u>एलाक्लोर (50 ई0सी0)–</u> इस शाकनाशी एलाक्लोर की 3 से 4 लीटर मात्रा 400 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के बाद किन्तु फसल अंकुरण से पूर्व प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिडकाव करें।
- <u>पेन्डीमेथिलीन (30 ई0सी0)–</u> पेन्डीमेथिलीन की 2.5–3.0 लीटर मात्रा 400 लीटर पानी में घोलकर फसल उगने से पहले 1 हेक्टेयर में छिड़काव करें।

<u>मूँग, उड़द, अरहर व लोबिया–</u> ये खरीफ मौसम की मुख्य दलहनी फसले हैं। इन फसलों में खरपतवार नियन्त्रण के लिए निम्न में से किसी एक रसायन का प्रयोग करें।

- <u>पेन्डीमेथिलीन (30 ई0सी0)–</u> पेन्डीमेथिलीन की 2.0–3.0 लीटर मात्रा 400–600 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के तुरन्त बाद या फसल उगने से पहले 1 हेक्टेयर में छिड़काव करें।
- <u>फ्लूक्लोरेलिन (45 ई0सी0)–</u> इस शाकनाशी की 2.0 लीटर मात्रा लेकर 400–600 लीटर पानी में घोल बनाकर खेत की अन्तिम जुताई के समय छिड़के और मृदा के ऊपरी सतह पर मिला दें।
- <u>इमजाथापर (10एस0एल0)–</u> इस खरपतवारनाशी का प्रयोग खरीफ दलहन की बुआई के 25 दिन बाद 1.0 लीटर दवा का 400–600 लीटर पानी में घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

परीक्षण परिणाम –कृशि विज्ञान केन्द्र, आजमगढ द्वारा वर्श 2013–14 में किये गये प्रक्षेत्र परीक्षण के परिणाम दर्शाते हैं कि खरीफ सीजन के खरपतवारों का सामयिक नियंत्रण हो जाने पर फसल और खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जाती है जिसका अनुकूल प्रभाव उपज पर पडता है। बुआई के 20–25 दिन बाद इमजाथापर (10 एस0एल0)का 100 ग्राम सक्रिय तत्व (1.0 ली0घोल) का छिडकाव करने से उपज में 75 प्रतिशत की बृद्धि कृशक विधि की तुलना में दर्ज की गई ।

<u>भिण्डी, टमाट, बैगन एवं मिर्च–</u> सब्जी वाली फसलों से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए खरपतवारों का नियन्त्रण बहुत ही आवश्यक है। इन फसलों में निम्नलिखित शाकनाशियों में से किसी एक

तालिका–3: उर्द फसल में खरपतवार नाशी के प्रभाव को जांचना :

mipkj	ijh{k.kk dh l[;k	[kjirokjk dh ifr ox eh0e l[;k ¼30 fnu ckn½	mit ¼d0@g0½	mit e c<kRrjh ifr'kr e	'k} ykHk ¼:0 @g0½	Ykkxr ykHk vuikr
Vh1& d"kd fof/k ¼vko';drkuqlkj fujkbZ½	05	187-7	7-60	&	12930	2-06
Vh2& iSMheSFkfyu 1-0 fdxzk0 lfdz; rRo@g0 dk teko iwo fNMdko ¼lLrqr fof/k½		48-4	11-2	47-4	23250	2-69
Vh3& beStkFkkikj 100 xzk0 lfdz; rRo ifr g0 dk cqvkbZ d 20 fnu ckn fNMdko ¼lLrqr fof/k½		16-3	13-3	75-0	27985	2-75

के द्वारा खरपतवारों का सफाया किया जा सकता है।

- फ्लूक्लोरेलिन (45 ई0सी0)– उपरोक्त दर्शायी गयी फसलों में फ्लूक्लोरेलिन 1.5 लीटर मात्रा लेकर 400 लीटर पानी में घोलकर खेत की अन्तिम जुताई के समय छिड़के और मृदा की ऊपरी सतह पर मिला दें। इस रसायन का रोपाई के बाद भी छिड़काव कर सकते हैं।
- पेन्डीमेथिलीन (30 ई0सी0)– इस शाकनाशी की 3.3 लीटर मात्रा 400–600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर पौध लगाने से पूर्व छिड़के और साथ ही सिंचाई कर दें।

नोट– कोई दवा, पाउडर के रुप में हो तो उसकी 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर के स्थान पर 1.0 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर ले सकते हैं।

रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण में बरती जाने वाली सावधानियां–

- दवा का प्रयोग करते समय रसायन को बच्चों से दूर रखें।
- जहॉ तक सम्भव हो रसायन का छिड़काव करते समय सुरक्षित कपड़े, जूते, चश्मे और मास्क का प्रयोग करें।
- दवा का छिड़काव करते समय ध्रुमपान का प्रयोग न करें।
- तेज हवा तथा हवा के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें।
- जहॉ तक सम्भव हो सके दवा का घोल तैयार कर लेने के बाद छिड़काव में विलम्ब न करें।
- हल्की भूमि में न्यूनतम एवं भारी भूमि में दवा की अधिकतम संस्तुति मात्रा प्रयोग करें।
- मशीन को प्रयोग करने के बाद तथा पहले अच्छी तरह पानी से साफ कर लें।

लेखकों से निवेदन

1. ग्रामीण विकास के क्षेत्र से सम्बन्धित लेख टंकित रूप में, दो प्रतियों में भेजे।
2. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रमाणिक होनी चाहिए।
3. लेख लगभग 4–5 पृष्ठ का होना चाहिए।
4. हम चाहते है कि पाठकों के लिए यथा सम्भव सुबोध व सरल भाषा व रोचक शैली में ऐसे सारगर्भित लेख प्रकाश में आयें जिससे ग्रामीण विकास हो सके।
5. नये लेखकों को प्रोत्साहन देने के लिए उनके लेख को प्रकाशित करने हेतु विशेष ध्यान दिया जायेगा।
6. कृपया सभी लेख को **Kruti Dev 010** अथवा **APS-DV-Prakash Roman** में टाइप करके भेजें । अन्य फान्टों में लेख स्वीकार नहीं किये जायेंगे ।

लेख भेजने का पता

सम्पादक

'' ग्रामीण विकास संदेश ''

सोसाइटी ऑफ बॉयलाजिकल साइंसेज

एण्ड रूरल डेवलपमेंट

10/96, गोला बाजार, नई झूंसी

इलाहाबाद – 211019 (उ0प्र0)

मो0 : **09335153392, 08005321428**

Email : sbsrdalld@gmail.com

Website : www.sbsrd.org

फेसबुक पेज : **www.facebook.com / sbsrd**

ट्वीटर हैंडल : **www.twitter.com / sbsrd**

नोट – पत्रिका में प्रकाशित लेख–लेखकों के अपने विचार हैं । अतः किसी भी प्रकार की जानकारी हेतु लेखक से सम्पर्क करें।

नोट – इस पत्रिका से सम्बन्धित प्रत्येक मण्डल के सभी सदस्य अवैतनिक हैं।